प्रेमचद-साहित्य में ग्राम्य जीवन

डॉ० सुभद्रा

तोषी—

तुम्हारे त्याग को
मेरे जीवन की उपलब्धियां
समर्पित हैं।

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ दिल्ली विश्वविद्यालय की सन् १९६२ की एम० ए० परीक्षा के लिए निबन्ध के रूप मे लिखा गया था। आज दस साल बाद इसके प्रकाशन की व्यवस्था हो सकी है। इस अवधि म प्रेमचद-साहित्य पर अनेक शोध प्रबन्ध और आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रेमचद-साहित्य के प्राय सभी पक्ष विवेचना का विषय रहे हैं। प्रेमचद-साहित्य म ग्राम्य जीवन पर भी प्रसगवश लिखा जा चुका है किन्तु ग्राम्य जीवन के विभिन्न पक्षो पर विस्तृत और सुसम्बद्ध रूप म अभी तक नही लिखा गया। इस अभाव की पूर्ति हेतु प्रेमचद-साहित्य म ग्राम्य जीवन' का प्रकाशन एक छोटा-सा प्रयास कहा जा सकता है।

पुस्तक की भूमिका के रूप मे मैं कुछ कहना नही चाहूगी। किसी तरह का स्पष्टीकरण देकर अपनी त्रुटियो के लिए अपने को क्षम्य ठहराना भी नही चाहूगी। केवल एक बात लिखनी आवश्यक हो गई है। पुस्तक म 'था और है क्रिया का प्रयोग जहा भी हुआ है साभिप्राय हुआ है।। शाश्वत भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए है' और प्रेमचद की समसामयिक परिस्थितिया का चित्रण करते समय 'था' का प्रयोग हुआ है। प्रेमचद के उपन्यासो और कहानियो म आयी हुई घटनाओ और पात्रो के साथ है का प्रयोग किया गया है। पुस्तक की भाषा म उर्दू शब्दा का प्रयोग निसकोच हुआ है। मुझे लगा साहित्यिक भाषा का प्रयोग कर मैं प्रेमचद के प्रति न्याय नही कर सकूगी। उन्होंने स्वय अपन साहित्य म भाषा का सरल व्यावहारिक रूप स्वीकार किया था।

अन्त में अलंकार प्रकाशन के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना औपचारिकता नहीं है, एक सत्य है। प्रकाशन के क्षेत्र में जो अव्यवस्था चल रही है उसमें अलंकार प्रकाशन सही मार्ग पर चलता हुआ अपना विशिष्ट स्थान जल्दी ही बना लेगा, यह मेरा विश्वास है। अलंकार अलंकार ही बनेगा—गुणों से नाम से नहीं, मेरी कामना है। यह सौभाग्य की बात है कि पुस्तक का प्रकाशन विश्व पुस्तक मेला आयोजन के अवसर पर हुआ है।

किरोड़ीमल महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-१०

सुभद्रा

अनुक्रम

प्रेमचद-साहित्य में ग्राम्य जीवन

१

प्रेमचद समसामयिक परिस्थितियाँ

साहित्य अपन युग का प्रतिबिम्ब होता है । प्रत्येक साहित्यकार अपनी युगीन परिस्थितिया स प्रेरित और प्रभावित हुए बिना नही रहता। युग-सत्य परिवतन शील है। व्यक्ति की विचारधारा युग सत्य का साथ देन क प्रयास म स्वत ही परिवर्तित होती चलती है। साहित्यकार युग क्रम की अभि यक्ति के प्रयास म समय के साथ चलन के लिए बाध्य होता है। स्वय प्रेमचद न इस तथ्य को स्वीकार करत हुए लिखा था— साहित्यकार बहुधा अपने देश काल स प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश म उठती है तो साहित्यकार के लिए उसस अविचलित रहना असभव हो जाता है । उसकी विशाल आत्मा अपन देश-बधुआ के कष्टो स विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता म वह रो उठता है पर उसके रुदन म भी यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सावभौमिक रहता है। [१] प्रेमचद की विचारधारा युगीन परिस्थितियो स प्रेरित और प्रभावित थी। उनके साहित्य के उचित मूल्याकन क लिए तत्कालीन परिस्थितिया स परिचित होना आवश्यक है। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितिया के अन्तगत प्रेमचद युगीन परिस्थितिया पर विचार किया जा सकता है।

राजनीतिक परिस्थितिया

प्रेमचद युग अग्रेजी साम्राज्य की दासता की कहानी है। विदशी सत्ता के प्रति जनता का विद्रोही स्वर सन् १८५७ क देश व्यापी स्वाधीनता-आदोलन म फूट पडा। यह आदोलन सफल नही हुआ पर इसका प्रभाव इतना व्यापक पडा था कि 'इडियन म्यूटिनी के लखक जान' न लिखा था— गगा पार क इलाक

---

१ प्रेमचद कुछ विचार पृष्ठ ६।

म ही नही दोआबा क जिला म भी ग्रामीण जनता उठ खडी हुई थी और जल्दी ही ऐसा कोई आदमी गाव या शहर म नही बचा, जो अग्रजो क विरुद्ध न उठ खडा हुआ हो।"[1] असफल विद्रोह से एक लाभ यह हुआ कि भारत ईस्ट इडिया कम्पनी के "यावसायिक शासन स मुक्त होकर सीधे ब्रिटिश साम्राज्य क अधीन हो गया। इसके साथ ही ह्यूम के प्रयत्ना स सन १८८५ म राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) की स्थापना हुई। इस महासभा का उद्देश्य भारत की जनता की भलाई नही था परन्तु इसकी स्थापना के पीछे उनकी अपनी स्वाथ भावना ही निहित थी। उसका उद्देश्य जनता की विद्रोही भावना और मानसिक असतोष को वैधानिक आन्दोलन का स्वरूप प्रदान कर भारत म अग्रेजी साम्राज्य की सुरक्षा ही था।[2] इस सुरक्षा का प्रश्न इस कारण उठा था कि इम विद्रोह न जनता क असतोष को प्रकट कर दिया था। सन १८८१ म 'डेनियलसन' को काल मावस न एक पत्र लिखा था जिसम उन्होने भावी विद्रोह की आशका प्रकट की थी। ब्रिटिश सरकार स्वय भी गुप्तचरा द्वारा इस भावी विद्रोह की सूचना पा चुकी थी। जिस समय काग्रेस का जन्म हुआ उस समय भारत गुलामो की सबस अधिक भयानक अवस्था म था। उस समय अस्पष्ट तौर पर आजादी की बात सोचना, उसका सपना देखना भी सरल नही था।[3] काग्रसिया का प्रारम्भिक रुचि राजभक्ति म ही थी किन्तु सन १९०५ म बगभग की घटना ने इस भावना को समाप्त कर दिया। बगाल का यह आन्दोलन सवत्र देश म फल गया और सम्पूण भारत ने बगाल के सवाल को अपना सवाल बना लिया। प्रत्येक प्रान्त न बगाल क प्रश्न के साथ अपनी समस्याओ को जोडकर आन्दोलन को और ज्यादा गहरा रग दिया।[4]

इसी के परिणामस्वरूप गमदलीय नेताओ' के प्रभाव से काग्रेस न सन १९०६ मे अपना एक विशेष कायक्रम निर्धारित किया जिसका प्रथम उद्दश्य 'स्वराज्य प्राप्ति था। विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार, स्वदेशीय और राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार भी इस कायक्रम के कुछ अन्य प्रमुख उद्दश्य थे। यह काग्रेस का पहला ठोस कदम था जो उसन राजभक्ति का त्याग कर उठाया था।[5] प्रेमचद युग राजनीतिक हलचलो से पूण था। प्रेमचद इन घटनाओ से प्रभावित हुए थे जिसका स्पष्ट प्रमाण उनका श्यामा उपन्यास था जो आज उपलब्ध नही है। इसम अग्रेजी शासन की निन्दा की गई थी। उनके कहानी सग्रह सोजे वतन' म भी इसी

---

१ इडियन म्यूटिनी द्वितीय भाग पष्ठ १८२।
२ राष्ट्रीयता और समाजवाद आचाय नरेन्द्रदेव पष्ठ ८३।
३ वही पष्ठ १३५।
४ काग्रस का इतिहास प्रथम खण्ड पष्ठ ६५।
५ इडिया टड पष्ठ ३०४।

भावना की अभिव्यक्ति हुई थी और इसी कारण इसे सरकार ने जब्त कर लिया था।[1] इसी समय उनका उपन्यास 'वरदान' देखने में आया जिसमें 'बाबा के मुख से देश प्रेम का स्वर सुनाई पड़ा।

सन् १९१२ में राजनीतिक हलचलें कुछ कम हुईं। गरम दल वाले कुचल दिए गए। 'बंगभंग' दूर होने पर बंगाल में शान्ति स्थापित हो गई। सरकार को 'मिण्टो मार्ले-योजना' के अनुसार मॉडरेटों को अपनी ओर करने की कोशिशें सफल हुईं।[2] सूरत अधिवेशन में कांग्रेस दो दलों में विभाजित हो गई। कांग्रेस का नेतृत्व नरमदल वालों के हाथों में चला गया था। परन्तु गरमदल वाले शान्त नहीं बैठ सके। होमरूल सोसाइटी और 'इंडिया हाउस' की स्थापना हुई जो क्रान्तिकारी दल के अड्डे थे।[3] इसी समय सन् १९०८ में बंगाल के प्रथम बम विस्फोट पर भाषण लिखने के कारण स्वर्गीय लोकमान्य तिलक छः वर्ष के लिए मण्डले से निर्वासित कर दिये गये। इसके विरुद्ध बम्बई की कपड़ा मिल के मजदूरों ने पहली राजनीतिक हड़ताल शुरू कर दी। किंग्सफोर्ड की हत्या के प्रयत्न के अपराध में खुदीराम बोस को फांसी की सजा दी गई। सन् १९०६-९ के मध्य केवल बंगाल की अदालतों में ही ५५० राजनीतिक मुकदमे चल रहे थे। जनता हिंसा की ओर उन्मुख हो रही थी। हिंसा की प्रवृत्ति से बचने के लिए मिण्टो मार्ले की सुधार योजना की घोषणा की गई परन्तु यह योजना भी अंग्रेजी शासन की कूटनीति का ही दूसरा रूप थी। मार्ले ने स्वयं इन सुधारों के सम्बन्ध में लिखा था— 'यदि यह कहा जा सकता हो कि ये शासन सुधार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दुस्तान को पार्लियामेंटरी शासन-व्यवस्था की ओर ले जाते हैं तो कम से कम मैं तो इनसे कोई वास्ता नहीं रखूंगा।' परन्तु कांग्रेस ने इन सुधारों से सन्तोष प्रकट किया और जार्ज पंचम के सिंहासनारूढ़ होने पर उसकी अधीनता भी स्वीकार कर ली।

सन् १९१०-१७ तक का समय महत्त्वपूर्ण घटनाओं का युग था। दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी का अहिंसात्मक सत्याग्रह सफल हुआ। सन् १९१४ में विश्वव्यापी महायुद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें जर्मनी विजयी हो रहा था। इससे सभी प्रसन्न थे क्योंकि इस सत्य से यह प्रमाणित हो गया था कि अंग्रेजों से भी कोई अधिक शक्तिशाली है।[4] सन् १९१७ में रूसी क्रान्ति की सफलता ने सबको आतंकित कर दिया। प्रेमचंद ने इसका उन्मुक्त हृदय से स्वागत किया। प्रेमचंद भारत में भी

---

१ नई समीक्षा पृष्ठ २३२।
२ मेरी कहानी पृष्ठ ३११।
३ कांग्रेस का इतिहास प्रथम खण्ड पृष्ठ ५९।
४ मेरी कहानी पृष्ठ ३५१।

मजदूर किसानो के शासन के इच्छुक थे और उनका यह विश्वास था कि एक दिन रूसवालो की शक्ति भारतवासियो म भी आयेगी।[1] उनकी विचारधारा पर इस घटना का जो प्रभाव पडा उसका प्रत्यक्ष प्रमाण 'प्रेमाश्रम' का बलराज है जो अपने वर्ग की स्थिति और महत्त्व को पहचानने लगा है। महायुद्ध के दिनो म ब्रिटिश सरकार ने 'वार जनरल' निकाला। इसके एक सदस्य मुन्शी दयानारायण निगम थे, जिन्होने इसक उर्दू सस्करण का भार प्रेमचद जी को सौंपना चाहा था परन्तु उन्होने यह लिखकर टाल दिया—'अब मैं सरकारी अखबारनवीस क्या बनूगा। जग मे मुतात्लक मजामीन लिखने की भी इस वक्त मुझे फुरसत नही है। बस, इसी अपने रफ्तारे कदीम (पुरानी चाल) पर रहूगा। किसी प्राइवेट स्कूल की हैड मास्टरी और एक अच्छे अखबार की एडीटरी और कुछ पब्लिक का काम यही मेरा मेराजे जि दगी (जीवन उद्देश्य) है। अखबार भी किसानो का हामी और मददगार हो।"[2]

सन १९१६ म राजनीति-क्षेत्र म महात्मा गाधी का पदार्पण हुआ जिससे राष्ट्रीय जीवन म एक विचित्र स्फूर्ति और सजीवता आयी। उन्होने पहली बार (चम्पारन म) भारत म सत्याग्रह का प्रयोग किया। काग्रेस अधिक से अधिक जनवादी होती गई। उदार पथ वालो से उसका मतभेद बढता गया। विवश हो सन १९१८ म उदार दलवालो ने पृथक 'लिबरल फेडरेशन' की स्थापना की। इसी बीच सरकार ने माण्टेग्यु चेम्सफोर्ड सुधार योजना की घोषणा की जिसका उद्देश्य काग्रेसी नेताओ को झूठी सात्वना भर देना था। गाधी जी ने इन सुधारो की सफलता के लिए अपना सहयोग प्रदान किया।[3] प्रेमचद गाधी जी के भक्त होते हुए भी इन सुधारो से सतुष्ट थे।[4] देश की राजनीति म दो विरोधी विचार धाराए काम कर रही थी—एक विचारधारा हिंसा से प्रेरित थी और दूसरी गाधी जी से। एक ओर हिंसापूर्ण घटनाए हो रही थी और दूसरी ओर सत्याग्रह और हडतालें। सन १९१९ म जलियावाला बाग का हत्याकाड एक विशेष घटना मानी गई। गाधी जी ने भी इस समय बडी बडी हडतालें करवायी थी जिनम किसानो ने भी अपना योगदान दिया। सन १९२१ म असहयोग आन्दोलन तजी से फला और गाव गाव इससे प्रभावित हुआ। गावो म 'स्वराज्य' की भावना का प्रचार किया जाने लगा। अब तक असहयोग आन्दोलन और किसान आन्दोलन

१ प्रेमचद घर म पृष्ठ ११०।
२ प्रेमचद और गोर्की पृष्ठ २२ २३।
३ इंडिया टुडे पृष्ठ ३१४।
४ प्रेमचद और गोर्की पृष्ठ २७।
५ मेरी कहानी पृष्ठ ६४।

अलग अलग चल रहे थे। किसानों में विद्रोह की भावना बल पकड़ रही थी और वे हिंसा की ओर दौड़ रहे थे। सन् १९२१ में चौरी चौरा नामक स्थान पर किसानों की उत्तेजित भीड़ ने सिपाहियों और एक थानेदार को पुलिस चौकी में जीवित जला डाला। गांधी जी ने इस घटना से क्षुब्ध होकर अपना आंदोलन स्थगित कर दिया। उनके सहयोगी उनके इस निर्णय से असंतुष्ट हो गये।[1]

इस समय गांधी जी से प्रभावित होकर प्रेमचंद ने अपनी सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। 'जमाना' में प्रकाशित 'लाल फीता' कहानी का नायक हरविलास और कोई नहीं, स्वयं प्रेमचंद ही थे जिसने बीस वर्ष पुरानी अपनी नौकरी को त्याग दिया था।[2] सन् १९२७ में साइमन कमीशन की नियुक्ति हुई जिसका उद्देश्य भारत में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना था। कमीशन जहां भी गया 'साइमन वापस जाओ' के नारों और काले झण्डों से उसका स्वागत हुआ। ८ अप्रैल को भगतसिंह और उनके साथी दत्त ने लेजिस्लेटिव असेम्बली में बम फेंका। सन् १९२७ में कांग्रेस ने बिना गांधी जी के सहयोग के पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया। इसी समय बारदोली के किसानों का सफल अहिंसात्मक सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ।[3] सन् १९२९ में यतीन्द्रनाथ दास और फूंगी विजया अनशन के पश्चात् वीरगति को प्राप्त हुए। इन घटनाओं से अहिंसावादी भी प्रभावित हुए और इन दोनों की मृत्यु के लिए विदेशी शासन को उत्तरदायी ठहराया गया। हिंसात्मक विचारधारा के लोग अंग्रेज अधिकारियों पर बम इत्यादि फेंकते रहते थे। कांग्रेस की तरह प्रेमचंद भी इन हिंसात्मक कार्यों को उचित नहीं मानते थे। हंस में उन्होंने लिखा था—'दो चार कर्मचारियों की हत्या करके वे चाहे अपने को विजयी समझ लें, लेकिन यथार्थ में उनके हाथों राष्ट्र का जो अहित हो रहा है, उसका अनुमान करना कठिन है। यह न तो बहादुरी है और न ईमानदारी, कि तुम तो आग लगाकर दूर खड़े हो जाओ और घर दूसरा का जले।'[4]

२६ जनवरी, सन १९३० को देशभर में स्वराज्य दिवस मनाया गया। लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस का ध्येय वैधानिक उपायों द्वारा औपनिवेशिक स्वराज्य से परिवर्तित होकर शांतिपूर्ण और उचित उपायों से पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति स्वीकृत हुआ। १२ मार्च को गांधी जी डांडी-कूच पर निकले और ६ अप्रैल को विधिवत नमक कानून भंग हुआ। गांधी जी जेल भेज दिये गये और

---

१ इंडिया टुडे पृष्ठ ३२५।
२ प्रेम चतुर्थी पृष्ठ ९८।
३ राष्ट्रीयता और समाजवाद पृष्ठ ९७।
४ हंस—दिसम्बर १९३१, पृष्ठ ६६।

इसके विरोध में सभाएं और हड़तालें हुई। जनवरी, सन १९३१ में गांधी जी को जेल से मुक्त कर दिया गया। मार्च में गांधी जी और वाइसराय में समझौता हुआ और 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' अपने चरमोत्कर्ष पर स्थगित कर दिया गया। इस समझौते के अनुसार कांग्रेस ने गांधी जी को अपना प्रतिनिधि बना, द्वितीय गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिए लंदन भेजना स्वीकार कर लिया। प्रेमचंद को सविनय अवज्ञा आन्दोलन से बहुत आशा थी। सन् १९३० में 'हंस' का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादकीय में उन्होंने लिखा था—'इस 'हंस' का ऐसे युग में प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जब कि भारत पराधीनता से अपने को मुक्त करने के लिए प्रयत्नशील है। एक दिन हमारी विजय होगी और उस दिन के लिए हमें तपस्या करनी पड़ेगी। 'हंस' का भी यही ध्येय होगा और इसी ध्येय के अनुकूल 'हंस' की नीति भी होगी।'[1] उनके 'हंस' का उद्देश्य आज़ादी की जंग में योग देना था। उनकी स्वयं की आकांक्षा थी कि हम स्वराज्य-संग्राम में विजयी हों। वे इस संग्राम में अपना सहयोग भी देना चाहते थे दो चार उच्चकोटि की पुस्तकें लिखकर जिनका उद्देश्य भी स्वतंत्रता प्राप्ति हो।'[2]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन बुरी तरह कुचला गया। मुंशी दयानारायण निगम को एक पत्र में उन्होंने गवर्नमेंट की ज्यादतियों को नाकाबिले बर्दाश्त बताया था। उन्होंने 'हंस' में ब्रिटिश साम्राज्य की स्वेच्छाचारी नीति की कटु आलोचना करते हुए उसे 'डंडा राज्य' की संज्ञा देते हुए अपने सम्पादकीय में लिखा था—"मजदूरों की सभा मजदूरी बढ़ाने का आंदोलन करती है—दो डंडा। किसानों की फसल मारी गई, वह लगान देने में असमर्थ है, कोई मुआवज़ा नहीं, दो डंडा। कोई जरा भी सिर उठाये, जरा भी चूं करे, दो डंडा। वह युवक कपड़े की दुकान पर खड़ा है, नम्रता से कह रहा है—विलायती कपड़े न खरीदो! दो डंडा।—वह एक स्वयं सेवक शराब ताड़ी की दुकान पर जा पहुंचा नशेबाजों को समझा रहा है—दो डंडा।—इन सिरफिरों की यही दवा है।'[3] गोलमेज परिषद पूरी तरह असफल रही और महात्मा गांधी खाली हाथ स्वदेश लौटे। प्रेमचंद ने गोलमेज परिषद के खोखलेपन पर प्रकाश डालते हुए सन १९३३ के 'जागरण' के सम्पादकीय में लिखा था—'व्यक्तिक सत्याग्रह का कार्यक्रम राष्ट्र को स्वीकार नहीं है। संभव है उसे पूर्ण रूप से व्यवहार में लाया जा सके तो राष्ट्र को उसके द्वारा स्वराज्य प्राप्त हो सके, पर यह तो उसी तरह है कि रोगी के शरीर में रक्त बढ़ जाये तो वह अवश्य अच्छा हो जायेगा। किसी काम की सफलता के

१ हंस—मार्च १९३० पृष्ठ ६३।
२ प्रेमचंद और गांधी पृष्ठ ४१।
३ वही पृष्ठ १५२।

लिए असभव शत लगा देन स हम सिद्धि के निकट नही पहुँचन। किसी प्रोग्राम को उसकी व्यावहारिकता क आधार पर ही जाचना उचित है। जिस दिन दश म एम आत्मी निकल आयँग जा अपना स्वाथ स्वराज्य के लिए त्यागन के लिए तयार हा उस दिन तो आप ही आप स्वराज्य हो जायेगा, लेकिन ऐसा समय कभी आयेगा इसम सन्देह है। ऐसी दशा म सत्याग्रही नीति से हम अपन उद्देश्य प्राप्ति की आशा नहा।' अगने वष १९३४ के जागरण' म भी उन्होने लिखा था—"जब यह मान लना पड़गा कि जिस चीज़ को महात्मा जी भीतर की आवाज कहते हैं, जिसका मतलब यह होता है कि उसम गलत होने की सभावना नही, वह बहुत भरोस की चीज नहीं है क्योकि उसने एक से ज्यादा अवसरा पर गलती की है।'

सन् १९३२ की मुख्य घटनाओ म यरवदा करार' है जिसम दलित जातियो की समस्या को सुलझान का प्रयास किया गया था। इसी समय युक्त प्रात का लगानबदी आदोलन प्रारम्भ हुआ। कमभूमि उपन्यास की पृष्ठभूमि म यही युक्त प्रात का लगानबदी आन्दोलन और अछूतोद्धार की समस्या है। महात्मा गाधी न आत्मशुद्धि क लिए सन् १९३३ म इक्कीस दिन का उपवास रखने की घोषणा की और सरकार न इसलिए उन्हें जेल से मुक्त कर दिया। मुक्ति का दुरुपयोग न हो इसलिए गाधी जी न सविनय अवज्ञा आन्दालन छ सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया। इस निणय स विक्षुब्ध हो पटेल और बोस ने एक घोषणा म कहा—' सविनय अवज्ञा आदोलन को स्थगित किए जान की गाधी जी की ताजा कायवाही असफलता की स्वीकारोक्ति है। हमारा यह स्पष्ट मत है कि राजनीतिक नेता के रूप म गाधी जी असफल हो चुके हैं। समय आ गया है कि काग्रेस का नवीन सिद्धान्त क आधार पर नये तरीका स पुनगठन किया जाय जिसके लिए नया नतृत्व आवश्यक है।'[1] सन् १९२६-२७ म साम्यवादी विचारधारा देश म फैलन लगी और सन् १९२६ म प्रथम बार मजदूर-कृषक पार्टी स्थापित हुई। पजाब बम्बई, युक्त प्रात म इन पार्टियो की स्थापना हुइ और सन् १९२८ में इन पार्टियो का अखिल भारतीय स्तर पर सगठन किया गया। सन १९२७ म प्रथम बार मजदूरो ने भारत म मई दिवस' मनाया। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद स प्रभावित हो सन १९३४ म काग्रेस-सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। सन् १९३६ ३७ क लिए नेहरू जी काग्रेस के अध्यक्ष चुन गय। इन परिवर्तित होती परिस्थितियो स प्रेमचद अछूते नहा रह सक। प्रगतिशील सघ की स्थापना और महाजनी-सभ्यता पर प्रकट किये गये विचार उनकी नवीन विचारधारा के प्रतीक हैं।

---

१ इडिया टडे पृष्ठ ३५३।

सामाजिक परिस्थितियाँ

साहित्य समाज का दर्पण है अतः समाज की प्रतिच्छाया उसमें अवश्यंभावी है। प्रेमचन्द ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का सूक्ष्म स्पष्ट चित्र अपनी रचनाओं में ज्यों का त्यों उतार दिया है। समाज व्यवस्था और मान्यताओं को दृष्टि में रखकर उस युग की सामाजिक परिस्थितियों पर इन विभिन्न रूपों में विचार किया जा सकता है।

वर्ण-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्था भारतीय समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है। यह गाँव का वह अलिखित कानून था जिसकी दृढ़ और निश्चित सीमा रेखाएँ थीं और जिसका उल्लंघन वर्जित था और जिसे जघन्य पाप और अक्षम्य अपराध समझा जाता था। वर्ण व्यवस्था के अधीन समाज नितान्त पृथक् छोटी छोटी जातियों और उप जातियों में विभाजित था। इन विभिन्न जातियों का पारस्परिक कोई सम्बन्ध नहीं था। पारिवारिक सम्बन्ध अपनी जाति विशेष तक ही सीमित था। इन जातियों के सदस्यों का नित्यप्रति का आचरण भी उस जाति विशेष में प्रचलित विस्तृत नियम-संहिता से नियंत्रित होता था। व्यक्ति के जन्म से ही सामाजिक अधिकार पारिवारिक सम्बन्ध सदैव के लिए निश्चित हो जाते थे। जिन मान्यताओं, रीति रिवाजों के बीच उसका जन्म हुआ था जीवन पर्यन्त उसे उन्हीं के अनुकूल चलना पड़ता था। वर्ण व्यवस्था ईश्वरीय विधान के रूप में स्वीकार की जाती थी फलतः गाँववाले सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था में वर्ण विशेष द्वारा निर्धारित स्थिति स्वीकार करने के लिए विवश थे। वर्ण व्यवस्था एक ऐसा सुदृढ़ गढ़ था जिसके भीतर बैठकर हिन्दू जाति ने बाह्य सभ्यताओं और आक्रमणों से अपनी रक्षा की थी। वर्ण व्यवस्था की महत्ता और व्यापकता को दृष्टि में रखते हुए यह कहना सत्य ही है— हिन्दुओं के लिए तो उनका जाति संगठन ही उनका सम्मिलन केन्द्र है, उनका व्यापार संघ है, हितकारिणी समिति है और वही उनकी जन हितैषी सभा भी है।'[१]

वर्ण व्यवस्था व्यक्तिगत उन्नति और विकास में बाधक थी। व्यक्ति को पैतृक सम्पत्ति के रूप में व्यवसाय मिल जाता था। एक ओर जहाँ पिता को अपना सहायक मिल जाता था वहाँ दूसरी ओर उसका निश्चित व्यवसाय उसका व्यावसायिक प्रगति में बाधक ही सिद्ध होता था, सहायक नहीं। कभी कभी कुछ

---

१ विजन आफ इंडिया, पृष्ठ २६३।

व्यवसाय लाभ की दष्टि से अत्यन्त दलित उद्योग होते। पुत्र को भी उसी व्यवसाय म पिता को सहयोग देना होता। इस स्थिति म अनिच्छा रहते हुए भी उसे पूव निश्चित धनाराशि को अपनी आय के रूप मे स्वीकार करना पडता। अग्रेजो के आगमन के पश्चात कृषि व्यवसाय ही ग्रामीणो की जीविका का एकमात्र साधन रह गया था जो लाभ की दष्टि से बहुत ही हीन था, फिर भी पतृक सम्पत्ति म प्राप्त होने के कारण आनेवाली पीढी को भी उस स्वीकार करना पडता था।[1] इस तरह जहा यक्तिगत रुचि-स्वातन्त्र्य का अभाव था वहा आर्थिक विकास का माग भी अवरुद्ध था। वण-व्यवस्था ने ही समाज को आधारभूत स्थिरता और सतोष प्रदान किया था। व्यक्ति का व्यवसाय जन्म से ही निश्चित था। इसी कारण इस विषय मे किसी तरह की कठिनाई का सामना नही करना पडता था और इसी स वह सामाजिक विद्वेष तथा असफल आकाक्षाओ से जनित विष स भी सुरक्षित रहता था जिसके साथ ही भारतीय समाज स्वय अक्षुण्ण रहा और राजनीतिक हलचलो स अपनी रक्षा करता रहा।[2]

जाति-व्यवस्था वयक्तिक सम्मान और व्यवसाय क सामजस्य म बाधक थी तथा पूजी और श्रम की गति के अभाव की द्योतक थी। इसके अतिरिक्त बडे पमाने पर साहसोद्यम म भी जाति प्रथा बाधा उपस्थित करती थी। जाति व्यवस्था का सबसे अधिक कुपरिणाम जो समाज पर दृष्टिगोचर हुआ वह था समानता की भावना का अभाव। इस भेद व्यवस्था न उच्च वर्णों मे एक विकृत निराधार स्वेच्छाचारी प्रभुता की भावना को और निम्न वर्णों म उनके स्वाभिमान के विकास के लिए घातक मानसिक प्रवत्ति को जन्म दिया। इस व्यवस्था का सबसे अधिक शिकार हुआ अछूत वग। सामाजिक बहिष्कार की यह अपमानजनक व्यवस्था पौरुष, स्वातन्त्र्य तथा स्वावलम्बन की भावना के विकास मे सबस बडी बाधा थी।[3]

सयुक्त परिवार व्यवस्था

भारतीय समाज की दूसरी विशषता है सयुक्त परिवार। इस व्यवस्था क अनुसार एक-दो पीढी के लोग सम्मिलित रूप से एक ही परिवार म रहते थे। पारिवारिक धार्मिक तथा सामाजिक परम्परागत सम्बन्धो के अतिरिक्त जीवन की आर्थिक परिस्थितियो तथा श्रम व्यवस्था ने भी सयुक्त-परिवारो के ऐक्य और दृढता म योग दिया। लोग सुविधा के अभाव म बाह्य ससार से उदासीन

---

१ सवा सेर गेहू कहानी का निष्कर्ष (मानसरोवर चौथा भाग)।
२ भारतीय अर्थशास्त्र पष्ठ ६६।
३ मॉरल एण्ड मटीरियल प्रोग्रस रिपोर्ट (१९२१)।

अपनी परम्परागत मायताओ और पतृक व्यवसाय क अधिकारी बन, उनाकी जीवन व्यतीत करन क लिए बाध्य थ। सयुक्त परिवार प्रथा क अनक लाभ थ। सबस पहल मनुष्य अपनी जीविका की ओर स निश्चित रहता था। परिवार क वद्ध और विधवा नारी क लिए यह व्यवस्था सुरक्षा का दृढ़ स्तम्भ थी। सयुक्त रूप स रहन के कारण प्रत्यक व्यवसाय और उद्योगा म पुरुष वग को नारियो का भी सहयोग मिलता था।

उपभोग के क्षत्र म भी सयुक्त-परिवार क कारण आर्थिक दृष्टि से काफी बचत हो जाती थी। एक साथ रहने के कारण सयुक्त रूप स चीजा पर व्यय किया जाता था और इस तरह दुहरे खच की आवश्यकता ही नही रहती थी। यदि परिवार पृथक-पृथक रहते हैं तो जितने परिवार हो घरेलू आवश्यकता की वस्तुआ की सख्या भी उतनी ही होनी जरूरी है। जब तक सयुक्त-परिवार म मेल जोल स काम चलता रहता है उसकी सम्पत्ति का अच्छे स अच्छा आर्थिक *प्रयोग सभव है और भूमि क बहुत अधिक उपविभाजन और उप-खड स बचा जा* सकता है। इन आर्थिक लाभा के अतिरिक्त सयुक्त-परिवार सस्था म आत्म सयम त्याग आज्ञाकारिता तथा शील आदि गुणो का भी पोषण करता है।[१]

सयुक्त परिवार व्यवस्था से जहा अनेक लाभ थे वहाँ कुछ हानियाँ भी थी। एक साथ रहन क कारण स तान कम ही अच्छी निकलती। पालन-पोषण परिवार के गहस्वामी पर निभर रहता था इसलिए सन्तान स्वय अपने पैरो पर खडे होने की अपेक्षा केवल अपनी ही सुविधा म लीन रहती। इसके साथ परिवार के एक व्यक्ति विशेष के कुकृत्य के लिए पूरा परिवार उत्तरदायी होता था और गहस्वामी को उसका फल कुफल का भागी होना पडता था। कभी-कभी गहस्वामित्व और गहस्वामिनी पद की अभिलाषा पारस्परिक वैमनस्य और ईर्ष्या के बीज बो देती थी जो बाद म भयकर रूप धारण कर लेती। इसका परिणाम अलगयोझा था जो पूण निश्चित शात सुव्यवस्थित व्यवस्था को नष्ट कर देता और सरलतापूवक जीवन निर्वाह करने म एक ठहराव—एक अवरोध सा आ जाता था।

धार्मिक व्यवस्था

भारतवष म धम लोगो को भौतिक लाभा के प्रति उदासीन रहने का उपदेश देता है। हिन्दू हर चीज को धम की अभिव्यक्ति मात्र मानते हैं। भारतीय समाज की यह विशिष्टता है कि यहा क लोग प्राय आस्तिक होते हैं। दुनिया की प्रत्येक गतिविधि को व ईश्वरीय सत्ता के अधीन स्वीकार करते हैं। आत्मिक उन्नति के लिए ईश्वरीय सत्ता म विश्वास रखना उचित है परन्तु जीवन निर्वाह

---

१ भारतीय अथशास्त्र पष्ठ १०३।

के लिए जीवन के भौतिक पक्ष पर भी ध्यान रखना आवश्यक होता है। धम का जो स्वरूप ग्रामीण समाज म मिलता था वह बाह्याडम्बरो म तो विद्यमान था ही इसके साथ उसका रूप इस तरह व्यापक था कि व्यक्ति की प्रत्येक कायविधि उसी की कसौटी पर तोली जाती थी। अपने शोषको क अमानवीय कृत्यो को मौन रहकर सहन करना उनक धम का ही एक स्वरूप था। पच, बिरादरी सभी इस धम व्यवस्था के विभिन्न अग थ। पुनजन्म म आस्था भाग्यवादिता, ईश्वर म आस्था, अन्ध मान्यताए और अन्धविश्वास धार्मिक व्यवस्था क ही परिणाम स्वरूप दिखाइ दते थे। इन धार्मिक मान्यताओ के कारण निराशावादिता उनके स्वभाव का एक विशिष्ट अग बन गयी थी।[1]

ग्राम्य जीवन का भौतिक और सास्कृतिक स्तर निम्न था क्योकि परिवतन और विकास से वह अछूता था। इसी कारण समाज का दृष्टिकोण एकागी और दष्टि विक्षेप सकीण होता था। सम्पकहीन सामाजिक स्थिति, बाढ और सूखे क सामने उनके श्रम की नितान्त निष्फलता, वण-व्यवस्था की कठोरता सयुक्त परिवार प्रथा की अधिकारिता और शैशव म धार्मिक रहस्यात्मक जीवन दशन की अमन्द ध्वनि न गाव की मानसिक स्फूर्ति प्रयोग की प्रेरणा शोध की प्रवत्ति और आत्योन्मुखता को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। गाँव की स्थिति घोर अज्ञान के किले की भाति हो गइ। अधविश्वास और प्रकृत्यावलम्बिता, उसकी प्रधान प्रवत्तिया, अनगढ औजारो और सीमित प्रकृति ज्ञान ने उसके विकास क रास्ते रोक दिये।[2] प्रेमचद साहित्य म ग्रामीण जीवन की यही सामाजिक स्थिति चित्रित हुइ है।

आर्थिक परिस्थितिया

प्रेमचन्द युग म भारत की ग्राम व्यवस्था विश्रृखलित हो चुकी थी और उसका सामाजिक और आर्थिक रूप परिवर्तित हो रहा था। उनका युग पराधीनता का युग था। ब्रिटिश साम्राज्य की नीव विशेष उद्देश्य स पडी थी। अग्रेज भारत म कवल व्यवसाय करने के उद्देश्य स नही शासन करन के सकल्प से आये थे और इसी कारण उन्होने यहाँ की आर्थिक व्यवस्था म परिवतन लाना चाहा। किसी भी देश पर शासन करने क लिए वहा की अथ व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर देना आवश्यक होता है और यही उन्होने किया भी। उनके आन म पूव भारतीय समाज का ढाँचा ग्राम इकाई पर निभर था। भारतीय आर्थिक व्यवस्था कृषि और हस्त उद्योगो की सम्मिलित आय पर निभर थी। इसी कारण गावो की जनसख्या गणनातीत थी। श्रम के अनुपात म उपज कम थी। 'भारत के विषय म सवस

१ भारतीय अथशास्त्र पष्ठ १०८।
२ प्रेमचन्द एक अध्ययन पष्ठ ६२।

सस्थाए अग्रेज़ा की स्वामीभक्ति और वफादारी की सौग ध खाती थी।[1]

प्रमचद अपनी युग परिस्थितिया स प्रभावित हुए बिना न रह सके। समाज क शोषित वग के प्रति उनक हृदय म अपार सहानुभूति थी। उनके दु ख दय से उनकी आत्मा व्यथित हो उठी थी। उनकी सवेदना और सहानुभूति ही उनके साहित्य म मूर्तिमान होकर आयी है। वे स्वय देहाता म रह चुके थे, इस कारण ग्राम्य जीवन क सम्बध म उनकी कल्पना नही स्वानुभूतियाँ ही था जो उ ह भारत के गाँवा म बसनेवाली अस्सी प्रतिशत जनता का इतना बडा हिमायती सिद्ध कर सकी।

ब्रिटिश साम्राज्य भारत के शोषण क लिए और विशेषकर ग्रामीण जनता के शोषण के लिए विशेष उत्तरदायी था। प्रेमचद न इस शोषण को काफी बारीकी से देखा था और उ होने अनुभव किया था कि अग्रेज़ी राज्य म गरीबा मज़दूरा और किसाना की दशा जितनी खराब है और होती जाती है उतनी समाज के किसी और अग की नही। सरकार के हाथो किसी सम्प्रदाय की इतनी बर्बादी नही हुई थी जितनी किसाना और मजदूरा की—खासकर किसानो की किसाना की हालत रोज़ ब रोज़ खराब होती जा रही है। उन पर लगान बढ़ता जाता है सख्तियाँ बढती जाती है। कौंसिला म उनक हितो का कोई रक्षक नही। काग्रेस के मेम्बर या और लोग कभी कभी न्याय और नीति के नाते भले ही किसाना की वकालत करें लेकिन किसाना के नाना प्रकार क दु खो और वदनाओ की उ ह वह अखर नही हो सकती जो एक किसान को हो सकती है—सब छोटे बडे उसी को नोचते हैं—सब उसी का रक्त और माँस खाकर मोटे होते हैं—अगर उ ह सगठित करने की कोशिश की जाती है तो सरकार ज़मीदार सरकारी मुलाज़िम और महाजन सभी भन्ना उठते है। चारा ओर से हाय हाय मच जाती है। बालशविज़्म का हौवा बताकर उस आन्दोलन को जड स खोदकर फेंक दिया जाता है।[2]

कृषका की दुरावस्था का विशद चित्रण करते हुए पडित नेहरू ने अपनी आत्मकथा म लिखा था— मैंने उनके दु ख की सकडा कहानियाँ सुनी। कस लगान का बोझ दिन दिन बढ़ता जा रहा है जिसके तले व कुचल जा रहे हैं किस तरह उनके खिलाफ कानून लगाये जाते हैं और ज़ुल्म स वसूली की जाती है कस उन पर मार पडती है कस चारा तरफ ज़मीदार क एजेंट साहूकारा और पुलिस क गिद्धा स घिरे रहते हैं किस तरह की कडी धूप म अशक्त हो काम करते हैं और अन्त म यह देखते हैं कि उनकी सारी पैदावार उनकी नही है दूसर हो उठा ल

---

१ भारत वतमान और भावी पृष्ठ ८४।

२ स्वराज्य म किसा का हित होगा? प्रेमचद—हस अप्रल १९३१ पृष्ठ ७।

जाते हैं और उसका बदला उन्हें मिलता है ठोकरा गालिया और भूख पट स— या जमीन उपजाऊ थी मगर उस पर लगान का बोझ बहुत भारी था। खेत छोटे छोटे थे और एक खेत पान के लिए कितने ही लोग मरते थे। उनकी इस तड़प से फायदा उठाकर जमींदारो ने, जो कानून के मुताबिक एक हद से ज्यादा लगान नहीं बढा सकते थे, कानून को ताक म रखकर भारी भारी नजराना वगरह बढा लिया था। बचारे किसान कोई चारा न देख रुपया उधार लाते और नजर नजराना वगरह देते और फिर जब कर्ज और लगान लेकर न दे पाते तो बेदखल कर दिये जाते। उनका सब कुछ छिन जाता।[1] पंडित नेहरू के ये अनुभव ही तो प्रेमचद-साहित्य का वर्ण्य विषय है। कायाकल्प 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' की कहानी नेहरूजी की सुनी सुनाई कहानियाँ ही तो हैं। प्रेमचन्द की रचनाए इसी युग की ममस्पर्शी कहानिया हैं। भारत का जनता कृषि पर जीविका के लिए पूणतया निभर हो चुकी थी। इसी कारण खेती पर दिनोदिन अधिक से अधिक भार बढ़ता ही गया। गावो की जनसख्या बढने लगी और उसके साथ हा भूमि की उपजाऊ शक्ति भी कम होने लगी। खेती पर निभर होने वालो की सख्या की कमरात्तरी के क्रमिक विकास व विवरण पर यदि दृष्टि डाली जाये तो यह स्पष्ट विदित हो जायगा कि कृषि पर निभर लोगो की सख्या किस तरह बढी।

सन	खेती पर निभर लोगो की सख्या
१८९१	६६ १ प्रतिशत
१९०१	६१ ५ प्रतिशत
१९११	७२ २ प्रतिशत
१९२१	७३ ० प्रतिशत
१९३१	७५ ० प्रतिशत

दूसरी ओर १९११ से १९३१ के मध्य विभिन्न उद्योगो म लगे लोगो की सख्या बीस लाख घट गइ।

सन	उद्योगो पर आश्रित लोगो की सख्या
१९११	५ ५ प्रतिशत
१९२१	४ ९ प्रतिशत
१९३१	४ ३ प्रतिशत[2]

१ मेरी कहानी पृष्ठ ५८।
२ इंडिया टुडे पृष्ठ १९१ ९२।

खेती पर आकस्मिक भार पड़ा और कृषकों की आय घटने लगी जिसके साथ उन पर ऋण भी बढ़ चला। कृषक ऋणग्रस्त होने लगा। उनकी प्रतिशत बढ़ती गई।

सन	ऋण	अनुमानित
१६११	३०० करोड़	(श्री एडवर्ड मक्लागन द्वारा अनुमानित)
१६२४	६०० करोड़	(श्री डार्लिंग द्वारा अनुमानित)
१६३०	६०० करोड़	(राष्ट्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी द्वारा अनुमानित)
१६३५	१२०० करोड़	(प्रो० टामस द्वारा अनुमानित)
१६३७	१८०० करोड़	(रिजर्व बैंक द्वारा अनुमानित)[1]

ऋण ग्रस्त कृषक की वार्षिक औसत आय लगभग बयालीस रुपये थी।[2] *अंग्रेजी साम्राज्यवादियों की शोषण-नीति ने भारतीय-समाज के पुरातन आधार* ग्राम-व्यवस्था को विशृंखलित कर दिया। भारतीय ग्राम व्यवस्था के साथ सामन्ती सभ्यता का अंत हुआ और पूँजीवाद साम्राज्यवाद के संरक्षण में पनपने लगा। पूँजीवाद तेजी से देश पर छाने लगा। इस नवीन भावना के साथ समाज में वर्ग भावना का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेमचन्द ने इस नवीन चेतना को महाजनी सभ्यता के नाम से अभिहित किया। उन्होंने महाजनी सभ्यता से भयाक्रान्त देश को देखा। महाजनी-सभ्यता नामक लेख में इस भावना पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने मृत्यु से कुछ दिन पूर्व ही लिखा था "इस महाजनी सभ्यता में सारे कामों की गरज पैसा है। किसी देश पर राज्य किया जाता है तो इसलिए कि महाजनों पूँजीपतियों को ज्यादा नफा हो। इस दृष्टि से आज दुनिया में महाजनों का ही राज्य है। मनुष्य समाज दो भागों में बँट गया है—बड़ा हिस्सा तो मरने और खपने वालों का है और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किये हुए हैं। इन्हें उस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं। जरा भी रियायत नहीं। उनका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाएँ, खून गिराएँ और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से विदा हो जाएँ।"[3]

इस महाजनी सभ्यता का प्रभाव ग्रामों पर ही नहीं नगरों पर भी पड़ा। शायद ही नगर नागरिक भी इसके व्यापक प्रभाव से काँप उठे। फलतः जहाँ ग्रामों में

---

१ भारत की आर्थिक समस्यायें पृष्ठ १३०।
२ इंडिया टुडे पृष्ठ २२६।
३ प्रभात (मासिक)—१ अक्तूबर १६५२ पृष्ठ ८।

महाजना का प्रभाव फला बहा जमादारो, जागीरदारा और तालुकेदारो आदि को अपना अस्तित्व अक्षुण्ण बनाये रखन के लिए और आर्थिक सकट स बचने के लिए नगरो क मिल मालिका और बैंकरा से सम्पक स्थापित करना पडा। 'प्रेमाश्रम', रगभूमि' और 'गोदान इन्ही महाजनो के हथकण्डा के व्यापक परिणामो की कहानियाँ हैं। साम ती जमींदार के स्थान पर पूजीपति जमीदार का उदय हुआ। बहुत सी पुरातन जमीदारियाँ जो कठिनाई क समय किसाना को कुछ सुविधाए देन की अभ्यस्त थी और उनका ध्यान रखती थी इस नय भार के नीचे दब गइ और उन्ह निममता स बिक जाना पडा। उन्ह लने वाले धूत और लोभी व्यापारी लोग थे जो किसाना स लगान की एक एक पाई निकलवाने म और अपनी जेबें भरन के लिए कुछ भी उठा नही रखते थे।[1] प्रेमाश्रम' के प्रभाशकर साम ती जमीदार हैं और ज्ञानशकर पूजीपति जमीदार।

सन १९०८ म पूजीवादी अथ व्यवस्था को उस प्रथम बडे आर्थिक सकट का सामना करना पडा जो आगे चलकर सन १९१४ के महायुद्ध म परिणत हुआ। गावा से कृपक मजदूर बनकर नगरो म जान लगे। शोषक वग म भी आर्थिक विषमताजन्य अशांति के चिह्न दिखाई देन लगे। कृपक वग जमीदारा के विरुद्ध उठ खडा हुआ। शोषक वग अपनी स्थिति को दृढ करने क लिए प्रयत्नशील था। विश्वयद्ध क पश्चात भारत म एक दवा हुआ क्षोभ उमड पडा। औद्योगीकरण फलने से पूजीवादी अधिक शक्तिशाली और सपन्न हो गए। य गिने चुने मुट्ठी भर लोग फल फूल रह थे, फिर भी वे अधिक शक्ति और सुअवसरो की खोज म लगे हुए थे जिसस वे अपन धन का सदुपयोग कर सके और उसम वद्धि भी कर सके। अधिकाश व्यक्ति इतने सौभाग्यशाली नही थे और वे उस समय की प्रतीक्षा म थे जब उनको पीसनवाला का भार कुछ कम होगा।[2] 'कमभूमि उपन्यास इसी आर्थिक मन्दी का साहित्यिक सस्करण है। प्रेमचद की कहानियो म भी इस युग की आर्थिक मन्दी का विवरण है।[3] आर्थिक परिस्थितिया इतनी विषम हो गई थीं कि सरकार को लगान कम करन क लिए विवश किया गया। 'पन्त जी की कायविधियाँ कम भूमि के अमर' की कायविधिया हैं। 'कमभूमि म 'अमर' सरकार स लगान की

---

१ इडिया-टडे पष्ठ २१६।

२ मरी कहानी पष्ठ ४४।

३ तुम्हें बाहर की खबर क्या मिली होगी। परसों शहर म गोलियाँ चली। दहातों में आजकल सगीनो की नोक से लगान वसूल किया जा रहा है। किसाना के पास रुपये हैं नहा तो दें कहाँ से। अनाज का भाव दिन दिन गिरता जाता है। पौने दो रुपयो में मन भर गहू आता है। खत की उपज स बीजों तक के दाम नहीं जाते। समर यात्रा (मान सरोवर सातवा भाग) पृष्ठ १०।

छूट की जमीन करता है। किसानों और मजदूरों का संघर्ष बढ़ने लगा। सन् १९२८ २९ का युग हड़तालों और झगड़ों का युग था।[1] सन् १९२९ में मजदूर आन्दोलन में इतनी शक्ति आ गई थी कि लार्ड इर्विन को असेम्बली में इस तथ्य को स्वीकार करना पड़ा था। साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार और प्रसार चिन्ता उत्पन्न करने लगा।[2] प्रेमचन्द की 'डामुल का कैदी' कहानी मजदूर आन्दोलन को लेकर लिखी गई है। 'गोदान' में भी गोबर की कथा के माध्यम से मजदूर आन्दोलन का संकेत मिलता है। युक्तप्रान्त का लगानबन्दी आन्दोलन कृषकों की दयनीय अवस्था का प्रतीक था।

महाजनी सभ्यता ने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के पंजे नाखून और दांत तोड़ दिये। महाजनी सभ्यता के विरुद्ध साम्यवाद कमर कसकर खड़ा था। महाजन इसी नयी लहर से उद्विग्न हो उठा। महाजन समुदाय में एक हलचल सी मच गई।[3] इस पूंजीवाद के विरोध में एक नयी लहर साम्यवाद के नाम से उठी। प्रेमचन्द साहित्य में तीनों युगों का चित्रण है। 'पंच परमेश्वर' जैसी कहानियां भारतीय ग्राम व्यवस्था के गौरव को प्रकट करती हैं। 'रंगभूमि' गांव के छिन्न भिन्न होकर औद्योगिक सभ्यता के आगमन की सूचना है और 'गोदान' में प्रेमचंद पूंजीवादी सभ्यता के सारे कलंक को प्रकट करते हैं। 'मंगलसूत्र' साम्यवाद के आगमन की फटी हुई पौ के समान है।

प्रेमचंद के साम्यवादी विचारों पर कम्युनिस्टों की विध्वंसक प्रवृत्ति का प्रभाव नहीं था। उसके साम्यवाद पर गांधीवाद का प्रभाव था। इसी कारण उनका साम्यवाद भावात्मक अधिक था। प्रेमचंद गांधी जी के हृदय परिवर्तन में विश्वास रखते थे और आशा करते थे कि एक दिन जमींदार का हृदय बदलेगा और वह सौहाद भावना से प्रेरित होकर कृषक से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करेगा। देश से जमींदारी प्रथा मिटेगी और जमीन किसान की होगी। प्रेमचंद एक सीमा तक कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित थे और इसी कारण वे सोचते थे कि समाज में शोषक वर्ग का अन्त होकर रहेगा। देखा जाय तो प्रेमचंद का आदि गांधीवाद है और अन्त साम्यवाद।[4]

प्रेमचन्द युग की आर्थिक परिस्थितियां संक्षेप में सामन्तवाद के पूंजीवाद में बदलने का युग है। इस परिवर्तन के कारण स्वभावतः भारतीय समाज में कई नवीन सामाजिक आर्थिक वर्गों का विकास हुआ। इन नवविकसित वर्गों में प्रमुख

---

१ मेरी कहानी पृष्ठ २०८।
२ इंडिया टुडे पृष्ठ ३४५
३ प्रभात (ग्वालियर)—६ अक्तूबर १९५६ पृष्ठ ८।
४ प्रेमचन्द एक अध्ययन पृष्ठ १५०।

है मध्यवग जो आर्थिक हिता की दृष्टि मे निम्नवग स सम्वद्ध होत हुए भी जीवनादर्शों के लिए उच्चवग का मुखापेक्षी है। प्रेमचद स्वय इस वग के थे इस कारण व इम वग की दुबलनाओ विडम्बनाओ और कुरीतिया स भली भाति परिचित थ। इस कारण उनकी रचनाओ म निम्न, मध्य और उच्च—इन तीनो वर्गों का स्पष्ट चित्रण मिलता है। प्रेमचद युग की आर्थिक परिस्थितियो के उपयुक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका साहित्य तत्कालीन युग की ममस्पर्शी करुण कहानी है।

२

प्रेमचद जीवन-रेखाए

'लमही गाव की धरती की धूल म खेल कूदकर बडा होन वाला 'धनपत ही हिन्दी साहित्य म मुशी प्रेमचद क नाम स विख्यात हुआ। उनका जन्म ३१ जुलाई, सन १८८० म एक मध्यवर्गीय शिक्षित कायस्थ परिवार म हुआ था। पैतक सम्पत्ति के रूप म प्राप्त काश्तकारी पारिवारिक व्यय के लिए अपर्याप्त थी अत इनक पिता श्री अजायबलाल जी को सरकारी नौकरी का आश्रय लेना पडा। इस तरह जहा एक ओर वे कृषक-जीवन की सीमा रेखाओ का स्पश कर रहे थे वहा दूसरी ओर नौकरी पशावर लोगो स भी दूर न थे। प्रेमचद का बचपन आर्थिक विपन्नता म गुजरा। आठ वष की अवस्था म इनकी मा का स्वगवास हो गया। इनके पिता ने अपनी पत्नी आनन्दीदेवी की मृत्यु क दो वष पश्चात दूसरा विवाह कर लिया और इन्ह दो वष बाद, दादी जी की मृत्यु के उपरान्त विमाता क दुर्व्यवहार का सामना करना पडा।

प्रेमचद का बचपन जिस गरीबी मे गुजरा उसन उन्ह स्पष्ट बता दिया कि जीवन-सग्राम कितना भीषण है। उनका मोटा झोटा खाना पहरना' था। बारह आने वाला अधरा के पुल का चमरौधा जूता और चार आने गज क कपडा—ये ही उनके जीवन की समस्त आवश्यकताए थी।[1] बचपन की इन आर्थिक विषमताओ ने ही उन्ह मितव्ययता का पाठ पढा दिया था। उनके परिवार मे साधारण दनिक जीवन की आवश्यकताए ही कठिनाई से पूण हो पाती थी। वहा अभाव का नाम ही बचत था और यही बचत उनका जीवन' था। बचपन की आवश्यकताए आयु के साथ बढने लगी। पसा की 'खनक क साथ उनका दूर का भी परिचय नही था अत

---

१ प्रेमचद घर में पष्ठ २३।

उसके प्रति उनका बाल-सुलभ आकर्षण ही नहीं, उसको पाने की अभिलाषा भी थी। इसी कारण फीस के मात्र बारह आने मौलवी साहब को देने से पूर्व ही कम हो जाते। विमाता के कोप से त्रस्त वे इस सम्बन्ध म पिता से भी कुछ नहीं कह पाते।[1] आर्थिक विपन्नता, विमाता का कटु व्यवहार और पिता की उदासीनता के बीच उन्होने जो देखा और अनुभव किया उससे बाध्य होकर उन्होने जीवन से समझौता सा कर लिया। जीवन के प्रारम्भिक सघर्षों ने उनके भीतर एक शक्ति जगा दी थी जिसने जीवन म बार-बार हार-हारकर खेलने के लिए उन्हे प्रेरित किया।

प्रेमचद के पिता डाकखाने मे कर्मचारी थे अतएव उनका स्थान-परिवर्तन होता रहता था। इसी कारण उन्ह गावो म भी जाने का अवसर मिलता रहता था। सन १८९२ म उनके पिता का तबादला जौनपुर हुआ और उन्हे भी उनके साथ वहा जाना पडा। इस घटना का विवरण देते हुए स्वय प्रेमचद ने लिखा है— 'पिताजी ने जो मकान ले रखा था, निहायत गन्दा था। उसी के दरवाजे पर एक कोठरी थी वही मुझे सोने के लिए मिली। मैं विनोद के लिए तम्बाकूवाले के मकान पर चला जाया करता था। मेरी आयु उस समय बारह वर्ष की थी।'[2] इसी तम्बाकूवाले के यहा वे तिलिस्म ए होशरुबा का अध्ययन करते थे। इसी समय कथाकार प्रेमचद ने साहित्य-साधना के लिए अपनी लेखनी उठाई। वे लिखते और फाडते। कभी-कभी पिता की दृष्टि उधर पडती और वे पूछते, "नवाब, कुछ लिख रहे हो ?"[3] तो वे सकोचवश चुप रह जाते। उनकी पहली रचना अपने मामा के प्रणय प्रसग पर लिखी गई थी जो अब उपलब्ध नही है। प्रेमचद ने स्वय इसका उल्लेख किया है।[4] उन्होंने बचपन की प्रारम्भिक शिक्षा मौलवी साहब के सरक्षण म प्राप्त की और जब 'हाई स्कूल' म प्रवेश लिया तो शिक्षा महगी पडने लगी। फीस के बारह आने दस गुने हो गये। पैसो की दिक्कत उन्ह हमेशा रहती थी,[5] अब कठिनाई और बढ गई। उन्होंने खर्चे के लिये पिता से पाच रुपये माहवार मागे। इन पाच रुपयो म से दो रुपये फीस के कट जाते एक रुपया दूध मे खर्च हो जाता और शेष दो रुपये जीवन की अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु अपर्याप्त ठहरते। अपनी विपन्नता के सम्बन्ध म उन्होंने लिखा है 'पाव म जूते न थे। देह पर कपडे न थे। महगी अलग। दस सेर का जौ था। स्कूल से साढे तीन बजे छुट्टी मिलती थी। काशी के क्वीन्स कॉलेज म पढता था। हेडमास्टर ने फीस माफ कर दी थी। इम्तिहान सिर पर था और मैं बास के फाटक एक

---

१ प्रेमचद घर म पृष्ठ ५।
२ वही पृष्ठ ४।
३ वही पृष्ठ ४।
४ कफ़न, पृष्ठ ५१ ५२।
५ प्रेमचद घर में पृष्ठ ४।

लडके का पढाना जाता था। जाडो के दिन थे। चार बजे पहुचना था। पढाकर छ बजे छुट्टी पाता। वहा से मेरा घर देहात म पाच मील पर था। तेज चलो, फिर भी आठ बजे से पहले घर न पहुच सकता और प्रात काल आठ ही बजे फिर घर से चलना पडता था। वक्त पर स्कूल न पहुच पाता। रात को भोजन करके कुप्पी के सामने बैठना और न जाने कब सो जाता। फिर भी हिम्मत बाधे हुए था।[1] उनके जीवन का हर पहलू सघर्षों की एक कहानी था और इस सकटपूर्ण स्थिति म उनका विवाह भी कर दिया गया। विवाह म प्रसन्नता से वे सक्रिय रहे। मण्डप के लिए उन्होने स्वय ही बास काटे।[2] एक ओर जहा जीवन के प्रति इतना अनुराग था वहा दूसरी ओर निधनता का भी विपुल साम्राज्य था। विवाह के लिए खरीदा गया गुड उनसे और उनके मित्रो के हाथो से बच न सका और जब सयम रखना कठिन हो गया तो सन्दूक की चाबी, जिसम गुड रखा हुआ था, कुए म डाल दी गई। जीवन का दारिद्रय उनके उत्साह पर कुप्रभाव नही डाल सका।[3] विवाह की प्रसन्नता अधिक देर टिक न सकी। पत्नी उनसे उम्र म बडी ही नही कुरूप और फूहड भी थी और इसी से पहले दिन से उसके प्रति जो मन विमुख हुआ सो बात सबध विच्छेद पर ही आकर रुकी। परिवार म कलह बढ गई। इसका प्रभाव उनके पिता पर भी पडा और सन १८९७ म उनकी मृत्यु के बाद परिवार का पूरा बोझ उन पर आ पडा। पत्नी विमाता और उसके पुत्रो की जिम्मेदारी—घर की गरीबी। प्रेमचद ने इन दिनो को याद करते हुए लिखा—

या वह बडे विचारशील जीवन-पथ पर आखें खोलकर चलने वाले आदमी थे लेकिन आखिरी दिनो म एक ठोकर खा ही गये और खुद तो गिरे ही थे उसी धक्के म मुझे भी गिरा दिया। पन्द्रह साल की अवस्था म उन्होने मेरा विवाह कर दिया और विवाह करने के साल ही भर बाद परलोक सिधारे। उस समय मैं नवे दर्जे म पढता था। घर म मेरी स्त्री थी विमाता थी, उनके दो बालक थे और आमदनी एक पसे की नही। घर म जो कुछ भी पूजी थी, वह पिता जी की छ महीने की बीमारी और क्रिया-कम म खच हो चुकी थी।[4] विमाता और पत्नी म इतना सघष बढा कि एक दिन उन्होने हमेशा के लिए उन्ह उनके मायके भेज दिया और वे फिर कभी नही आयी न उन्ह बुलाया ही।[5]

प्रेमचन्द की अपनी महत्त्वाकाक्षाए थी किंतु परिस्थितिया एकदम प्रतिकूल थीं।

---

१ कफन पष्ठ ५७ ५८।
२ प्रेमचन्द घर म पृष्ठ ६।
३ वही पृष्ठ ६।
४ कलम और त्याग रचनाए पृष्ठ ८३।
५ प्रेमचन्द घर म परि० ७ पष्ठ १०।

उनका स्वप्न एम०ए० पास करने का और वकील बनने का था किन्तु समय उनके भाग्य का साथ नही द रहा था। नौकरी दुष्प्राप्य थी। आगे बढने की लगन थी। बात पर इतनी ही थी कि पाव म लोह की नही अष्ट धातु की बेडिया थी और वे चढना चाहते थे पहाड पर।[1] इसी बीच बाल विधवा शिवरानी देवी से उन्होने पुनर्विवाह किया। हाईस्कूल पास करने के पश्चात क्वीन्स कॉलिज म उन्हे प्रवेश नहीं मिल सका। हिन्दू कालेज नया खुला था जहा योग्यता के आधार पर प्रवेश सभव था परन्तु गणित म असफल होने के कारण यहा भी उन्हे प्रवश न मिल सका। गणित उनके लिए गौरीशकर की चोटी थी जिस पर व कभी न चढ सके। निराश हो उन्हें घर लौट आना पडा परन्तु पढने की लालसा ने उन्हें विवश किया कि व शहर म रहकर गणित सुधारें और कॉलिज म प्रवेश प्राप्त कर लें।[2] परन्तु सब कामा के लिए धन की आवश्यकता थी। ऐसे समय टयूशन ही एकमात्र उनकी जीविका का साधन थी। इन्होने इन दिना का जिक्र करते हुए लिखा है—*'सयोग स एक वकील साहब क लडके को पढाने का काम मिल गया। पाच रुपय* वतन ठहरा। मैंने दो रुपय म गुजर करके तीन रुपये घर देने का निश्चय किया। वकील साहब के अस्तबल क ऊपर एक छोटी-सी कच्ची कोठरी थी। उसी म रहने की आज्ञा ले ली। एक टाट का टुकडा बिछा लिया। बाजार से एक छोटा सा लम्प लाया और शहर म रहने लगा। घर से कुछ बरतन भी लाया और एक वक्त खिचडी पका लेता और बरतन धो माजकर लायब्रेरी चला जाता। पर गणित तो बहाना था उपन्यास आदि पढा करता। पडित रतननाथ सरशार का फसान ए-आजाद इन्हा दिनो पढा। 'चन्द्रकान्ता सतति' भी पढा। बकिम बाबू क उर्दू अनुवाद जितने पुस्तकालय म मिले सब पढ डाले।[3]

प्रेमचद के जीवन के प्रारम्भिक दिना म आकाक्षाए पूरी नही हुई। न कभी स्वादपूर्ण भोजन मिला न ढग का कपडा। इसी कारण इनके प्रति उनके मन मे हमशा एक दुबलता बनी रही। जिस दिन उनको पसे मिलत उस दिन उनका सयम हाथ से निकल जाता। उनकी तृष्णा उन्ह हलवाई की दुकान पर खीचकर ले जाती और फिर दूसरे दिन से उधार लेने का सिलसिला चल निकलता। कभी कभी उधार लेने म सकोच होता तो उपवास रखकर वक्त गुजार देते। दुकानदार से लेकर बलदार तक उनके महाजन थे। धीरे धीरे ऋण इतना बढ गया कि ऋण *मिलना भी बद हो गया। विवश होकर उन्ह अपनी चक्रवर्ती गणित की कुजी* बेचनी पडी जिस वे बडे यत्न से रखे हुए थे।[4]

---

१ कलम पष्ठ ६।
२ वही पृष्ठ ६० ६१।
३ वही पृष्ठ ६१।
४ वही पृष्ठ ६१।

जीवन को डगर निरन्तर निधनता के बीच-बीच जा रहा थी। ये दिन उनके लिए अत्यधिक कष्टप्रद थे। उनकी विवशता चरम बिन्दु पर पहुंच चुकी थी। सौभाग्य की बात है कि गणित की कुंजी का सौदा करते समय एक सज्जन से भेंट हो गई जिसने उन्हें अध्यापक पद का निमन्त्रण दिया। अध्यापक का पद सम्हालने ही उनकी विपन्नता के बन्धन शिथिल हो गए। इन कठिनाइयों के दिनों में भी उनकी साहित्य-साधना रुकी नहीं। उनके प्रथम कहानी-संग्रह 'सोज़ वतन' के प्रकाशित होते ही न केवल पाठकों का अपितु सरकार का भी ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ पर उनके लिए सरकार का आकर्षण मंहगा पड़ा क्योंकि सरकार ने इस संग्रह को जब्त कर लिया। सरकार के कोप से बचने के लिए मुंशी दयानारायण निगम के कहने पर 'सोज़े वतन' के लेखक नवाबराय को प्रेमचन्द बनना पड़ा। "चार पैसे पास नहीं और नाम नवाबराय!" अपने नाम के प्रति यह कटु व्यंग्य प्रेमचंद को रुचिकर नहीं लगता था पर विवशता में यह 'नाम स्वीकार करना ही पड़ा। वे उपनाम से संतुष्ट थे जिसमें ठसक भी थी और संताप भी।" अध्ययन लेखन और अध्यवसाय साथ-साथ चलते रहे। इस निरन्तर जीवन-संघर्ष के कारण उनमें स्वावलम्बन के महत्त्व श्रम का सम्मान और सहज मानवीयता के भाव जागृत हो चुके थे। उन्होंने जीवन के उतार चढ़ाव अत्यन्त निकटता और सूक्ष्मता से देखे थे। इसी कारण अपने जीवन में उन्होंने आडम्बरों को कोई स्थान नहीं दिया। आर्थिक दृष्टि से जीवन में स्थिरता आने लगी थी फिर भी उन्होंने जीवन की आवश्यकताओं को बढ़ाया नहीं। अपना काम वे स्वयं करते थे। घर में झाड़ू देने से रोटी बनाने तक का काम वे स्वयं आवश्यकता पड़ने पर कर लेते थे। उनकी दृष्टि में अपना काम करना कोई अपराध नहीं था। वे स्वयं अपने को मजदूर समझते थे।[1]

सन् १९३० में गांधी जी का असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। गांधी जी गोरखपुर आये तो उनका भव्य स्वागत देखकर प्रेमचंद को बहुत आश्चर्य हुआ। इस घटना का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा था— दो लाख से कम का जमाव न था। क्या शहर, क्या देहात श्रद्धालु जनता दौड़ी चली आयी। ऐसा समारोह मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखा था। महात्मा जी के दर्शन का यह प्रताप था कि मुझ जैसा मरा आदमी भी चेत उठा। इसके दो चार दिन बाद ही मैंने अपनी बीस साल की नौकरी से इस्तीफा दे दिया।'[2] सरकारी पद त्याग कर प्रेमचंद ने चरखे की दुकान खोली पर उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। इसके बाद उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन में प्रारम्भ किये गये एक विद्यालय में नौकरी

---

१ प्रेमचंद घर में पृष्ठ ३६।
२ कफन, पृष्ठ ८६।

की पर-तु यहा भी उनकी नहीं पटी। उन्होन डेढ वष तक 'मर्यादा' का सम्पादन किया और काशी विद्यापीठ म भी अध्यापन का काय करते रहे और बाद म 'लमहा गाव लौट आये।

देश म होने वाला हलचलें उन्ह प्रभावित करती रहीं। वे सरकार के व्यवहार से क्षुब्ध थे। जनता के प्रति होन वाले अत्याचार और अ याय स उनका अन्तर व्याकुल रहता और इसकी अभिव्यक्ति वे अपनी रचनाओ म करत। वे अत्यन्त निकट से जनजीवन को देख चुके थ। इसी कारण छोटे से छोटा दु ख-दद उनकी रचनाओ म मूत होकर आया है। उनकी दृष्टि म सब समान है इसलिए वग भेद की दीवार मूल्यहीन है। व कहते थे—'मैं छोट और बडे दोना की हिमाकतों स दूर रहना चाहता हू।"[1] लखनऊ म गवनर के आगमन पर उसके स्वागताथ फूकी जाने वाली आतिशबाजी को देखकर उन्होन कहा था— 'जिस देश म भरपट रोटी और तन ढापन को वस्त्र प्रजा को उपलब्ध न हो वहाँ यह उचित नही कि हजारो लाखा की आतिशबाजी केवल इसलिए फूक दी जाए कि गवनर साहब प्रसन्न होग और कुछ मोटे आदमियो को खिताब देंगे। यह धन आता कहा से है? प्रजा स! काश्तकारो से! इस स्थिति म आतिशबाजी फूकना जनता का घर फूकना है।"[2]

प्रेमचद का जीवन अभावो म गुजरा था परन्तु दूसरा स वे कुछ अतिरिक्त नही चाहते थे। महाराजा अलवर का निमत्रण ठुकरात हुए उन्होन सहज भाव म लिख दिया कि उनकी रचनाए व पढ लते हैं उनके लिए इतना ही बहुत है।[3] उन्होन रायसाहब' का खिताब भी ठुकरा दिया था। उन्होने इस सम्ब ध म विनीत किन्तु दृढ निश्चय क साथ लिखा था—'मैं तो जनता का तुच्छ सेवक हूँ। अभी तक तो काम जनता के लिए हुआ है तब गवनमट मुझ स जो लिखवायेगी लिखना पडगा। तब मैं जनता का आदमी न रहकर एक पिट्ठू रह जाऊगा—उसी तरह जस और लोग हैं।" उन्ह जनता की 'रायसाहबी' सिर आखा पर थी। गवनमट की रायसाहबी उनके लिए मूल्यहीन थी। सन १९३० क आन्दोलन स प्रेमचद अत्यधिक प्रभावित हुए थे। व स्वय जेल नही जा सके थे परन्तु उनकी पत्नी शिवरानी देवी पिकेटिंग के अपराध म जेल गई थी। उन्होने अपन लिए कहा था —"मैं क्रियात्मक आदमी नही हू।'

प्रमचद न 'हस' और 'जागरण' पत्रा का सम्पादन भी किया। उनकी स्वय अपनी प्रेस थी। व मजदूरा का ध्यान रखते थे, फिर भी एक बार मैनेजर स परेशान

१ प्रमचन्द और गोर्की पष्ठ १९।
२ प्रमचन्द घर म पष्ठ १४७।
३ वही पृष्ठ ६७।

थे। राजनीति क्षेत्र में गांधी जी अपने विचारों को प्रकट कर रहे थे और प्रेमचंद साहित्य क्षेत्र में। गांधी जी के सभी प्रयत्न स्वराज्य प्राप्ति के लिए थे। प्रेमचंद भी स्वराज्य संग्राम में विजयी होने की कामना करते थे। धन या यश की लालसा उन्हें नहीं थी। मोटर-बंगले की हविस भी नहीं थी। हां इतना वे अवश्य चाहते थे कि दो चार उच्च कोटि की पुस्तकें लिखें और उनका उद्देश्य स्वराज्य विजय ही हो।[1] सन् १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। इन दिनों प्रेमचंद अस्वस्थ थे। गोर्की के निधन पर उन्होंने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी। ८ अक्तूबर, सन् १९३६ को लम्बी बीमारी के बाद प्रेमचंद इस संसार से विदा हो गये।

प्रेमचंद का जीवन संघर्षों की एक लम्बी कहानी है। अपने जीवन के संबंध में उन्होंने लिखा था— मेरा जीवन सपाट और समतल मैदान है जिसमें कहीं-कहीं गड्ढे तो हैं पर टीलों, पर्वतों घने जंगलों, गहरी घाटियों और खण्डहरों का स्थान नहीं।'[2] जीवन-संघर्षों ने उन्हें एक स्वस्थ जीवन-दृष्टि प्रदान की थी। तभी उन्होंने दुनिया को एक खेल का मैदान समझा था और अपने को एक खिलाड़ी और तब जीवन में मिलने वाली हार जीत के लिए रोना हंसना क्या ? मुंशी दयानारायण के पुत्र के स्वर्गवास पर अपना हार्दिक शोक प्रकट करते हुए उन्होंने अपने इसी जीवन दर्शन को अभिव्यक्त किया था। जीवन में हार हारकर खेलना है। हारकर फिर खेलना है— 'शायद आगे जीत हो ! हार गये तो 'पस्त हिम्मती रकमर' क्या बांधें। पर जो खेल में शरीक होगा वह बखूबी जानता है कि हार-जीत दोनों सामने आयेंगी। इसीलिए उस हार से मायूसी नहीं होती, जीत से फूला नहीं समाता। हमारा काम तो सिर्फ खेलना है—खूब दिल लगाकर खेलना, खूब जी तोड़कर खेलना। अपने को हार से इस तरह बचाना गोया हम संसार की दौलत खो बैठेंगे लेकिन हारने के बाद, पटखनी खाने के बाद गर्द झाड़कर खड़े हो जाना चाहिए और फिर एक बार खम ठोककर हरीफ (प्रतिद्वंद्वी) से कहना चाहिए कि एक बार और।

'रंगभूमि' का 'सूरदास प्रेमचंद के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। सूरदास हार-हारकर खेलता है और 'गोदान' का होरी खेलता जाता है। उसे न हार की चिन्ता न जीत की। प्रेमचंद का यह जीवन दर्शन उनके अपने संघर्षों का सारतत्त्व है जो उनके उपन्यासों के मूल में कहीं न कहीं अन्तर्निहित है। प्रेमचंद घोर अनीश्वर वादी थे। मृत्यु से कुछ घंटे पूर्व इन्होंने कहा था— 'जैनेन्द्र लोग ऐसे समय ईश्वर की याद करते हैं परन्तु मुझे अभी तक ईश्वर को कष्ट देने की जरूरत नहीं मालूम

---

१ चिट्ठी-पत्री भाग-२ (संकलनकर्त्ता अमृतराय) पृष्ठ ७७।
२ वही पृष्ठ ५७।

हुई।'

प्रेमचद का जीवन स्वय एक उच्चकोटि की रचना है। उनके जीवन को विकास के तीन क्रमो के रूप म देखा जा सकता है। पहला क्रम जन्म से सोलह वर्ष की अवस्था तक जिसे जीवन सग्राम के लिए तयारी का समय मान सकते हैं। दूसरा क्रम ४१ वष की अवस्था तक जिसम उन्होने उस जमाने की सरकारी नौकरी का अभिशाप झेलते हुए साहित्य साधना की और तीसरा क्रम मत्यु पय त चला, जिसम उ होने जीवन,और युग स निरन्तर युद्ध करते हुए साहित्य के अनमोल रत्न प्रस्तुत किए।[1] जीवन के इन विकासो को उनके जीवन दशन के निर्माण म सहायक मान सकते है। उनका जीवन दशन ही उनके अनुभवो और अनुभूतियो को अधिक साथक और यथाथवादी रूप म साहित्य म अभियक्ति दे सका है। उनके जीवन सघर्षों और जीवन-दशन से परिचित होकर ही उनके साहित्य का मूल्याकन सभव है। उनके जीवन की घटनाओ, उनके विचारो और उनके दशन के आधार पर ही उनकी साहित्य-साधना का माग प्रशस्त हुआ था।

साहित्य के प्रति प्रेमचद का दृष्टिकोण

प्रेमचद का साहित्य जितना अनुभूतिजन्य है उतना कल्पनाजन्य नही। उनके लिए साहित्य रचना विलास नही, विवशता थी। उनके विचार म लेखक जो कुछ लिखता है अपनी कुरेदन और तडपन से लिखता है। उनकी यह प्रबल आकाक्षा थी कि उनके भीतर जितनी कुरेदन और तडपन पदा हो उतना ही अच्छा है।[2] उनके मन मे जो अभाव था वही साहित्य म 'भाव' रूप ग्रहण कर समाज-सापेक्ष बन गया।

प्रमचद की साहित्य सम्बन्धी अपनी धारणाए थी। वे साहित्य, राजनीति और समाज म अटूट सम्ब ध मानत थे। उनके विचार म ये तीना चीजें माला जसी एक सूत्र म परस्पर जुडी हुई है। जिस भाषा का साहित्य अच्छा होगा उसका समाज भी अच्छा होगा। समाज के अच्छे होने पर मजबूरन राजनीति भी अच्छी होगी।[3] उनकी दृष्टि म साहित्य समाज-सापेक्ष है। साहित्य काल विशेष का प्रतिबिम्ब होता है। जो भाव और विचार लोगो के हृदयो को स्पदित करते हैं वे ही साहित्य को भी प्रभावित करते हैं। साहित्य समाज का दपण है परन्तु दपण होने पर उसम लोगो को विकास का माग दिखाई नही देगा। इसी सत्य को ध्यान म रखते हुए उ होने साहित्य की परिभाषा करते हुए लिखा था— साहित्य

---

१ प्रेमचद एक अध्ययन पृष्ठ ४५।
२ प्रमचद घर म पृष्ठ २०० २१६।
३ वही पृष्ठ ९।

की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। वह जीवन की समस्याओं पर विचार करता है और उन्हें हल करता है।"

साहित्य म ज्ञान उपदेश और तर्क नही, रस, भावुकता और कोमलता भी है। इसी से साहित्य हृदय की वस्तु है मस्तिष्क की नही। जहा ज्ञान और उपदेश अपना प्रभाव दिखा नही पाता वहा साहित्य बाजी ले जाता है। इन विशेषताओ के कारण ही साहित्य का अपना अर्थ है। उनके विचार म साहित्य उसी रचना को कहगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ, परिमार्जित और सुदर हो, और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। साहित्य म यह गुण पूर्णरूप म उसी अवस्था म उत्पन्न होता है जब उसम जीवन की सचाइया और अनुभूतिया व्यक्त की गई हो।[2]

साहित्य कलाकार के आध्यात्मिक सामजस्य का व्यक्त रूप है और सामजस्य ही सौदय की सष्टि करता है। कलाकार सौदर्य को केवल प्रकृति के विभिन्न उपकरणो म ही नही पाता समाज के सत्सम्बधों म भी देखता है। प्रेमचद इसी लिए सौन्दय का मन के रोगो की औषधि मानते हैं। उन्होने स्वीकार किया—'सौदयपरक साहित्य उस चिकित्सक के समान है जो हमारी कमजोरियो मानसिक और नैतिक गिरावट का इलाज करता है। कलाकार की कृति हम म सौदय की अनुभूति और प्रेम की उष्णता को जगाती है। उसका एक एक शब्द और वाक्य हमारे अतस म पैठकर उसे प्रकाशित करा देता है।[3]

प्रेमचद ने साहित्य का उद्देश्य और साहित्यकार का कर्तव्य भी निर्दिष्ट किया। उन्होंने स्पष्ट कहा—'मनुष्य स्वभाव से देवतुल्य है। जमाने के छल प्रपच या परिस्थितियो के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बठता है। साहित्य इसी देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास करता है—उपदेशो स नहीं, नसीहतो स नही—भावो को स्पदित करके मन के कोमल तारो पर चोट लगा करके प्रकृति से सामजस्य उत्पन्न करके।'

प्रेमचद व्यक्तिवादी नही समाजवादी थे। इसी कारण उनका दष्टिकोण समाज सापेक्ष था। प्रेमचद ने साहित्य को उपयोगिता की कसौटी पर कसा। साहित्य एक उपयोगी कला है। समाजोपयोगी साहित्यकार एकदेशीय और एक काल से सम्बद्ध होकर भी सार्वभौमिक और सार्वकालिक होता है। उसकी आत्मा महान होती है और उसका दष्टिकोण व्यापक होता है। उसकी कलाकृति उसके

---

१ कुछ विचार पष्ठ ६८।
२ वही पष्ठ ४३।
३ वही पृष्ठ १०।
४ वही पष्ठ ८६।

अहं की पूर्ति और व्यक्तित्व तक ही सीमित नहीं रहती वरन उसमें तो युग युग की और जन जन की आत्मा झाँकती प्रतीत होती है।[1]

साहित्य केवल व्यक्ति मात्र से सम्बंधित नहीं—वह समाज से भी पूरी तरह जुड़ा हुआ है। इसी कारण साहित्य में सुंदरता की कसौटी निर्धारित करते समय व्यक्तिगत रुचि का प्रश्न नहीं है बल्कि उसकी सामाजिक व्याख्या अधिक अभीष्ट है। समय परिवर्तनशील है और इसके साथ विचारों और मान्यताओं में भी परिवर्तन आता जाता है। प्रेमचंद पूर्व साहित्य की सुंदरता की कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी। कलाकार की अर्थप्राप्ति की दृष्टि से की गई कला-साधना का एक निश्चित क्षेत्र और एक निश्चित उद्देश्य था। अपने आश्रयदाताओं के सुख दुःख, आशा निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वंद्विता की 'व्याख्या' करना ही उनकी कला का उद्देश्य था। उसकी अंतर्दृष्टि अंतःपुर और विशाल अट्टालिकाओं से चिपककर ही रह गई थी जिसके परिणामस्वरूप दीन की झोपड़ी और उसमें घुटनी सिसकती करुण ध्वनि उसकी कृपादृष्टि अपनी ओर आकर्षित करने में अशक्त थी। इस सब को वह मनुष्यता की परिधि से बाहर की बात मानता था। कभी भूले भटके इसकी चर्चा कर बैठता तो भी उसका एकमात्र कारण होता था उसकी उपहास करने की प्रकृति। उन निर्धन व्यक्तियों में भी जीवन का स्पंदन है—आकांक्षाएँ हैं और उनमें भी हृदय और मस्तिष्क जैसी वस्तु है यह उसकी कल्पना के बाहर की बात थी।[2]

प्रेमचंद ने समाज की वर्ग भावना को मिटाना चाहा। वे समाज में समानता के पक्षपाती थे। परन्तु वे समानता को नैतिक बंधनों पर आश्रित रखने के इच्छुक [illegible] थे। वे उसको एक ठोस धरातल और एक निश्चित रूप देना चाहते थे। इसके लिए वे [illegible] समाज को सर्वांगपूर्ण बनाना चाहते थे जहाँ समानता नैतिक बंधनों पर आश्रित न रहकर अधिक दृढ़ रूप प्राप्त कर लें।[3] उनके विचार में साहित्य मनोरंजन की वस्तु नहीं वरन् [illegible] उस [illegible] का नाम है जो मनुष्य के हृदय में अन्याय अनीति और कुरीति से उत्पन्न होता है।

प्रेमचंद साहित्य में आदर्श और यथार्थ का समन्वय चाहते थे। नग्न यथार्थ पुलिस की रिपोर्ट मात्र है और नग्न आदर्श [illegible] का [illegible]। यथार्थ हमें [illegible] से परिचित करा देता है। जीवन में जो अभाव और दुर्बलताएँ हैं उनका चित्रण हमें [illegible] और निराशावादी बना देता है और आदर्शवाद हमें कल्पना

---

१ कुछ विचार पृष्ठ १०।
२ वही पृष्ठ १०।
३ वही पृष्ठ १३।
४ वही पृष्ठ ३८।

लोक की रगीन छाया म ले जाता है। दानो जीवन के दो छोर है। यथाथ को प्रेरक बनाने के लिए आदश और आदश को सजीव बनान के लिए यथाथ की आवश्यक्ता है। वे उपन्यासा म समस्या के चित्रण म यथाथवादी थे और उनके समाधान म आदशवादी।[1]

तत्कालीन युग म जिस कमण्यता की माग की जा रही थी उसको लक्ष्य मे रखकर उन्होने म साहित्य की परिभापा दत हुए लिखा था— हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसम उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो सौन्दय का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइया का प्रकाश हो—जो हमम गति और सघप की बचनी पदा करे, सुलाये नही—क्योकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।[2]

प्रेमचन्द ने साहित्यकार का कत्तव्य भी निर्धारित किया था। साहित्यकार पदा हाना है बनाया नही जाता।[3] वह युग विशेष की उपज होता है। साहित्य कार जन जीवन से तटस्थ रहकर साहित्य सृजन नही कर सकता। वह हमारा माग प्रदशक होता है। वह हमारे मनुष्यत्व को जागत कर हमारे दृष्टिकोण म व्यापकत्व प्रदान करता है। प्रेमचद पूव साहित्य-साधना एकातिक थी। प्रेमचद न युग परिस्थितियों को अत्यन्त गहराइ स दखा और अनुभव किया कि आज क साहित्यकार का जीवन म डूबकर साहित्य रचना करनी हागी। प्रेमचद साहित्यकार को 'गति और प्रगति' का लेखक मानन थे। इसी विचार को उन्हान प्रगतिशील लखक सघ के सभापति पद स भापण दत हुए व्यक्त किया था। साहित्यकार या कलाकार स्वभावत प्रगतिशील होता है। अगर उसका यह स्वभाव न हाता ता शायद वह साहित्यकार ही न होता। उसे अन्दर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी। इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बचन रहती है। अपनी कल्पना म वह व्यक्ति और समाज का सुख और स्वच्छन्दता को जिस अवस्था म देखना चाहता है वह उसे दिखाई नही देती इसलिए वतमान मानसिक और सामाजिक अवस्थाओ से उसका दिल कुढता रहता है। वह इन अप्रिय अवस्थाओ का अन्त कर देना चाहता है, जिससे दुनिया जीने और मरन के लिए इसस अधिक अच्छा स्थान हो जाए। यही वेदना और यही भाव उसके हृदय और मस्तिष्क को सक्रिय बनाए रखता है। उसका दद स भरा हृदय इस सहन नहा कर सकता कि एक समुदाय क्यो सामाजिक नियमो और गरीबी स छुटकारा पा जाए। वह इस वेदना को जितनी बचनी के साथ अनुभव करता है

१ कुछ विचार पष्ठ ४३।
२ वही पष्ठ २१।
३ वही पष्ठ १६।

उतनी ही उसकी रचना में जोर और सच्चाई पैदा होती है। अपनी अनुभूतियों को वह जिस अनुपात में व्यक्त करता है वही उसकी कला-कुशलता का रहस्य है।[1]

सच्चा साहित्यकार बनने के लिए संकीर्णता और स्वार्थ की सीमाओं को तोड़ना आवश्यक है। संवेदना और भावुकता उसके दो विशिष्ट गुण हैं। प्रेमचन्द साहित्य को कल्पना की रंगीन मादक छाया से ढका देखना नहीं चाहते थे। वे जीवन के सरल उन्मुक्त प्रवाह की भाँति उसकी गति भी स्वच्छ और उन्मुक्त चाहते थे। वे कहते थे—लेखक वही लिखे जो वह एकाग्रमन से सोचता है। वे लिटरेचर को मस्क्यूलिन देखना चाहते थे। प्रेमचन्द ने साहित्य में कर्मयोग की महत्ता स्थापित की। उनके अनुसार साहित्यकार साहित्यिक तपस्वी है, संन्यासी है और साधक है जिसकी साधना निर्लिप्त, निर्भीक और निष्काम होनी चाहिए। उन्होंने उनका 'साहित्य मंदिर' में प्रवेश निषिद्ध कर दिया जिनको धन वैभव प्यारा हो। कोई बड़ा व्यक्ति भी महान् हो सकता है इसकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। एक पत्र में उन्होंने लिखा था— कोई महान् व्यक्ति धनी आदमी भी हो सकता है इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। मेरे ऊपर से किसी भी कलाकार एवं कला का प्रभाव उसी समय उठ जाता है जब मुझे मालूम होता है कि वह धनी है। साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि वह व्यक्ति वर्तमान समाज व्यवस्था का भारी समर्थक है जिस समाज व्यवस्था में गरीबों पर बड़े लोगों का खुला शोषण स्वीकार किया गया है।[2] वे अपनी निर्धनता से कभी असन्तुष्ट नहीं हुए उलटे उनको तो उससे प्रसन्नता ही मिलती थी। प्रेमचन्द कहते थे— मेरे भाग्य और मेरे मन की जो गति गरीबों के साथ मुझे मिलाकर एकाकार करती है सचमुच मैं उससे खुश हूँ। इससे मेरे मन को शान्ति भी मिली है।" उन्हें सच्चे साहित्य सेवियों पर अभिमान था और उन्हें ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी जो समाज की सेवा कर सकें। उनके विचार में मानव समाज की बुराइयों को दूर करने की चेष्टा प्राणी मात्र का कर्तव्य है। जिसे अन्याय देखकर क्रोध नहीं आता वह यही नहीं कि कलाकार नहीं है बल्कि वह मनुष्य भी नहीं है।[3]

प्रेमचन्द ने उपन्यास और कहानी-कला के सम्बन्ध में भी कुछ मान्यताएँ स्थापित की थीं। उनके विचार में उपन्यास मानव-जीवन का चित्र है। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल

---

१ कुछ विचार पृष्ठ ११।
२ प्रेमचन्द और गोर्की पृष्ठ ८९ ८६।
३ कुछ विचार पृष्ठ १९। साहित्य का उद्देश्य पृष्ठ १०३।

तत्त्व है। चरित्र सम्बन्धी समानता और अभिनता—अभिनता म भिन्नत्व और विभिन्नता म अभिन्नत्व दिखाना उपयास का मुख्य कतव्य है।[1] उपयास म चरित्र चित्रण का अपना महत्त्व है। उपयासकार अपने भावा का यथातथ्य चित्रण ही नही करता अपितु अपनी तरफ स कुछ उसम जोडता भी है। इसी कारण उपयास आदशवादी और यथाथवादी नाम से अभिहित किय जाते हैं। व उपन्यास ही उच्चकोटि क समझे जाते हैं जिनम आदश और यथाथ का समवय हो। वे पात्र ही पाठक को प्रभावित करते हैं जिनमे मानव की अच्छाइया और बुराइया दोना हा।[2] जिस व्यक्ति म देवत्व अधिक है दुबलताए नही—वह प्रभावशाली नही हाता क्याकि व्यक्ति के चरित्र की उत्कृष्टता और महानता इसी म है कि वह अपनी दुबलताओ पर विजय प्राप्त कर देवत्व के निकट पहुचे। उपयास म वणनात्मकता आवश्यक नहीं क्योंकि पाठक अपनी कल्पना का सदुपयोग भी चाहता है। उपयास की रचनाशली प्रभावोत्पादक और सजीव होनी आवश्यक है।

उपयास का विषय कुछ भी हा सकता है परन्तु उसका महत्त्व और उसकी गहराई भी उपयास की सफलता म अपना महत्त्वपूण स्थान रखती है।[3] उपयासकार का यह कतव्य है कि वह अपनी सजनशक्ति द्वारा पाठको के हृदय म वे भाव ही जागृत कर दे जो उसके पात्रा म हैं और पाठक उनसे तादात्म्य स्थापित कर लें। उपयास म वार्तालाप परिस्थितिया पात्रा और विषय के अनुकूल होकर भी सरल और स्वाभाविक हा। उपयास की सफलता इसी म है कि अपनी समाप्ति क साथ पाठक के हृदय मे उत्कष और सद्भाव जगा दे।[4]

कहानी उपयास का ही लघु सस्करण है। कहानी जीवन का वह चित्र है जिसम चित्रित पात्रा का सुख-दु ख हम यथाथ से भी अधिक प्रभावित कर देता है। इसलिए कहानी थोडे शब्दा म कही जाए, उसम एक वाक्य एक शब्द भी अनावश्यक न आने पाए और उसम कुछ चटपटापन हो कुछ ताजगी हा, कुछ विकास हो और इसके साथ कुछ तत्त्व भी हा जिसका आधार मनोवैज्ञानिक सत्य हो।[5]

प्रेमचद जनता के लेखक थे इस कारण उनका साहित्य जनता का साहित्य कहा जाता है। उन्हाने जनता के दु ख-दद की उसी की भाषा म अभिव्यक्ति की

१ साहित्य का उद्देश्य पृष्ठ ५४।
२ वही पृष्ठ ६६।
३ वही पृष्ठ ६६।
४ वही पृष्ठ ७-७४।
५ वही पृष्ठ ४१४५।

है। उनकी भाषा हिन्दुस्तान की भाषा है—हिन्दुस्तानी जिसमें विभिन्न भाषाओं के शब्दों का समावेश सरलता से हो जाता है। उनकी भाषा में संस्कृत के शब्द ही नहीं, उर्दू, अरबी और फारसी के शब्दों का सहज प्रयोग मिलता है। जीवन के सरल स्वच्छन्द और उन्मुक्त प्रवाह की अभिव्यक्ति के लिए भाषा भी प्रवाहपूर्ण होनी चाहिए। उनके विचार में जो भाषा मुट्ठीभर लोगों के प्रकाश का माध्यम है, उस भाषा में जान नहीं। वह तो केवल स्वांग मात्र है। ग्राम-जनता की धमनियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की उसमें सामर्थ्य नहीं है।[1] यही कारण था कि उनकी भाषा का जो रूप मिलता है वह है स्वच्छ जल की उन्मुक्त धारा का जो नदी के दोनों उपकूलों की निश्चित सीमा में बहती है और जिसमें समुद्र की सी अतुल गहराई है।

प्रेमचंद की साहित्य-सम्बन्धी ये धारणाएं उन्हें समकालीन साहित्यकारों से नितान्त पृथक एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करती हैं। प्रेमचंद साहित्य का मूल्यांकन करने के लिए प्रेमचंद की साहित्य सम्बन्धी धारणाओं को दृष्टिपथ में रखना आवश्यक है।

प्रेमचंद साहित्य—प्रेमचंद ने गद्य की अनेक विधाओं को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया किन्तु उनकी ख्याति उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में ही सर्वाधिक हुई। उनका उपन्यासकार रूप ही विशेष निखरा है जो कहानियों में भी जागरूक और सक्रिय रहा। गद्य की इन दोनों विधाओं में उनका भावनात्मक स्वरूप दिखाई देता है। साहित्यिक विचारधारा और भावों का गाम्भीर्य उनके निबन्धों में दिखाई देता है। उन्होंने कुछ प्रसिद्ध रचनाओं का अनुवाद किया पर उनके साहित्य का स्वरूप मौलिक ही है। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ उर्दू के माध्यम से किया किन्तु बाद में वे हिन्दी में लिखने लगे। उनकी उर्दू की कृतियां हिन्दी में भी प्रकाशित हुई। उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त उन्होंने कतिपय नाटक, जीवनचरित्र और कुछ ऐसी कहानियां भी लिखीं जो बच्चों के लिए उपयोगी हैं। प्रेमचंद-साहित्य का वर्गीकरण सामान्यतः इस रूप में किया जा सकता है।

प्रेमचंद साहित्य

उपन्यास | कहानियां | नाटक | निबन्ध | जीवन चरित्र | बच्चों की कहानियां | उर्दू की रचनाएं | अनुवाद

---

१ प्रेमचंद और गोर्की पृष्ठ ८२।
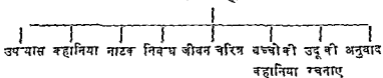
प्रेमचद उर्दू के माध्यम स हिन्दी साहित्य म आए थे इसलिए उनकी प्रारम्भिक उदू की रचनाओ पर पहले विचार करना आवश्यक है। प्रेमचद ने प्रारम्भ मे कुछ मौलिक कहानिया उर्दू म लिखी, जो कानपुर के 'जमाना' और इलाहाबाद क 'अदीब नामक पत्रा म प्रकाशित हुइ। उनकी पहली मौलिक कहानी 'ससार का अनमोल रत्न स्वीकार की जाती है जो १६०७ ई० मे 'जमाना मे प्रकाशित हुई थी।'[1] १६०८ ई० म उनका उदू कहानी-सग्रह 'सोजे वतन' प्रकाशित हुआ जो बाद म सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया। इसक उपरात वे प्रेमचद नाम से 'जमाना' म सामाजिक कहानिया लिखने लग। इमी समय मनन द्विवेदी की प्रेरणा से उन्हाने अपनी उदू की कहानियो को हिन्दी म प्रकाशित कराया जो हिन्दी-साहित्य जगत् म काफी लोकप्रिय हुइ।

कालक्रमानुसार उनकी रचनाओ म 'रूठी रानी' (ऐतिहासिक उपन्यास), कृष्णा,' 'वरदान तथा 'प्रतिज्ञा को १६०० १६०६ ई० के बीच की रचनाए माना जाता है। राजेश्वर गुरु ने इस काल की रचनाओ म 'इसरारे मुहब्बत 'प्रतापचद,' श्यामा', 'प्रेमा, 'कृष्णा, 'वरदान' 'हमखुर्मा और हमसवाब' और 'प्रतिज्ञा' आदि को स्वीकार किया है। इनमे 'इसरारे मुहब्बत', प्रतापचद,' 'श्यामा और 'प्रेमा' उदू म ही लिखे गए। इसरारे मुहब्बत' आवाजे खल्क मे धारावाहिक प्रकाशित हुआ था किन्तु प्रतापचद और श्यामा अप्राप्य और अप्रकाशित हैं। शेष रचनाए भी अप्राप्य है। 'वरदान वाद म हिन्दी म भी प्रकाशित हुआ था। 'हमखुर्मा और हमसवाब भी अप्राप्य और अप्रकाशित रचनाओ म आता है। 'प्रतिज्ञा वाद म हिन्दी म प्रकाशित हुआ।'[2]

उपन्यास—प्रेमचद का हिन्दी म लिखा पहला उपन्यास सेवा सदन है जो सन १६१६ म प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास बाद म 'बाजार ए हुस्न नाम स उर्दू म भी प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'प्रेमाश्रम' (सन १६२२), निमला (लेखनकाल—१६२३, प्रकाशन-काल १६२७), रगभूमि' (सन् १६२४), 'कायाकल्प (सन् १६२८), गबन (सन १६३०), कमभूमि (सन् १६३२) और 'गोदान (सन १६३६) प्रकाशित हुए। उनका अन्तिम अपूण उपन्यास 'मगलसूत्र' भी सन् १६३८ म प्रकाशित हुआ। प्रेमचद का उपन्यास साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। उनके उपन्यासो क रचनाकाल और प्रकाशनकाल के विषय

---

१ हिन्दी साहित्य कोश—दूसरा भाग पृष्ठ ३३४।

२ वही पृष्ठ ३३५।

३ प्रमचद एक अध्ययन पृष्ठ २७६।

म विद्वाना म मतभेद है। उनके उपन्यासा का रचनाकाल और प्रकाशनकाल परस्पर मिला दिए गए हैं। किसी कृति का महत्त्व उसके प्रकाशनकाल स नही अपितु उसके रचनाकाल स ही माना जाना चाहिए। प्रेमचद के उपन्यासो का जो सर्वाधिक सम्मत प्रकाशनकाल है उसी को दष्टि म रखकर उनका अध्ययन *किया गया है।*[1]

प्रेमचद के उपन्यास-साहित्य का विभिन्न दृष्टियो से वर्गीकरण किया जा सकता है। उनका उपन्यास साहित्य स्पष्टत दो वर्गों म विभक्त किया जा सकता है—सामाजिक और राजनीतिक। पहले वग म वरदान सेवासदन प्रतिज्ञा', निमला और गबन आते हैं और दूसरे वग म कायाकल्प' प्रेमाश्रम' 'कमभूमि और 'रगभूमि' गिने जा सकते हैं। पहल वग का आधार है मध्यवित्त वग और दूसरे का शोषक और शोषित वग अर्थात् जमीदार, उसके सहायक और किसान। श्री नान्तिप्रिय द्विवेदी न प्रेमचद के उपन्यासो को राजनीतिक उपन्यासा की सज्ञा न देकर राष्ट्रीय उपन्यासा की सज्ञा दी है।[2] उन्होने यह वर्गीकरण 'गोदान' क प्रकाशन स पूव किया था। उन्होने कायाकल्प' को गबन' और 'सेवासदन जस सामाजिक उपन्यासो क साथ रखा है किन्तु उनका यह दृष्टिकोण उचित प्रतीत नही होता क्योकि कायाकल्प' अतिमानवीय तत्त्वो के कारण शुद्ध सामाजिक उपन्यासा की कोटि म नही रखा जा सकता।

मन्मथनाथ गुप्त न प्रेमचन्द के उपन्यासो का जो वर्गीकरण किया है उसका आधार है वग-सघष का भाव या अभाव। इस वग-सघष की भावना को आधार बनाकर उन्होने प्रेमचन्द क उपन्यास-साहित्य को दो वर्गों म विभक्त किया है

१ व उपन्यास जिनम वग-सघष बिलकुल खुलकर दिखाया गया है—

(१) 'प्रेमाश्रम (२) 'रगभूमि (३) 'कमभूमि (४) 'कायाकल्प, (५) गोदान।

२ व उपन्यास जिनम वग-सघष का कोई खुला रूप दृष्टिगोचर नहीं होता है—

(१) सेवासदन (२) 'प्रतिज्ञा' (३) 'वरदान' (४) निमला

---

१ प्रेमचद एक अध्ययन पृष्ठ २७६।
हिन्दी साहित्य कोश—दूसरा भाग पृष्ठ ३३४।

२ युग और साहित्य पृष्ठ २६३ ६४।
इन दो प्रवृत्तियों के योतक उपन्यासों के दो वर्ग इस प्रकार किए जा सकते हैं—
(१) सामाजिक—सेवासदन वरदान' प्रतिज्ञा' 'कायाकल्प' निमला और गबन'।
(२) राष्ट्रीय—प्रेमाश्रम 'रगभूमि' 'कमभूमि।

(५) 'गवन'।[1]

प्रेमचद युग म वग-सघष की तीव्र भावना कृपक-जीवन म फल चुकी थी। इसलिए पहल वग क उपयासो म ग्राम्य-जीवन का चित्रण अधिक विशद रूप म दिखाई देता है। प्रस्तुत विषय की दृष्टि से प्रेमचन्द क उपन्यास-साहित्य का वर्गीकरण इस रूप म किया जा सकता है—

१ व उपयास जिनम ग्राम्य जीवन का विशद चित्रण है जैसे—
(१) गोदान', (२) प्रेमाश्रम', (३) 'कमभूमि, (४) 'रगभूमि,' (५) 'कायाकल्प'।

२ व उपयास जिनम ग्राम्य जीवन का सकेत मात्र है, जैसे—
(१) 'सेवासदन, (२) वरदान', (३) गवन'।

३ वे उपयास जिनम ग्राम्य जीवन की ओर सकेत भी नही किया गया है जैस—
(१) 'प्रतिज्ञा, (२)'निमला, (३) 'मगलसूत्र' (अपूण)।

कहानिया—प्रेमचद का कहानी-साहित्य भी पर्याप्त समृद्ध कहा जा सकता है। उनक अनेक कहानी-सग्रह मिलते हैं जिनम लगभग ३०० कहानिया सकलित हैं। उनकी कहानियों का शिल्प और विषय की दृष्टि से वर्गीकरण किया जाता रहा है परतु उनकी कहानियो का सम्यक परिचय उनके क्रमिक विकास के इतिहास स परिचित होने पर ही सभव है। श्रीपति शर्मा और प्रकाशचद गुप्त ने उनकी कहानियों के विकास क्रम को ध्यान मे रखते हुए उनके कहानी-सग्रहो का उल्लेख इस रूप म किया है—

१ सप्तसरोज	९ प्रम चतुर्थी
२ नवनिधि	१० पच प्रसून
३ प्रेम-पच्चीसी	११ कफन
४ प्रेम-पूर्णिमा	१२ सप्तसुमन
५ प्रेम-द्वादशी	१३ मानसरोवर, पहला भाग
६ प्रेमतीथ	१४ मानसरोवर, दूसरा भाग
७ प्रेम-पीयूष	१५ मानसरोवर तीसरा भाग
८ प्रेमकुज	१६ मानसरोवर चौथा भाग

१ कथाकार प्रमचन्द पृष्ठ ६७५ ७६।

१७ मानसरोवर पाँचवाँ भाग
१ प्रेमप्रतिमा
१६ प्रेरणा
२० प्रेमप्रमोद
२१ प्रेमसरोवर
२२ कुत्ते की कहानी
२३ जंगल की कहानी
२४ अग्नि-समाधि
२५ प्रेम पचीसी
२६ प्रेम गंगा[1]

प्रकाशचन्द्र गुप्त ने उनकी कहानियों का विकास स्थिर करते हुए लिखा है—जिस क्रम में प्रेमचन्द की कहानियाँ प्रकाशित हुई वह लगभग इस प्रकार था—(१) सप्तसरोज' (२) नवनिधि' (३) प्रेमपूर्णिमा', (४) 'प्रेम पच्चीसी', (५) 'प्रेम प्रतिमा' (६) प्रेम-द्वादशी, (७) 'समर-यात्रा (८) 'मानसरोवर' भाग १ २ (६) कफन ।[2]

श्रीपति शर्मा और प्रकाशचंद गुप्त द्वारा किया गया कहानियों का वर्गीकरण स्थूल अधिक है। श्री राजेश्वर गुरु ने उनकी कहानियों का वर्गीकरण एक विशेष दृष्टिकोण से किया है। उन्होंने प्रेमचंद के मनोविकास की रेखाएँ उनके उपन्यासों के माध्यम से स्थिर करने का प्रयास किया है। समयक्रम के अनुसार उन्होंने वर्गीकरण इस रूप में किया है—

(१) प्रारम्भिक युग—देश प्रेम सम्बन्धी भावुकतापूर्ण कहानियाँ एवं बुन्देलखण्ड के इतिहास की गौरवपूर्ण गाथाएँ जैसे—सोजे वतन प्रेम की कहानियाँ और 'रानी सारन्धा राजा हरदौल' और विक्रमादित्य का तेगा इत्यादि। भारतीय मन और भारतीय प्राचीन व्यवस्था के उदात्त स्वरूप को चित्रित करने वाली कहानियाँ जैसे—शंखनाद और पंच परमेश्वर।

(२) विकास युग—भारतीय ग्राम-जीवन के विभिन्न प्रसंग और सामाजिक राजनीतिक और साम्प्रदायिक जीवन की कहानियाँ।

(३) यथार्थोन्मुख कहानियाँ—सन १९३० के राजनीतिक आन्दोलनों के दिनों का चित्रण एवं अनेक यथार्थवादी कहानियाँ।[3]

हिन्दी साहित्य के कोश के द्वितीय भाग में उनके निम्नलिखित कहानी संग्रहों का उल्लेख है—सप्तसरोज' (१९१७ ई० गोरखपुर), नवनिधि (१९१८ ई०, बम्बई) प्रेम-पूर्णिमा' (१९१८ ई० १९२० ई० कलकत्ता), बड

---

१ कहानी-कला और प्रेमचन्द पृष्ठ ४७।
२ हिन्दी साहित्य की जनवादी धारा पृष्ठ १०।
३ प्रेमचन्द एक अध्ययन पृष्ठ २५०।

घर की बेटी , लाल फीता', 'नमक का दरोगा (१९२१ ई०, कलकत्ता), 'प्रेम पच्चीसी' (१९२३ ई०, कलकत्ता) 'प्रेम प्रसून (१९२४ ई० लखनऊ), 'प्रेम द्वादशी' (१९२६ ई०, लखनऊ), 'प्रेम प्रतिमा' (१९२६ ई०, बनारस, बाद को लखनऊ स भी), 'प्रेम प्रमोद' (१९२६ ई०, इलाहाबाद), 'प्रेम-तीर्थ' (१९२९ ई०, बनारस) पाच फूल (१९२९ ई०, बनारस), 'प्रम चतुर्थी (१९२९ ई०, कलकत्ता), 'प्रम प्रतिज्ञा' (१९२९ ई० बनारस) 'सप्तसुमन' (१९३० ई० बनारस), प्रेम-पचमी' (१९३० इ० लखनऊ), 'प्ररणा (१९३२ ई०, बनारस), 'समर-यात्रा' (१९३२ ई० बनारस और कलकत्ता) । 'पच प्रसून' (१९३४ ई०, कलकत्ता) और 'नव जीवन' (१९३५ ई०, कलकत्ता)। इसक अतिरिक्त 'बक का दिवाला (१९२४ ई०) तथा शाति (१९२७ ई०) शीर्षक कहानी पुस्तकें कलकत्ता से और 'अग्नि-समाधि' (१९२९ ई०) लखनऊ स प्रकाशित हुइ। प्रेमचद की मृत्यु क बाद भी उनकी कहानिया के कई सम्पादित सस्करण निकले। कफन और शेष रचनाए (१९३७ ई०, बनारस) और 'नारी-जीवन की कहानिया' (१९३८ ई०, बनारस), 'गल्परत्न' का एक सम्पादित सस्करण १९२९ ई० म बनारस और प्रम पीयूष' का एक सम्पादित सस्करण १९४१ ई० म बनारस से छपा। प्रेमचद की सर्वश्रेष्ठ कहानिया' (१९३३ ई०) शीर्षक से एक सग्रह लाहौर स मुद्रित हुआ। यह सग्रह स्वय प्रेमचद द्वारा सकलित किया गया था। 'गल्प समुच्चय (१९२८ ई०), 'हिन्दी की आदर्श कहानिया' (१९३७ ई०, बनारस) 'गल्प-ससार-माला' (१९३८ ई०, बनारस) आदि हिन्दी के अनेक सग्रहो म भी प्रेमचद की कहानिया मिलती हैं। उनके एक कहानी-सग्रह 'ग्राम्य जीवन की कहानिया' का रचनाकाल अज्ञात है। प्रेमचद की लगभग सभी कहानियो का सग्रह मानसरोवर' नाम स आठ भागो म सरस्वती प्रेस, बनारस स प्रकाशित हो चुका है।[1]

प्रेमचद क विभिन्न कहानी-सग्रहो म ग्राम्य जीवन स सम्बन्धित प्रमुख कहानिया हैं

(१) पच परमेश्वर (२) पूस की रात
(३) समर यात्रा (४) लागडाट
(५) खून सफेद (६) दो बैलो की कथा
(७) अग्नि-समाधि (८) मुक्ति माग
(९) मुक्तिधन (१०) कफन
(११) अलग्योझा (१२) सवा सेर गेहू

१ हिन्दी साहित्य कोश (दूसरा भाग) पृष्ठ ३३५।

(१३) पछतावा　　　　　　　　　(१४) सुजान भगत
(१५) रियासत का दीवान　　　　　(१६) उपदेश

नाटक—प्रेमचद ने नाटक लिखने का प्रयोग भी किया जो सफल नहीं हुआ। उनका प्रथम प्रयास एक प्रहसन था जो उन्होने अपने मामा के प्रणय प्रसग को लेकर लिखा था। यह कृति मामाजी के हाथो नष्ट कर दी गई थी। उनके तीन नाटको का उल्लेख मिलता है[१]— सग्राम' (१९२३ ई०, कलकत्ता), 'कर्बला (१९२४ ई० लखनऊ) और प्रेम की वेदी' (१९३३ ई०, बनारस)। 'सग्राम' जमीदार और कृषक वग की समस्या लेकर लिखा गया। जमीदार किसान का शोषक है। अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए उसके कृत्य अमानवीय और अनतिक तक हो गये हैं।

निबन्ध—प्रेमचन्द के लेख 'जागरण और 'हस' की फाईलो म मिलते हैं। इनम प्रकाशित कुछ निब ध 'कुछ विचार (१९३९ ई० बनारस) नामक सग्रह म सकलित हैं। आगे चलकर यही कृति साहित्य का उद्देश्य' शीर्षक से प्रकाशित हुई। राजेश्वर गुरु ने कलम तलवार और त्याग' कृति को भी निबन्ध-सग्रह माना है।[२] किन्तु यह निबन्ध सग्रह न होकर कतिपय राजपूतो की जीवनियाँ ही हैं।

जीवनियाँ—इनम महात्मा शेख सादी' (१९१८ ई० गोरखपुर), 'दुर्गादास (१९३८ ई० बनारस) और कलम तलवार और त्याग' उल्लेखनीय हैं। प्रेमचद की १९३३ ई० म 'हस के आत्मकथाक म जीवन सार शीर्षक आत्म कहानी प्रकाशित हुई।

अनुवाद—प्रेमचद ने कुछ प्रसिद्ध रचनाओ का अनुवाद भी किया है जो इस प्रकार है—

सुखदास —जाज इलियट कृत साइलस मानर' का सक्षिप्त रूपान्तर (१९२० ई०, बम्बई)।

अहकार —अनातोले फ्रास कृत थायस का अनुवाद (१९२३ ई०, कलकत्ता)।

'टाल्सटाय की कहानिया —(१९२३ ई० कलकत्ता)।

आजादकथा —रतननाथ सरशार कृत फसान ए-आजाद का अनुवाद (१९२७ ई० बनारस)।

---

१ हिन्दी साहित्य कोश दूसरा भाग पृष्ठ ३३५।
प्रेमचद एक अध्ययन पृष्ठ २८।
२ प्रेमचन्द एक अध्ययन पृष्ठ २८।

'हडताल'—गाल्सवार्दी के नाटक 'स्ट्राइक' का अनुवाद (१९३० ई०, इलाहबाद)।

'चादी की डिबिया —गॉल्सवर्दी के नाटक सिलवर बॉक्स' (१९३१ ई०, इलाहाबाद)।

'याय —गाल्सवर्दी के नाटक 'जस्टिस' का अनुवाद (१९६१ ई०, इलाहाबाद)।

शेष रचनाओ में मनमोहक'(स० १९३६ ई०, इलाहाबाद) 'कुत्ते की कहानी (१९३६ ई०, बनारस), 'जगल की कहानिया' (१९३८ ई०, बनारस) और रामचर्चा' (१९४१ ई०, बनारस) तथा 'दुर्गादास' आदि सभी कृतिया बालोपयोगी ही हैं। स्फुट रचनाआ म स्वराज्य के फायदे' (१९२१ ई०, कलकत्ता) विशेष उल्लेखनीय है।[२]

प्रेमचद-साहित्य का अपना महत्त्व है। प्रेमचद पहले उपयासकार थे जिहाने अपन साहित्य की कथा जन-जीवन से चुनी है। कृति के भीतर कृतिकार दिखाई दे ही जाता है। उनकी कृतियो पर समाज और उनकी स्पष्ट विचारधारा का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। प्रेमचद का जीवन गाव की धरती पर फला फला था। बचपन का दारिद्रयपूण वातावरण, अतप्त आकाक्षाए और आगे बढने के लिए किया गया जीवन सघष सभी उनका अपना अनुभूत किया हुआ था। ग्राम्य जीवन का चित्रण करते हुए उनक अपने अनुभव उनके सामने थे। उहोन अपने युग को अनुभूत किया था तब ही उनके चित्रण म एक सच्चाई और गहराई है। जो कुछ अनुभूत किया उसका चित्रण करते हुए उहोने उसके चित्र भी उतारे हैं जा होना चाहिए और हुआ नही है। जीवन मे जो है वही पर्याप्त नही है इसके अतिरिक्त भी जीवन की कुछ आवश्यकताए है जो पूण होनी चाहिए। इसी कारण उनकी रचनाओं म जहा सघष और पराजय है वहा जीवन का अदम्य साहस और आशा का प्रबल स्वर भी है।

प्रेमचद जीवन और युग सत्य को पहचान कर चल। वे पूणत देश की मिटटी से बन थ और इस मिटटी का महत्त्व भी जानते थ। प्रेमचद का कलाकार अत्यत जागरूक था और इमी कारण उहोंने अपन साहित्य को युग जीवन की अभियक्ति का साधन बनाया। उहोंने युग धम के साथ पूणतादात्म्य स्थापित किया और सर्वांग जीवन के चित्र प्रस्तुत किये।[३] उनके सम्पूण साहित्य

१ प्रेमचद एक अध्ययन पष्ठ २८।

२ हिन्दी साहित्य कोश दूसरा भाग पृष्ठ ३३५

३ विचार और विवेचन पृष्ठ ९१।

पर आर्थिक समस्या का प्रभाव है। परन्तु यह अथ वपम्य सामाजिक जीवन की ग्रथि नहीं बनने पाया। अपनी रचनाओ से उन्होने जनता को उसके राजनीतिक-सामाजिक स्वत्वा के प्रति चेतना देन का प्रयत्न किया है। उनके अधिकाश उपयासा म वग सघप दिखाई देता है। जीवन की विवशता और विषमताओं के प्रति उनके अतर की सवेदना सजग है। फलत प्रत्येक चित्रण मार्मिक और प्रभावशाली बन गया है। चित्रा की मार्मिकता सहज स्वाभाविक लगती है। डा० नगेन्द्र तो उन्हें शोषक वग का हिमायती मानते हैं और शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है—'प्रेमचन्द आज तक की देहाती पगडडियो के बटोही हैं अतएव यह ठीक है कि भविष्य म शायद भारतीय ग्रामा का इतिहास उनके उपयासो और कहानिया म पढा जाए।'[1]

यहा प्रेमचद साहित्य म आए ग्राम्य जीवन का अध्ययन ही किया गया है और उसके उचित मूल्याकन के लिए स्वय उनके जीवन तथा उनके साहित्य-सम्बन्धी विचारो से अवगत होना भी आवश्यक है। किसी रचना पर लेखक के अपने विचार और जीवन के अनुभव विशेष प्रभाव डालते हैं और उसके साहित्य का उचित मूल्याकन इन तथ्यो के सदभ मे ही नही, तत्कालीन युग सदभ म ही हो सकता है। इसी कारण मुख्य प्रतिपक्ष स पूव इन विषयो पर विचार अनिवाय हो गया।

१ युग और साहित्य पृष्ठ २९३।

३

प्रेमचद-साहित्य मे ग्राम्य जीवन आर्थिक पक्ष

प्रेमचन्द साहित्य ग्रामा की आर्थिक विपन्नता म ग्रस्त, नग्न अधनग्न भूखे-प्यासे, मृत्यु के मुख म पडे, जीवन की चाह को ललकारते हुए असख्य नर नारियो की करुण ममस्पर्शी कहानी है। युग विशेष का आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन परस्पर एक दूसरे से जुडा रहता है। प्रेमचन्द ने इसी कारण देश-काल और समाज का चित्रण करते हुए जीवन के विभिन्न पक्षो पर लिखा है। उन्हान ग्राम्य जीवन के विभिन्न पहलुआ पर विस्तार स लिखा है फिर भी उसका आर्थिक पक्ष अधिक उभरा है।

गावा की आर्थिक अवस्था से वही व्यक्ति परिचित हो सकता है जिसने स्वय गावा की धरती पर रहकर, वहा पर मिलने वाले जीवन के हर दु ख सुख को अनुभूत किया हो या जिसन प्रेमचद साहित्य का अध्ययन किया हो। प्रेमचद साहित्य ग्राम्य जीवन का साहित्यिक सस्करण है। गावा से दूर रहकर, वहा की वास्तविक आर्थिक स्थिति से परिचित नही हुआ जा सकता। साधारणतया यही सोचा जाता है कि 'धरती का बेटा किसान' धरती-मा की ममता 'धन धान्य' से वचित नही रह सकता किन्तु एक बार भूल भटक गाव का देख लिया जाए तो वास्तविक स्थिति का पता चल जाता है।

प्रेमचद के वरदान उपन्यास म विरजन मभगाव म जाकर किसानो की वास्तविक स्थिति से परिचित हो कमलाचरण को एक पत्र म लिखती है— क्या सुनती थी और क्या देखती हू ? टूटे फूटे फूस के झोपडे मिट्टी की दीवारें, घरो के सामने कूडे-करकट के बडे-बडे ढेर, कीचड म लिपटी हुई भसें, दुबल गायें, य सब दश्य देखकर जी चाहता है कि कही चली जाऊँ। मनुष्यो को देखें तो उनकी

शोचनीय दशा है। हड्डियाँ निकली हुई हैं। वे विपत्ति की मूर्तियाँ और दरिद्रता का जीवित चित्र है। किसी के शरीर पर एक बेफटा वस्त्र नहीं है और कैसे भाग्यहीन कि रात दिन पसीना बहाने पर भी कभी भरपेट रोटियाँ नहीं मिलती।"[1]

कर्मभूमि में अमर और सलीम डाक्टर शांतिकुमार के साथ देहातों में आर्थिक दशा का निरीक्षण करते हुए अनुभव करते हैं कि किसानों की दशा कितनी दयनीय और शोचनीय है।[2] सलीम स्पष्ट देखता है कि उनकी दशा उससे कहीं हीन है *जितनी वह समझे बैठा था। पैदावार का मूल्य लागत और लगान से कहीं* कम था। खाने और कपड़े की भी गुंजाइश न थी दूसरे खर्चों का क्या जिक्र। ऐसा कोई विरला ही किसान था जिसका सिर ऋण के नीचे न दबा हो।"[3]

'प्रेमाश्रम' में मायाशंकर अपने क्षेत्र में देखते हैं—"चारों तरफ तबाही छायी हुई थी। ऐसा विरला ही कोई घर था जिसमें धातु के बर्तन दिखाई देते हों। कितने घरों में लोहे के तवे तक न थे। मिट्टी के बरतनों को छोड़कर झोंपड़े में और कुछ दिखाई न देता था। न ओढ़ना, न बिछौना, यहाँ तक कि बहुत से घरों में खाटें तक न थीं। और वे घर ही क्या थे? एक एक, दो दो छोटी कोठरियाँ थीं। एक मनुष्य के लिए एक पशुओं के लिए। उसी एक कोठरी में खाना सोना बैठना—सब कुछ होता था। जो किसान बहुत सम्पन्न समझे जाते थे उनके बदन पर साबित कपड़े न थे। उन्हें भी एक जून चबेना पर ही काटना पड़ता था। वे भी ऋण के बोझ से दबे हुए थे। कितने ही ऐसे गाँव थे जहाँ दूध तक न मयस्सर होता था।"[4]

गोदान प्रेमचंद की अंतिम पूर्ण कृति है जिसमें ग्राम्य जीवन का चित्रण है। होरी कृषक-जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। होरी का जीवन आर्थिक संघर्षों की करुण कहानी है। जीवन निर्वाह के लिए भोजन की समस्या सबसे भयंकर है। भोजन दोनों जून न सही एक जून तो मिलना चाहिए। भरपेट न मिले, आधा पेट तो मिले ही।[5] पेट भरने की समस्या जहाँ ऐसा भयंकर रूप धारण कर चुकी हो वहाँ महाजन भी मुँह फेर लेता है। ऐसी अवस्था में आस-पास के लोगों की क्या, घर ही ठंडा चूल्हा जलता है।[6]

---

१ वरदान पृष्ठ ६८।
२ कर्मभूमि पृष्ठ २६।
३ वही पृष्ठ ३५६।
४ प्रेमाश्रम पृष्ठ ४१३।
५ गोदान पृष्ठ २२।
६ वही पृष्ठ २२०-२१।

जहा भरपेट नही, आधा पेट भोजन भी कठिनाई से मिलता हो वहा तन ढाकने को भरपूर वस्त्र भी सहज नही मिल सकते। शरीर नग्न न रहे इसलिए चीथडो से ढक लिया जाता है। एक बार गम कपडा खरीद लिया जाए तो वह पैतक सम्पत्ति का रूप ग्रहण कर लेता है।[1] सबको ऊनी वस्त्र नही मिलते, पुआल भी बडे यत्न से एकत्रित किया जाता है।[2] जाडे की ठडी रातें, मूसलाधार वर्षा। खेत की रक्षा के लिए मडया पर रात भर जागना। मौत के सन्नाटा को भेदती उनकी ठडी होती गम सासें।[3] ऐस म बार-बार करवट बदलकर शीत को पराजित करन का प्रयास भी व्यथ जाता है। शीत पिशाच की भाति छाती को दबाये रखता और फिर विवशता की स्थिति म वह हल्का-सा ओढा कपडा भी उतार फेंकता। वह निश्चिन्त होकर सो जाता। उसकी बला से खेत भले ही सवेर तक चौपट हो जाए।[4]

होरी की आर्थिक दयनीय स्थिति सम्पूण कृषक वग की स्थिति का प्रतीक है। होरी अपने जीवन म दनिक जीवन की छोटी छोटी जरूरतें भी पूरी नहीं कर पाता। भरपेट भोजन और वस्त्र ही जब उसे नही मिलते तब घी दूध का अजन मिल जाए यह कैसे सभव था? पाच साल पुरानी मिजई और पतक सम्पत्ति के रूप म मिला कम्बल—जाडे म उसका साथ नही दे पाते। उसकी पत्नी धनिया का छत्तीस वष की आयु मे ही चेहरा झुर्रियो स भर गया। उसे आखो से भी कम दिखाई दन लगा। उसक तीन पुत्र बचपन म ही मर गए और वह एक धेले की दवा भी नही मगा सकी।[5] जीवन भर सघष करके भी वह कुछ पा नही सका। वह मौन रहकर सहता है। उसकी विवशता उस समय चरम बिन्दु पर पहुँच जाती है जब भगवान की आरती म चढाने के लिए उसके पास एक छोटा सा पसा भी नहीं निकलता।[6]

'गोदान' का रचनाकाल महाजनी सभ्यता का युग था। प्रेमचद न स्वय महाजनो के प्रभाव को अनुभूत किया था। गोदान' इन महाजनो की विकराल छाया से ग्रसित होरी की कथा है। होरी विवशता म दम तोड देता है। होरी ही नही सारे गाव की यही स्थिति थी। 'ऐसा एक आदमी भी नही जिसकी रोनी

१ गोदान पष्ठ १७३।
२ प्रमाश्रम पृष्ठ ४६।
३ गोदान पृष्ठ १७३।
४ पूस की रात (मानसरोवर पहला भाग), पष्ठ १५६ ६०।
५ गोदान पृष्ठ १२२।
६ वही पष्ठ २५३।

सूरत न हो। मानो उनके प्राणा की जगह वेदना उठी उन्हें कठपुतलियां की तरह नचा रही थी। चलते फिरते थे, काम करत थे पिसते थे घुटते थे इसीलिए कि पिसना और घुटना उनकी तकदीर म लिखा था। न कोई आशा, न कोई उमग, जैसे उनके जीवन के सारे स्रोत सूख गए हो और सारी हरियाली मुरझा गई हो। जठ के दिन हैं। अभी खलिहानो म अनाज मौजूद है मगर किसी के चेहरे पर खुशी नही। बहुत कुछ तो खलिहानो म ही तुलकर महाजनो और कारिन्दो की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है वह भी दूसरो का है। भविष्य अन्धकार की भाति उनके सामने है। उसम उन्ह कोई रास्ता नही सूझता। उनकी सारी चतनाएँ शिथिल हो गई हैं। द्वार पर मना कूडा जमा है। दुगन्ध उड रही है। मगर उनकी नाक म न दुगन्ध है न, आँखो म ज्योति। सरशाम स द्वार पर गीदड रोने लगते हैं मगर किसी को गम नही। सामने जो कुछ मोटा झोटा आ जाता है वह खा लते हैं। उसी तरह जैसे इजिन कोयले खा लेता है। उनके बल चूनी चोकर के बिना नाद म मुह नही डालते मगर उन्ह केवल पट म डालने को कुछ चाहिए। स्वाद स उन्ह कोई प्रयोजन नही। उनसे धेले धेल क लिए बेईमानी करवा लो। मुट्ठी भर अनाज के लिए लाठिया चलवा लो। पतन की वह इन्तहा है जहाँ आदमी शम और इज्जत का भी भूल जाता है।[1]

प्रमचन्द की प्रसिद्ध कहानी 'खून सफद' म गावो की आर्थिक स्थिति अपनी चरम स्थिति म दिखाई देती है— 'बसाख की जलती हुई धूप आग के जोर-शोर स लहराती हुई झोंके उस समय हड्डियो के अगणित ढाच जिनके शरीर पर किसी प्रकार का कपडा न था मिट्टी खोदने म लगे हुए थे मानो वह मरघट भूमि थी जहा मुर्दे अपने हाथो अपनी कब्रें खोद रहे थे। सब एक निराश और विवश होकर काम म लगे हुए थे मानो मृत्यु और भूख उनके सामने खड़ी घूर रही थी।[2] दरिद्रता के बन्धन इतने कस गए थे कि उनसे मुक्त होने के लिए छटपटाने की सामर्थ्य भी उनम नही रही थी। दारिद्र्य उस सीमा तक पहुच चुका था जहा महा जन भी पतिव्रता स्त्रिया की भाति आखें चुराने लगता है।[3]

प्रेमचद का लखनी स उनकी दुरवस्था का बहुत ही सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण हुआ है। उन्होने स्वय ग्राम्य जीवन के सुख दु ख सहे थे इसी कारण ग्राम्य जीवन का चित्रण करते समय उनकी अपनी अनुभूतियाँ भी उसम साकार होकर आयी

---

१ गोदान पृष्ठ ५२९।
२ खून सफद (मानसरोवर सातवा भाग) पृष्ठ ५३।
३ वही पृष्ठ ५६।

थी। उन्होंने जो लिखा वे स्वय उनके अपने जीवन की अनुभूतिया हैं जो स्व और पर की सीमाओ को तोडकर जन-जन की अनुभूतिया बन गई है। प्रेमचन्द ने ग्राम्य जीवन की आर्थिक स्थिति पर विचार करते समय उन कारणो पर भी प्रकाश डाला है जो इस स्थिति के मूल म प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप म विद्यमान थे। प्रेमाश्रम' का प्रेमशकर और कोई नही स्वय प्रेमचद ही कह जाएग जो इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि—"उनकी दरिद्रता का उत्तरदायित्व उन पर नही, बल्कि उन परिस्थितिया पर है जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है और वे परिस्थितिया क्या हैं ? आपस की फूट स्वार्थपरता और एक ऐसी सस्था का विकास जो उनके पाँव की बडी बनी हुई है। लकिन जरा और विचार कीजिए तो ये तीनो टहनिया एक ही शाखा से फूटी हुई प्रतीत होगी और यह वही सस्था है जिसका अस्तित्व कृपको के रक्त पर अवलम्बित है।"[१] यह सस्था और कोई नही, जमींदारी प्रथा है जो तत्कालीन शासन-व्यवस्था क लिए उत्तरदायी थी। वस्तुत यह जमीदार वर्ग ही अपने अ य सहायक अधिकारियो के साथ मिलकर किसानो का शोषण करता था। प्रेमचद न तत्कालीन युग म स्पष्ट दो वग देख थे—एक शोपक दूसरा शोपित। शापक वग के पास शोषण के अनेक माग हैं। शोपित जहा एक ओर शोपक के द्वारा शोपित है वहा स्वय उसकी अपनी कमजोरिया हैं जो परम्परागत रूप से उस विरासत म मिली है। किसानो के आर्थिक जीवन पर इन्ही दो वर्गों क अन्तगत विचार किया जा सकता है।

ग्राम्य जीवन मे आर्थिक दुरवस्था के कारण

जमींदार वग—जमीदार तत्कालीन शासन व्यवस्था म प्रमुख स्थान रखते थ। शोपकवग म भी उनका प्रमुख स्थान था। इस वग म राजा तथा रियासत के दीवान भी आ जाते थ। जमीदार सरकार के सकटकालीन मित्र थ। पुलिस अदालत और सरकारी कमचारी सभी उनक शुभेच्छु थे अतएव य सभी उसके कृपापात्र थे। जमीदारो के 'बावन हाथ' थे जिनम दो प्रबल अस्त्र थे—एक अन्याय और दूसरा दमन। इनका अपना स्वाथ दिन प्रतिदिन बढता जाता था और इसी कारण कठिनाई के समय भी ये किसानो के सहायक न होकर शोपक ही बने रहते।

प्रेमाश्रम म ज्ञानशकर अपनी स्वाथ सिद्धि क लिए किसाना का भरपूर

---

१ प्रेमाश्रम पृष्ठ २१८।

शोषण करते हैं।[1] राय कमलानंद भी आसामियों से रुपया वसूल करते हैं और रुपया न मिलने पर उन्हें निर्ममता से हंटरों से पीटते भी हैं।[2] सेवासदन में जमींदार महंत रामदास अपनी धार्मिक वृत्तियों का पोषण चेतू की जान लेकर करते हैं। वे अपने आसामियों पर हल पीछे पांच रुपया चंदा लगाते हैं क्योंकि उन्हें तीर्थयात्रा और यज्ञ के लिए धन जमा करना है।[3] 'लोकमत का सम्मान' कहानी का बेचू और 'विध्वंस' कहानी की भुनगी भी जमींदारों के अत्याचारों से त्रस्त हैं।[4] 'बलिदान' कहानी में जमींदार ओंकारनाथ हरखू की मृत्यु के बाद उसके खेत उसके पुत्र को न देकर दूसरे आसामी को दे देते हैं क्योंकि वह आठ रुपये के स्थान पर दस रुपये बीघा लगान ही नहीं सौ रुपये नजराने के भी देने को तैयार है।[5]

जमींदार व्यवहार में कुछ और विचारों में कुछ और था। वह विचारों से प्रगतिशील होकर भी परम्परा से प्राप्त सत्ता और अधिकारों के उपभोग में लीन था, क्योंकि अगर स्वयं वे धर्मात्मा बनकर रहते तो उनका निर्वाह कैसे संभव होता। *डांड-बांध के अतिरिक्त उनकी आय का साधन ही क्या था?* वसूली सरकार के घर चली जाती। बाकी आसामी दबा लेते। फिर वे क्या करें? वे अपने कृत्यों को पसंद नहीं करते थे पर अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए वे यह सब कुछ करते थे। उनके घर में ऐसा कोई साधन तो था नहीं जिससे उनकी सारी आवश्यकताएं पूरी हो जाएं।[6]

जमींदार अपनी स्थिति से पूर्ण परिचित हो चला था। वह स्पष्ट देखने लगा था कि वे सब अधिकार जो अन्याय और शोषण पर आधृत हैं अब मिटने वाले हैं। *उसकी स्वयं की स्थिति इतनी खोखली हो चुकी थी कि उस पर अपने* जीवन का बाह्याडंबर स्थिर रखना कठिन हो गया था। उसे उस स्थिति का अभिनय करना पड़ता जो वास्तव में थी नहीं। जमींदारी-व्यवस्था ने उसमें विलासिता, दुराचार, निर्लज्जता और दासता की भावना पैदा कर दी थी। एक

---

१ प्रेमाश्रम पृष्ठ २९२।
२ वही पृष्ठ ८६।
३ सेवासदन पृष्ठ ८।
४ लोकमत का सम्मान (मानसरोवर सातवां भाग), पृष्ठ २८०।
विध्वंस (मानसरोवर, सातवां भाग) पृष्ठ १८३।
५ बलिदान (मानसरोवर सातवां भाग) पृष्ठ १८।
६ गोदान पृष्ठ २१३ व २१०।

ओर वह असामिया का शापण करता तो दूसरी ओर अपन अधिकारियो की खुशामद करने म अपना आत्माभिमान भी छोड बठता। उसकी दशा उस बच्चे की सी थी जिसे चम्मच स दूध पिलाकर पाला जाता है। बाहर से मोटा और अन्दर मे दुबल सत्वहीन और मोहताज। उसे स्वय अपने पुरुषाथ पर विश्वास नही रहा था। केवल अफसरो के सामन दुम हिला हिलाकर किसी प्रकार उनके कृपापात्र बने रहना और उनकी सहायता से अपनी प्रजा पर आतक जमाना ही उनका उद्यम रह गया था। पिछलगुआ की खुशामद ने इतना अभिमानी और तुनुकमिजाजी बना दिया था कि उनमे शील विनय और सेवा का लोप हो गया था।[1]

बाहर से सुख वभव की गाद म पलने वाला जमीदार भीतर से कितना खोखला और निस्सहाय था—यह शोषित वग नही जानता था। जब कभी अवसर मिलता वह अपना दुख किसान से कह बठता। 'गोदान म जमीदार रायसाहब होरी से अपना दु ख दद सहज भाव से कह देते है। विचारो स प्रगतिशील होकर भी वे किसाना का हित न देखकर निजी स्वाथ ही देखते थे। उनके विचारा और कृत्य म जो वषम्य था उसे देखकर यही कहा जा सकता था—"जवान म जितनी बुद्धि थी काश, उसकी आधी भी मस्तिष्क म होती तो अच्छा था।[2] वे मुह से घम और नीति की बातें करते थे परन्तु जहा कही उनका स्वाथ अपूण रह जाता वहा व तिलमिला उठते।[3] परिस्थितिया बदलने लगी थी और लक्षण कह रहे थे कि जमीदार-वग की सत्ता मिटनेवाली है। प्रेमचद इस वग के चित्रण द्वारा यह सिद्ध कर देना चाहते थे कि ये देशी राज्य काजल की कोठरी है जिनम कैसा भी सयाना जाय कलक अवश्य लगेगा।

'प्रेमाश्रम' म जमीदारा की तीन पीढ़ियाँ मिलती हैं। एक लाला जटाशकर की पीढ़ी है जो अपन असामिया के साथ सहृदयता का व्यवहार करती थी। प्रजा और उसम बघुत्व की भावना थी। प्रजा अपन स्वामी को अपन दु ख म सहायक समझती थी और अपनी भक्ति से उसे प्रसन्न रखती थी। यह पीढी समाप्त हो चुकी थी। दूसरी पीढी ज्ञानशकर की है जिसके कलुषित कृत्य सारे 'प्रेमाश्रम' म बिखरे पडे है। मायाशकर तीसरी पीढ़ी म आते है जो परम्परागत अधिकारो को स्वच्छा से त्यागकर प्रजा के साथ अपना एक नया सम्बन्ध स्थापित करते हैं। अब

---

१ गोदान पृष्ठ ७७, १५, ७८ १७।
२ वही पृष्ठ ७८।
३ वही पृष्ठ १८ ७ ४३६ १६ १७।
४ कायाकल्प पृष्ठ १६०।

न कोई शासक है न शासित। ये तीन पीढ़ियाँ तीन युगों की कहानियाँ हैं। जटाशंकर अतीत की कहानी है जो वर्तमान में दोहरायी जाती है। भानशंकर तत्कालीन युग की कहानी है जिस पर सबका ध्यान केन्द्रित है। मायाशंकर भविष्य की कहानी है जो कृषक-समस्या का भावी संकेत देता है।

नई परिस्थितियों में जमींदार की सत्ता में कोई परिवर्तन नहीं आया। वह 'शिकार' अब भी करता था पर ढंग बदल गया था। वह परिस्थितियों का लाभ उठाना जानता था। एक ओर गांधी जी के सत्याग्रह की आड लेकर वह देशभक्त बन प्रजा का श्रद्धापात्र बनता और दूसरी ओर डालियाँ भेजकर सरकार का कृपापात्र भी।[1] पालिटिकल एजेन्ट का सत्कार उसका कर्तव्य था क्योंकि वह हिज मजिस्टी का प्रतिनिधि था और 'हिज मजिस्टी' के साथ उसका भाईचारे का सम्बन्ध था। अपनी प्रजा की वास्तविक स्थिति छिपाकर वह एजेन्ट का अपमान करना नहीं चाहता इसी से एजेन्ट भी यथार्थ स्थिति से अनभिज्ञ रहकर उनके राज्य को आदर्श राज्य घोषित करता। राजा साहब भी उसे 'लायलटी' का विश्वास दिलाकर अपनी नीति का पालन करते।[2]

जमींदार गावों से दूर किसानों की वास्तविक स्थिति से अपरिचित रहते। उनके कारिन्दे और चपरासी गाँव जाकर लगान वसूल कर उन्हें दे देते। प्रेमाश्रम में जमींदार राय कमलानन्द, ज्ञानशंकर और गायत्री सभी शहरों में रहने के कारण अपने असामियों की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ हैं। उपदेश कहानी के जमींदार साहब भी इसी तरह के हैं। पंडित देवरत्न देश-सेवक होकर भी वास्तविक स्थिति से कोसों दूर हैं। 'संग्राम' कहानी में भी जमींदार की कुत्सित भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

जमींदारों के सहायक अन्य पदाधिकारी

किसान के शोषण के लिए केवल जमींदार ही अकेला उत्तरदायी नहीं। पटवारी, कानूनगो, कारिन्दे और मुखिया भी उसके सहायक थे। 'प्रेमाश्रम' में गौसखां ज्ञानशंकर के सहायक हैं। ज्ञानशंकर के संरक्षण ने खां साहब को अपनी अभिलाषाएं पूर्ण करने का अवसर प्रदान कर दिया। वर्षान्त पर उन्होंने बड़ी निर्दयता से लगान वसूल किया। एक कौडी भी बाकी न छोडी। जिसने रुपए न दिए या न दे सका उस पर नालिश की, कुर्की करायी और एक का डेढ़ वसूल

---

१ गोदान पृष्ठ १३।
२ कायाकल्प पृष्ठ ७१ ११०।

किया। निकमी असामिया को समूल उखाड दिया और उनकी भूमि पर लगान बढाकर दूसरे असामिया को सौंप दिया। मौसमी और दखीलदार असामिया पर भी कर-वृद्धि के उपाय सोचने लगे।'[1] गौस खाँ ज्ञानशंकर के सहायक हैं और सुक्खू चौधरी और पटवारी मुंशी मौजीलाल गौस खा के।

गौस खा का उत्तराधिकारी फजुल्लाह खा उनसे भी एक हाथ आगे है। वे 'किसी को चौपाल के सामने धूप म खडा करते, किसी को मुश्कें कसकर पिटवाते। दीन नारियो के साथ और भी पाशविक व्यवहार किया जाता किसी की चूडिया तोडी जाती, किसी के जूडे नोचे जाते।'[2]

बडे पदाधिकारी तो अपनी सत्ता का प्रभुत्व समझते ही थे जमीदार का चपरासी भी अपने को किसी जमीदार से कम नहीं समझता था। उसका ऐसा आतक था कि उसे देखते ही प्राण निकल जाए। उसकी शक्ति भी जमीदार से किसी तरह कम नहीं थी। किसी को मिट्टी म मिला देना उसके बाए हाथ का काम था। उसका पद छोटा और सत्ता बडी थी। उसका काम केवल बस्ते ढोना, मेज साफ करना या साहब के पीछे-पीछे फिरना भर होता पर गाव म जाकर उसके हाथ ऐसा करतब दिखाते कि सब हाय हाय कर उठते। उसका वेतन कम था किन्तु रहन सहन का स्तर अमीरो जसा ही था। धावाना की नौकरी, नौकरी नहीं राज्य होता था।[3]

पटवारी का गाव म अपना महत्त्व होता था। पटवारी खेत बेगार मे जुतवाते और सिचाई के लिए एक पैसा न देते। असामियो को परस्पर लडवाकर अपना स्वार्थ पूरा करते। मौसम की चीज कचहरी और पुलिस के लोगो को भेंट मे चढाकर उनकी सहायता और कृपा प्राप्त कर लेते। असामियो को जरूरत पर रुपये देकर उनके भले बनते और साथ ही कडा सूद लेकर लाखो की सम्पत्ति भी जमा कर लेते।[4] उसका वेतन दस बारह रुपए होता पर ऊपर से हजारो की आमदनी सहज ही हो जाती। आय की आय और हुकूमत अलग। चार चार प्यादे उपस्थित रहते। सारा काम बेगार म हो जाता। पटवारी नहीं, कारिन्दे भी ऐसे ही शक्ति सम्पन्न थे। पाच रुपए वेतन पानेवाला कारिन्दा बडे बडे लोगो से घनिष्ठता

---

१ प्रेमाश्रम पृष्ठ ४७।

२ वही पृष्ठ २६२।

३ वही पृष्ठ ५० ५१।
पछतावा (मानसरोवर, छठा भाग) पृष्ठ २२८।

४ गोदान पृष्ठ १६४ २५२।

जोडता। मुख्तारआम अपन इलाके म एक बडे जमीदार से अधिक प्रभावशाली होता। उसका ठाठ-वाट और सत्ता छोटे छोटे राजाओ से कम नही होती थी।[1]

सरकार

शोषक वग की प्रवल समथक सरकार थी जिसके पास कानून था पर याय नही। सरकार न देहातो की उन्नति के लिए विशेष कमचारी नियुक्त किए थे जो अपना उत्तरदायित्व भूलकर अपनी स्वाथपूर्ति मे लग हुए थे।[2] अधिकारी वग गावा का दौरा करते स्थिति से परिचित होते पर न्याय और सत्य पर लोभ और स्वाथ हावी हो जाता। वह सरकार से किसानो के हित क लिए कुछ कहता नही। अगर वह भी देता तो वह 'वागी और विश्वासघाती कहलाता और दडित होता।[3] इसी स वह सरकार का हित देखता। दुरगी चाल चलने वाल अफसर सरकार का पक्ष लेते—सरकार अगर अस्सी फीसदी काश्तकारा के साथ रियायत करे तो वह देश की व्यवस्था कैसे करे? सरकारी कमचारिया की सत्ता 'बारहमासी' होती थी। प्रेमचद ने इस वग के प्रति खुला क्षोभ प्रकट किया था। उनके विचार मे इनके शासन से मुक्ति पाना उतना ही आवश्यक था जितना विदेशी शासन से। उन्हाने प्रेमाश्रम म इस वग की स्थिति पर व्यग्य करते हुए लिखा था— जिस भाति सूर्यास्त के पीछे एक विशेष प्रकार के जीवधारी जो न पशु है न पक्षी जो जीविका की खोज म निकल पडते हैं और अपने खमो और छोलदारिया से समस्त ग्राम मडल को उज्ज्वल कर देते है, वर्षा के आदि म राजसिक कीट और पतग का उद्भव होता है और उसके अन्त म तामसिक कीट और पतग का। उनका उत्थान होते ही देहाता म भूकम्प सा आ जाता है और भय से लाग प्राण छिपाने लगते है।[4] ये राजसिक और तामसिक कीट पतग और कोइ नही—कृषक क चिरपरिचित शोषक वग क विभिन्न व्यक्ति ही तो हैं।

सरकार की अपनी अदालतें थी जहा कानून क बल पर याय मागा जा सकता था परन्तु वास्तव म न्याय उनके लिए ही था जिनके पास पसा और

---

१ पछतावा (मानसरोवर आठवा भाग) पष्ठ २२८।
गोदान पष्ठ १८४ २५२।
२ गोदान पष्ठ ४६६।
प्रेमाश्रम पृष्ठ ७१।
३ कायाकल्प पष्ठ १२५।
कमभूमि पष्ठ ६७।
४ प्रेमाश्रम पष्ठ ५६१।

शक्ति थी। छोटी-सी बात के लिए स्टाम्प नजर-नज़राने देने पडते थे इसलिए गरीबो को साहस हो नही होता था कि अदालत म जाकर न्याय की माग करें। ये अदालत भी शोषण का ही एक अस्त्र थीं। निधनो का शव नाचने वाले गिद्धा का समूह था। सूदखोरी की सरक्षिका थी। ये अदालतें न्याय मन्दिर नहीं न्याय की बलिवेदी थी। ये सबला की पोषक थी और सरकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रजा का आर्थिक शोषण करती थीं। जिसके पास जितनी बडी डिग्री होती उसके स्वार्थ भी उतने बडे होते। लोभ और स्वार्थ ही विद्वत्ता के लक्षण थे। यह 'जमाने की खूबी है।'[1] सग्राम म हलधर इस सत्य को इसी रूप म स्वीकार करता है।

शोषक-वर्ग के अत्याचार

जमींदार किसान का सबसे बडा शोषक था। वह सरकार का शुभेच्छु बनकर, पुलिस का सरक्षण प्राप्त कर सामाजिक अनैतिकता का प्रतीक बन गया। जाफा बदखली और नज़राना—सभी उसके शोषण के अस्त्र थे। वह अपनी आवश्यकताएँ शक्ति से पूरी करवाता और पूरी न होने पर गावभर मे तहलका मचा देता। मुश्कें बँधवाकर पिटवाना, घरा म आग लगवाना बैल खुलवाना, डाड बाध पर अधिकार करना, परम्परा से दी गई चरवाहे की भूमि छीन लेना, तालाब का पानी बद कर देना—आदि दड उसकी दृष्टि म बहुत हल्के थे।[2]

कृषक सबका नरम चारा था। पटवारी, जमींदार का चपरासी, कारिंदे कानूनगो और पुलिस और अन्य उच्च पदाधिकारी सब उसका चूसते। पुलिस के किसी व्यक्ति को अप्रसन्न करते ही गाव का गाव विपत्ति म पड जाता। सबके आगे हाथ जोडकर खडा रहना पडता। उनके लिए नजर-नज़राना देना पडता।[1] पुलिस सबसे अधिक कुशल शिकारी का काम करती। कृषकों की फसल जाती और उसकी भी बहार साथ आ जाती। किसी पर 'खुफिया फरोशी', किसी पर 'हमल हराम' का आरोप लगाया जाता। किसी को चोरी का माल खरीदने क

---

१ सग्राम पृष्ठ १० १३।
प्रमाश्रम पृष्ठ १७४।
२ प्रमाश्रम पृष्ठ २ ११८ ११६।
सेवासदन पृष्ठ ८।
कायाकल्प पृष्ठ ६६।
गोदान पृष्ठ २५०।
३ गोदान पृष्ठ ४६६।

अभियोग म जेल म ठस दिया जाता। कभी भाग्य से डाका पड जाए तो उनकी पाचो उगलिया घी म होती। डाकू तो लूट खसोट कर ही जाते, उस पर इनका डाका पडता तो गेष रसर भी पूरी हो जाती। अगर सचमुच डाका नही पडता तो झूठे सबूत म फर्जी डाके पडते और निरपराध लोगो को सच्ची सजाए मिलती। शहादतें ऐसी गढी जाती कि अच्छे अच्छे बरिस्टर पराजित हो जाए।[1]

असामियो को लूटने का एक और उपाय था और वह था लगान उगाहना।[2] लगान उगाहते समय किसानो को तरह तरह की यातनाए दी जातीं। उनके खेत बिकवा दिये जाते, बैल खुलवा लिए जाते और उनकी कुर्की हो जाती। कभी लगान लेकर भी रसीद नही दी जाती[3] और लगान लेकर भी तकाजे होते। लूट खसोट का एक और अवसर आता जब लसकर[4] लगता। लशकरवाले सामान लेते पर मूल्य चुकाने के समय अधिकाश व्यक्ति लापता हो जाते और बाकी वे बचते जिनके रजिस्टर म नाम ही नही होते। तहसीलदार इस स्थिति के लिए पहले ही तयार रहते। वे गाववालो से लेकर ही अपना खर्चा निकालते। वहा के मुखिया और साहूकारो के साथ इसी दिन के लिए तो रियायत देते थे। कोई किसी के अधिकारो का अपहरण नही कर सकता था।

जमीदार और उसके सहायक लोगो का प्रभुत्व उन्ही को अधिक आतकित रखता था जो नितान्त सीधे सादे सरल स्वभाव के व्यक्ति होते थे। जो किसान तेज होता था उससे न जमीदार बोलता न महाजन। ऐसे लोगो से य मिल जाते और उनकी सहायता से दूसरो की गदन दबाते।[5] परन्तु देहातो म ऐसे लोग कम

---

१ उपदेश (मानसरोवर आठवा भाग) पृष्ठ २६७।
सग्राम (मानसरोवर आठवा भाग) पृष्ठ २६ ३०।

२ देहातो म आजकल सगीनो की नोक पर लगान वसूल किया जा रहा है। किसानो के पास रुपये हैं नही दें तो कहाँ से दें? अनाज का भाव दिन दिन गिरता जाता है। खेत की उपज से बीजो तक के दाम नही आते। मेहनत और इस सिचाई के ऊपर गरीब किसान लगान कहाँ से दें।
जेल (मानसरोवर सातवा भाग) पृष्ठ १०।
कर्मभूमि पृष्ठ २६२।
गोदान पृष्ठ ६।
पूस की रात (मानसरोवर पहला भाग) पृष्ठ १५८।
उपदेश (मानसरोवर आठवाँ भाग) पृष्ठ २६७।

३ प्रेमाश्रम पृष्ठ १७६।
गोदान पृष्ठ ३०१।

४ प्रेमाश्रम पृष्ठ १८१।

५ गोदान पृष्ठ ३३१।

ही थे। अधिकाश लोग होरी' के वग में आते हैं जो शोषण की चक्की मे 'भाग्य और श्रम क नाम पर पिस पिसकर कुचल जाते हैं। प्रेमाश्रम' का बलराज और गोदान का गोबर एक-दो व्यक्ति ही एस हैं जो शोषण के अनवरत चक्र को रोकना चाहते हैं।

महाजन और उसका शोषण

महाजनी-सभ्यता तीव्र गति से फल चुकी थी। देश महाजन के चगुल म था। ऋण के बधन ही खेती को जकडे हुए थे। य बधन ही भारतीय अथ-व्यवस्था के अभिशाप थे। प्रेमचद ने तत्कालीन महाजनी प्रभाव के सम्बध म 'महाजनी सभ्यता' नामक लेख म लिखा था—"इस महाजनी सभ्यता म सारे कामो की गरज पसा है। किसी दश पर राज्य किया जाता है तो इसलिए कि महाजनो और पूजीपतियो को ज्यादा से ज्यादा नफा हो। इस दष्टि से आज दुनिया मे महाजनो का ही राज्य है। मनुष्य-समाज दो भागो म बट गया है। बडा हिस्सा तो उन लोगो का है जो अपनी शक्ति और प्रभाव स बडे सम्प्रदाय को अपने वश म किए हुए हैं। उन्हे उस बडे भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नही जरा रियायत नही। उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिको के लिए पसीना बहाए, खून भी गिराए और एक दिन चुपचाप इस दुनिया स बिदा हो जाए।'[1]

महाजनी-सभ्यता का समाज पर जो व्यापक प्रभाव पड रहा था उसका जिक्र करते हुए उन्होने लिखा— 'परिस्थितियो के वश मनुष्य इस सभ्यता के चगुल म जकड रहा था। उसके छूटने की कोई गुजाइश नही थी। अब तक दुनिया के लिए इस सभ्यता की रीति-नीति का अनुसरण करने के सिवा और कोई उपाय न था। उसे धक्का मारकर उसके आदेशो के सामने सिर झुकाना पडता था। महाजन अपने जोम म फूला फिरता था। सारी दुनिया उसके चरणो पर नाक रगड रही थी। बादशाह उसका बदा वजीर उसका गुलाम, सधि विग्रह की कुजी उसके हाथ म। दुनिया उसकी महत्त्वाकाक्षा के आगे सिर झुकाए हुए है। हर मुल्क म उसका बोलबाला है। समाज म आ गए सभी बुरे विचार, भाव और कृत्य दौलत की देन हैं। पसे क प्रसाद हैं। महाजनी-सभ्यता ने इनकी सृष्टि की है। वही इनको पालती है और वही यह भी चाहती कि जो दलित, पीडित और विजित हैं वे इस ईश्वरीय विधान समझकर अपनी स्थिति पर सतुष्ट रहें। उनकी ओर स तनिक भी विरोध विद्रोह का भाव दिखाया गया तो सिर कुचलने

---

1 प्रधान (ग्वालियर)—६ अक्टूबर १९५२, पृष्ठ ८।

उद्योग धंधे थे जो अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ विशृंखलित हो गए। ग्राम व्यवस्था का विशृंखलत, नागरिक अदालतों की स्थापना, भूमि का अल्प खंडो म विभाजन टूटते सयुक्त-परिवार हस्त उद्योगो तथा कृषि की सम्मिलित आय की समाप्ति तथा जमानत के रूप म भूमि के मूल्य म वृद्धि आदि कुछ एसे कारण थे जि होने एसी परिस्थितिया उत्पन्न कर दी जिनम महाजनो का प्रभाव अनियत्रित रूप से बढने लगा। महाजनो और किसानो क बीच सम्बन्ध पारास्परिक समझौते पर निभर करता था किन्तु समय के साथ कानूनी रूप ग्रहण करने लगा। महाजन अमानवीय होकर किसान का शोषण करता पर तत्कालीन ग्राम्य अथ-व्यवस्था म उसका ऐसा महत्त्व स्थापित हो चुका था जिसकी उपेक्षा करना सभव नही था।

गावो की आर्थिक व्यवस्था म महाजनो का महत्त्व तब तक अक्षुण्ण रहेगा जब तक इस ऋण व्यवस्था से अधिक श्रेष्ठ व्यवस्था की स्थापना न हो जाए। देखा जाए तो— अदूरदर्शिता व अपव्यय के मरुस्थल म एकमात्र साहूकार ही मितव्ययता का नखलिस्तान है। वह भारतीय ग्रामीण अथ-व्यवस्था की सरल प्रणाली की नीव है और उधार की सतत प्रवहमान धारा का वह स्रोत है जिससे गाववाला अपनी सारी आवश्यकताए पूरी कर सकता है। उधार देने के अलावा वह अनेक प्रकार से गाव की सेवा करता है। उदाहरणार्थ वह साधारणतया अनाज का व्यापारी भी होता है और इस रूप म वह अकाल और अनावृष्टि के समय म विशेष प्रकार से उपयोगी होता है क्योंकि वह अनाज देता है और इस प्रकार कठिन समय को पार करने म गाव की सहायता करता है।'[1]

महाजन अधिक सूद पर रुपया उधार देता इसका एक कारण यह भी था कि इस व्यवसाय म उसे हानि की पूर्ण सभावना रहती थी। दूसरे उसके पास स्वय थोड़ा पूजी होती थी। छोटी छोटी ऋण की राशि को उगाहने और उसके प्रबन्ध के व्यय के लिए भी धन की आवश्यकता पड़ती थी जो सूद के धन से ही मिल पाता था। सूद की ऊची दर के अन्य कारणों म शिक्षा का अभाव, अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता तथा महाजनो का अर्थ पर एकाधिकार भी आ जाता है।[2]

गोदान' के रचनाकाल तक महाजनो का व्यापक प्रभाव फल चुका था। 'गोदान' का बेलारी गाव महाजनो के प्रभाव से ग्रस्त है। गाव म जमीदार एक अकेले रायसाहब हैं पर महाजन एक-दो नहीं, पूरे तीन हैं और व भी एक-दूसरे

---

१ भारतीय अर्थशास्त्र पृष्ठ ८९१।

२ रिपोर्ट ऑफ दी सेन्ट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी पैरा ११४।

से बढ चढकर। दातादीन दुलारी और झिगुरीसिह—सब ही गाव म लेन देन करते हैं। इनके अतिरिक्त भी गाव म कई छोटे छोटे महाजन हैं जो दो आने रुपये ब्याज पर बिना लिखा पढी के रुपए देते हैं। इस छोटे से गाव म इतने महाजन है क्योंकि यहा के लोगो को लेन दन का ऐसा चाव था कि जिसके पास दस-बीस रुपए इकट्ठे हुए नही कि लन देन का काम शुरू कर, महाजन बन बठा। स्वय होरी भी एक दिन महाजन था पर आज महाजन की चिरौरी करने वाला गरीब किसान बनकर रह गया था। इन महाजनों म सबसे बडे महाजन झिगुरीसिह थे जो पक्का कागज लिखाने थे नजराना अलग लेते और दस्तूरी अलग। स्टाम्प की लिखाई लेकर उस पर एक साल का ब्याज पेशगी काटकर रुपया देते। पचीस रुपए का कागज लिखने पर मुश्किल से सत्रह रुपए हाथ म आ पाते। बेटी के धन' के झगडू साहू इनसे चार कदम आगे ही हैं। वे लेखा जौ-जौं पर बख्शीश सौ सौ' के सिद्धात पर चलते है। सूद की एक कौडी भी छोडना उनक लिए हराम है। यदि महीने का एक दिन भी लग जाता तो पूरे महीने का सूद वसूल कर लेते।[2]

गावो म महाजन सामान्य रूप से अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक सम्पन्न होते हैं परन्तु कही-कही तो राजा साहब ही महाजनो का व्यवसाय करते हैं परन्तु यहा सौदा सीधे नही पटता मुनीम जी के माध्यम से तय होता है। सग्राम नाटक म कचनसिह ऐसे ही महाजन हैं। मुनीम जी के माध्यम से हलधर से सौदा होता है। हलधर दो सौ रुपए का ऋण लेता है जिसम तीस चालीस रुपए की चपत लिखाई, स्टाम्प चपरासियो के हक मुनीम जी की दस्तूरी ठाकुर जी के भोग ठकुराइन के पान के व्यय चुकान म ही लग जाती है। इस पर भी मुक्ति नही। उनकी सत्ता के सम्मुख नतमस्तक होना भी पडता है। चौखट पर जाकर तीन बार सलाम करनी पडती है। वह मुनीम जी की प्रत्येक बात को 'जी सरकार' कहकर स्वीकार कर लता है। वह अपने स्वभाव स विवश है। पत्नी के गहने तीर्थ यात्रा जात बिरादरी तीज त्योहार जसे अनक खर्चे उनकी जान को लग रहते। व्यय अधिक है आय क साधन कम हैं।

तत्कालीन परिस्थितियो के प्रति किसान के मन म धीरे धीरे क्षोभ जागन लगा। उसके अन्तर का विद्रोह होली के अवसर पर एक प्रहसन म दिखाई देता है। ठाकुर न दस रुपय का दस्तावज लिखकर किसान को पाच रुपए दिये।

---

१ गोदान पृष्ठ १४६।

२ बेटी का धन (मानसरोवर आठवां भाग) पृष्ठ ३१।

शेष नजराने तहरीर दस्तूरी और ब्याज में काट लिए इसके बाद जो पाँच रुपए शेष हैं उन पर भी तो ठाकुर जी का ही अधिकार है अतः वे भी उन्हीं को सौंप देता है पर इनको व्यय करने के लिए वह उपयुक्त अवसर भी बता देता है। वह स्पष्ट कह देता है—'हाँ, सरकार। अब वह पाँचों को भी मेरी ओर से रख लीजिए। ऐसा कहना उन्हें उसका पागलपन ही लगता है पर वह उन्हें समझाता हुआ कहता है—'नहीं सरकार एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है एक रुपया बड़ी ठकुराइन का एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खान को एक बड़ी ठकुराइन के पान खान को। बाकी बचा एक, वह आपकी क्रिया-करम के लिए।'[1] वह जानता है ठाकुरजी क्रिया-करम के लिए रुपए भी उसी से उगाहएंगे। इसी से मानो वह भविष्य का ऋण लेकर उऋण हो जाना चाहता है।

महाजन के अत्याचार और अन्याय को 'हाँ सरकार' कहकर स्वीकार करने वाला 'हलधर' 'गोदान' की नई पीढ़ी के रूप में 'गोबर' में जन्म लेता है। वह दातादीन से स्पष्ट कहता है कि यह अनीति है। यह कहाँ तक उचित है कि मूल से तिगुना सूद लिया जाए। सूद ही ऋण का बोझ बढ़ा देता है। तीन सौ रुपया परसों रुपये सूद लग जाता है। और तीस रुपये तीन साल में सौ रुपये हो जाते हैं। तीस का कागज लिखाने पर कहीं पच्चीस रुपये मिलते हैं और वे ही तीन-चार साल में सौ बन जाते हैं। स्टाम्प कभी-कभी बाद में लिखा जाता है जब तीस रुपये में तीन साल में सत्तर रुपये सूद के चढ जाते हैं।[2] पचास रुपये के तीन सौ रुपये हो जाते हैं। इस बेधड़क बेईमानी का कारण यही था कि सूद की दर तेजी से बढ़ रही थी। दूसरे, ऋण लेते समय कोई निश्चित लिखा-पढ़ी भी नहीं होती थी। सूद इतना हो जाता कि मूल ज्यों का त्यों रहता है। ऋण न चुकाने पर उसे महाजन के खेतों में बेगार करनी पड़ती। हीरी दातादीन के खेतों में काम करता है। गोबर को यह असह्य है। वह चीख पड़ता है— किसी का सौ रुपये उधार लिए और उससे जिंदगी-भर काम लेते रहे पर मूल ज्यों का त्यों। यह महाजनी नहीं, खून चूसना है। वह दातादीन से भी कह देता है कि एक आना ब्याज से अधिक यदि वह चाहता है तो अदालत से ले। वह तो एक पाई भी अधिक नहीं देगा। वह हृदय की समस्त कटुता और घृणा से दातादीन से कहता है—"मुझे खूब याद है। तुमने बैल के लिए तीस रुपये दिए थे। उसके सौ हुए और अब सौ के दो सौ हो गए। इसी तरह तुम लोगों ने किसानों को लूट-लूटकर मजूर बना डाला और आप उनकी

---

१ गोदान पृष्ठ ~४।

२ वही पृष्ठ २३ ३४।

जमीन के मालिक बन बठे। तीस क दो सो।"[1] किसी स रुपये उधार लेकर उसकी जीवनभर चाकरी करना कोई न्याय नही है। यहां कोई किसी का चाकर नहा है। सब समान हैं।

गोबर ऋण का पूरा हिसाब लगाता है। असल और सूद मिलाकर दस साल म छियासठ हुए। उसके सत्तर ले लें। पर तु दानादीन याय और धम की दुहाई देता है। गोबर प्रभावित नही होता किसी आतक स परन्तु होरी क घट म धम की क्रांति छिड जाती है— ब्राह्मण के रुपये। उसकी एक पाई भी दब गई तो हड्डी तोडकर निकलगी। भगवान न करे किसी पर उसका कोप गिरे। वश म कोई चुल्लू भर पानी देने वाला घर म दीया जलानवाला भी नही रहता। 'वह दाता दीन के पर पकड लेता है। वह एक एक पाई चुका देगा। गोबर के मन म पिता के प्रति तिरस्कार जाग उठता है। वह जानता है इन लागो ने ही महाजनो के दिमाग बिगाड दिए हैं। बीस रुपए के बदले अब दो सो रुपये देने पडेंगे और डाट ऊपर से खानी पडगी। मजदूरी अलग करनी पडेगी और काम करते करते यो ही मर जाना पडेगा। होरी धम के आगे पराजित हो यही कहता है कि नीति हाथ से नही छोडनी चाहिए। अपनी अपनी करनी अपन साथ है। हमने जिस ब्याज पर रुपए लिए वे तो देने ही पडेंगे। फिर ब्राह्मण ठहरे। उसका पसा हम नही पचेगा। होरी सत्य का पक्ष लेता है पर गोबर का दष्टि म यह लूट है।[2]

महाजन मनमानी सूद पर ऋण देता है। इतना ही नहा खाते मे सूद की दर दो की जगह ढाई लिख देता है।[3] ऋण पतक सम्पत्ति के रूप म पीढी दर-पीढी चलता रहता है। किसान चाहता है वह ऋण न ले परन्तु परिस्थितियो म वह फसता चलता है। होरी शोभा से कहता है— मैं चाहता हू कि हम कोई रुपए न दे हम भूखा मरन दे लातें खान द, एक पसा भी उधार न दे। लेकिन पसवाल उधार न दें तो सूद कहा से पाए ? एक हमारे ऊपर दावा करता है तो दूसरा हम कुछ कम सूद पर रुपए उधार देकर अपने जाल म फसा लेता है।'

किसान एक बार ऋण ल लेता ता कभी उऋण नही हाता। होरी जो कृषक वग का प्रतिनिधित्व करता है एसे ही ऋण के जाल म फसकर रह जाता है। उस पर कोई तीन सौ कज था जिस पर कोई सौ रुपए सूद के बढ़ते जाते थ। मगर

---

१ गोदान पष्ठ ३२६ २७।
२ वही पष्ठ ३२८।
३ सग्राम पष्ठ ११२।
४ गोदान पष्ठ १९५।

साह से आज पाच साल हुए बल के लिए साठ रुपए लिए थे। उसमे साठ दे चुका था, पर वे साठ रुपए ज्यो के त्यो बने हुए थे। दातादीन पडित स तीस रुपए लेकर आलू बोए थे। आलू तो चोर खोद ल गए और उस तीस के इन तीन बरसो म सौ हो गए थे। दुलारी विधवा सहुआइन थी, जो गाव म नोन-तेल तमाखू की दुकान रखे हुए थी। बटवारे के समय उससे चालीस रुपए लेकर भाइयो को देन पडे थे। उनके भी लगभग सौ रुपए हो गए थे, क्योकि आने रुपए का ब्याज था।[1]

हारी अकेला ऋणग्रस्त नही है। "प्राय सभी किसानो का यही हाल था। अधिकाश की दशा तो इससे भी बदतर थी। शोभा और हीरा को उससे अलग हुए अभी कुल तीन साल हुए थ मगर दोनो पर चार चार सौ का बोझ लद गया था।'[2] पूस की रात' का हल्कू भी ऋण के बोझ मे दबा हुआ है। उसकी पत्नी मुन्नी बस इतना ही सोच पाती है कि न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने ही नहा आती। महाजन किसानो का शोषक ही नही उनका आपतकालीन मित्र भी है। समय पडने पर कोई किसी देवता को मनाता तो कोई किसी देवता को। कोई एक आना सूद पर ऋण लेता तो कोइ दो आने सूद पर।[3]

महाजनो के अत्याचारो का प्रकोप दिन प्रतिदिन बढता जाता। महाजन किसान को अपन चगुल म फसाए रखते किन्तु उनका विरोध करन के लिए सगठित कृषक वग नही था। उनके पीछे सब बुदबुडाते पर सामन सभी मौन रह जाते। उसके जीवन म ऐसे अनेक अवसर आते जब महाजनो की घटो चिरौरी करता। बिरादरी को भोज भात देना गहने बनवाना, क्रिया-कर्म और श्राद्ध इत्यादि ऐस अनेक काम करने पडते जब उसे ऋण लेना पडता। ऋण लेते-लेते वह अभ्यस्त हो गया था और अब तो ऋण लेना उसके स्वभाव का एक अग बन गया था। एक तरह से वह ऋण को मुफ्त समझने लगा था। दरिद्रता म जो एक तरह की अदूरदर्शिता होती है वह निलज्जता जो तकादे, गाली और मार स भी भयभीत नही होती उसे ऋण लेने के लिए प्रोत्साहित करती रहती।

ऋण मुक्त होन का एक ही साधन था और वह था—खेती की उपज और उसस मिलने वाला रुपया। खेती कभी भी जमकर लगातार दो साल भी नहा हो

१ गोदान पृष्ठ ३६।
२ वही पृष्ठ ४०।
३ वही पृष्ठ १४६।
४ वही पृष्ठ ७।

पाती थी और ऋण की राशि निरंतर बढ़ती जाती थी। किसी साल खेती अच्छी होती तो लेनदार चारों ओर से चिपट जाते। किसान की सारी आशाएं उपज पर लगी होती हैं। किसी को बैल लेना होता है किसी को बाकी चुकाना होता है और कोई महाजन से गला छुड़ाना चाहता है परन्तु महाजनों से गला कब छूट सकता है? गोदान में एक दृश्य ऐसा ही है। 'एक तरफ खेतों में ऊख लदी खड़ी है। दूसरी ओर दातादीन, मंगरू, दुलारी झिंगुरीसिंह सभी प्राण खा रहे हैं। जब ऊख कटनी आरम्भ होती है तो एक ओर से दुलारी दौड़ी जाती है दूसरी ओर से मंगरू साह तीसरी ओर से दातादीन परमेश्वरी और झिंगुरीसिंह के प्यादे।'[1] सहुआइन आती है और होरी की नियत पर कीचड़ उछाल चली जाती है। उसके जाने के बाद मंगरू साह आते हैं। होरी से रुपए उगाहने में वे असमर्थ हैं। परन्तु उन्हें विश्वास है कि वे होरी के मुर्दे से भी वसूल कर लेंगे। झिंगुरीसिंह सब से चतुर हैं। उन्होंने मिल के मैनेजर से पहले ही सब कुछ कह सुन रखा था। तोल शुरू होते ही झिंगुरीसिंह ने मिल के फाटक पर आसन जमा लिया। हर एक की ऊख तोलते, दाम का परचा लेते खजांची से रुपए वसूल करते और अपना पावना काटकर असामी को दे देते। असामी कितना ही रोवे, चीखे किसी की नहीं सुनते।[2] होरी को १२० रुपए में से पच्चीस रुपए मिल पाते हैं जिन्हें वह नोखेराम के हवाले कर देता है। ऊख बिक जाती है पर उसके हाथ एक पैसा भी नहीं आता। होरी डरपोक है परन्तु शोभा एक बार हेकड़ी से परमेश्वरी को रुपए न देने के लिए कह ही देता है। परमेश्वरी उसकी बात को महत्त्व नहीं देते क्योंकि वह जानते हैं कि रुपए देंगे शोभा और हाथ जोड़कर। 'हां अभी जितना चाहो बहक लो। एक रपट में जाओगे छः महीने को—पूरे छः महीने को। न एक दिन बेस न एक दिन कम। मैं जमींदार या महाजन का नौकर नहीं हूं सरकार बहादुर का नौकर हूं जिसका दुनिया भर में राज्य है और जो तुम्हारे महाजन और जमींदारों का मालिक है।' शोभा भी अपनी विवशता को पहचानता है—न दूंगा तो जाऊंगा कहां? होरी और शोभा ही नहीं गिरधारी की भी यही स्थिति है। झिंगुरीसिंह ने उसके पास एक पैसा चबेना के लिए भी नहीं छोड़ा। गिरधारी कंगाल है पर शराबी की तरह झूमता है जैसे खूब पी हो। उसके इस नशे का रहस्य कौन जानता है। एक आने की ताड़ी कितना नशा कर सकती है? यह बड़ा

---

१ गोदान पृष्ठ २७२।

२ वही पृष्ठ २७४।

३ वही पृष्ठ २७६।

जानता है। वह एक आने की ताडी पीकर माना अपन खून-पसीन की कीमत चुका लना चाहता है। होरी उससे भी कहीं अधिक अभागा है। घर पहुचन पर परिवार क सभी सदस्य उसका स्वागत करते हैं। इस स्वागत-सत्कार के पीछे सभी क मन म एक आशा है। होरी उग्र बचकर जा आया है। होरी उदास है—वह कस मुह हाथ धाए, कस चबना खाए। ऐमा लज्जित और ग्लानित था माना हत्या करके आया हा।[1]

धनिया सुनती है—'एक सौ बीस मिले,सब वहीं लुट गए,धेला भी न बचा।' वह सिर स पाव तक भस्म हा उठती है। मन म एसा उद्वग उठा कि अपना मुह नाच ल। बाली—'तुम जसा घामड आदमी भगवान न क्यों रचा' कहीं मिलत, तो उनसे पूछती, तुम्हारे साथ सारी जिन्दगी तलख हो गयी। भगवान मौत भी नहीं देत कि जजाल स जान छूट, उठाकर सारे रुपए बहनोइयो को दे दिए। अब और कौन आमदनी है जिसम गाई आएगी, हल म क्या मुझे जातोग या आप जुताग ? मैं कहती हू कि तुम बूढे हुए तुम म इतनी अक्ल भी नहीं आयी कि गाई भर का रुपए निकाल लात, कोई तुम्हारे हाथ स छान थोडे ही लेता। पूस की यह ठड और किसी क दह को लत्ता नहीं। ल जाओ सबका नदी म डूबो दो। सिसक सिसककर मरने स तो एक दिन मर जाना फिर भी अच्छा है। कब तक पुआला म घुसकर काटेंगे और पुआल म घुस भी लें तो पुआल खाकर रहा तो न जाएगा। तुम्हारी इच्छा हो घास ही खाओ, हमस तो घास नहीं खायी जाएगी।" आगे वह कुछ न कह सकी। एक मुसकराहट उसके होठा पर फल गई। इतनी दर म उसकी समझ म यह बात आन लगी थी कि महाजन जब सिर पर सवार हो जाए और अपन हाथ म रुपए हा और महाजन जानता हो कि उसके पास रुपया है तो असामी कस अपनी जान बचा सकता है।[2]

होरी हा नहा, गाव म शोभा, हीरा सभी की यही अवस्था है और अब यह हा गया है कि वे महाजना के तगादे, गालिया, डाट डपट के अभ्यस्त हो गए हैं। यह सब उसके जीवन क प्रसाद बन गए। ऋण लेते समय चाह लिखा पढी हो या न हा इसकी कोई चिंता नहीं रहती।[3] इसी कारण महाजना को बेईमानी करने का और भी अच्छा अवसर मिल जाता है। ब्याज मनमाना लत ह। सूद की दर लिखत कुछ हैं और लेते कुछ हैं। ऋण न मिलन पर नीलामी कुडकी बदखली

---

१ गोदान पृष्ठ २७६।
२ वही पृष्ठ २७७।
३ वही पृष्ठ १०।

करना और जेल भिजवा देना उनके बाएं हाथ का काम है। होरी पर नोखेराम बेदखली का दावा दायर कर देते हैं और संग्राम में कचनसिंह हलधर को जेल ही भिजवा देते हैं। उनकी इस नियंत्रण विहीन कार्यविधि पर कोई रोक नहीं। महाजन अपनी सत्ता से परिचित थे। वे जानते थे सरकार कुछ भी करे परन्तु किसान को जब जरूरत पड़ेगी तो वह हर स्थिति में उसी के पास उधार लेने आएगा ही। कचहरी अदालत कुछ नहीं कर सकती। कानून और न्याय उसी का है जिसके पास पैसा है।

किसान ऋण के शिकंजे में जकड़ गया है। होरी ऐसा ही किसान है जो एक दिन आत्मसम्मान भी खो देता है। नोखेराम की बेदखली से बचने के लिए रामसेवक को दो सौ रुपए में बेटी रूपा को ब्याह देता है। सौदा कराने में वह मध्यस्थ बनता है। होरी के हाथ में जब रुपए आते हैं तो "उसका हृदय काँप रहा था। उसका सिर ऊपर न उठ सका। मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गड्ढे में गिर पड़ा हो और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है। और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है उसके मुँह पर थूक देता है। वह चिल्ला चिल्लाकर कह रहा है—भाइयो, मैं दया का पात्र हूँ। मैंने नहीं जाना जेठ की लू कैसी होती है और माह की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीरकर देखो इसमें कितना प्राण रह गया है। कितना जख्मों से चूर कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो कभी तूने विश्राम के दर्शन किए कभी तू छाँह में बैठा। उस पर यह अपमान। और वह अब भी जीता है—कायर लोभी अधम। उसका सारा विश्वास जगाध होकर स्थूल और अंधा हो गया था मानो टूक-टूक उड़ गया है।"[1]

होरी की यह करुण कहानी उस व्यक्ति की कहानी है जो भारतीय कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहा है। दूसरे शब्दों में महाजनी-सभ्यता के कुप्रभावों की दारुण मर्मस्पर्शी गाथा है। होरी के जीवन और मरण में एक सूत की दूरी थी जो मिटते ही होरी को असीम शांति की गोद में सुला देती है। "अब न दातादीन के तकाजे हैं न झिंगुरीसिंह की गालियाँ और न दुलारी के उलाहने। *अब उसे न सूद की चिंता है न ब्याज का भय।* उसने मरकर अपने जीवन की असफलताओं का मूल्य चुका लिया है। अब उसे दातादीन, झिंगुरीसिंह और दुलारी सूद के लिए परेशान नहीं कर सकते।

---

१ गोदान पृष्ठ ३११।

ग्राम्य जीवन मे कृषि का महत्त्व

भारतीय अर्थ-व्यवस्था कृषि और उद्योग धन्धो पर अवलम्बित है। प्रेमचद युग म गावो क आर्थिक जीवन की सबस बडी विशेषता यही थी कि यहा के अधिकाश निवासी जीविका के लिए कृषि पर निभर थ। देश की जनसख्या म, प्रति चार व्यक्तियों म स तीन की जीविका खेती से चलती थी। 'उपजाऊ भूमि तथा श्रम क बाहुल्य म खेती करने के आनुवशिक कौशल के कारण ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति न ही भारत को एक सम्पन्न खेतिहर देश बनाने के लिए वरण किया हो।'[1] कृषि अधिकाश व्यक्तियो की जीविका का साधन होने के उपरान्त भी अत्यन्त निराशाजनक अवस्था मे थी। डॉ० क्लाउस्टन ने तत्कालीन कृषि की दुरवस्था को लक्ष्य कर लिखा था—"भारत म दलित जातिया हैं और उन्ही क समान दलित उद्योग भी हैं। दुर्भाग्य स कृषि-उद्योग भी उन्हीं म से एक है।"[2] कृषको क खेतो का विस्तार और स्थिति, उनकी कृषि प्रणाली, कृषि-साधन भूमि-व्यवस्था, पशुपालन व्यवस्था, गावो म सहायक उद्योग धन्धे—चाहे जिस दृष्टिकोण स देखें, कृषि-उद्योग नितान्त पिछडी अवस्था म था। इसका प्रमुख कारण स्वर्गीय श्री वोल्फ के विचार में यह था कि 'देश महाजन क चगुल म है। ऋण के व धन ही खेती को जकडे हुए हैं।'[3]

कृषि की स्थिति इतनी पिछडी हुई थी फिर भी वह गावो की अस्सी प्रतिशत जनता की जीविका का एकमात्र साधन थी। कृषि क प्रति लोगो क मन म विशेष आस्था थी। कृषि किसान की मर्यादा की प्रतीक थी। उसके बिना किसान का जीवन अपूर्ण था। वह उसके जीवन का अश थी।[4] युग की बदलती परिस्थितियो म उसे यह अनुभव होने लगा था कि कृषि से इतनी आय नही होती कि वह दनिक जीवन की आवश्यकताए भी पूरी कर सक। दिन रात खेती म लग रहने क उपरान्त भी किसी को भरपेट दाना नही मिलता। खेती म कुछ भी नही रह गया। मजदूरी भी नही पडती।[5]

---

१ भारतीय अर्थ व्यवस्था पष्ठ २८२।

२ कृषि आयोग रिपोर्ट—साम्य अभिलेख खण्ड प्रथम। भारत सरकार के अधिकारियो की शाखा।

३ कोआपरेशन इन इंडिया पष्ठ ३१।

४ बलिदान (मानसरोवर आठवा भाग) पष्ठ ६६।

५ गोदान पष्ठ २१।

प्रेमाश्रम पष्ठ ४६।

कृषि पर निर्भर रहकर जीवन निर्वाह कठिन हो गया परन्तु खेती से जुड़ी 'मर्यादा' उनको जकड़े रही। खेती छोड़कर मजदूर बनना उन्हें अपमानजनक लगता। जिस तरह पुरुष के दिल से अभिमान और नारी के मन से लज्जा नहीं निकल सकती उसी तरह परिश्रम से रोटी कमाने वाला कृषक भी मजदूरी के लिए बाहर नहीं निकल पाता। 'मजदूर' कहलाने का अपमान इतना असह्य था कि उसके बच्चों के लिए द्वार पर दो बैल बांधे। जमींदार के चाहे उनकी आय का बहुत बड़ा भाग उन पर खर्च हो जाए।[1] किसान की जो प्रतिष्ठा होती है वह मजदूर की नहीं चाहे वह आर्थिक दृष्टि से कितना ही सम्पन्न क्यों न हो। 'कृषक' का गौरवपूर्ण पद उनको विवश कर देता कि वे जीवन में मिलने वाले प्रत्येक अभाव को हँस-हँसकर सह लें। मजदूरी करने से मरना अधिक अच्छा है ऐसा सोचने वाला व्यक्ति खेती के प्रति कितनी आस्था रखता है यह स्वयं सिद्ध है। 'वे कृषक हैं किसी के गुलाम तो नहीं'—यह विचार उनके आहत मन के लिए बहुत बड़ा आश्वासन था। परन्तु यह आश्वासन अधिक देर तक उन्हें सांत्वना नहीं दे सका। उन्हें स्पष्ट हो गया कि वे केवल इस योग्य रह गए हैं कि वे 'मरजाद' को लेकर चाटते रहें।[2] परन्तु 'मर्यादा' रोटी-कपड़े की जरूरतें पूरी नहीं कर सकती। इस सत्य से परिचित हो 'मर्यादा' को ठुकराकर जन्म भूमि पर जान देने वाले किसान बाल-बच्चों को लेकर मजदूरी करने निकल पड़े।[3] यह समय का ही प्रभाव था कि स्वाधीन कृषक मजदूर बनने लगा। मजदूर बन कर किसान का सम्मान न रहा। सबके बीच में बोलने-बैठने का अधिकार भी उससे छिन गया। एक दिन जिसका सिर अपने लहलहाते खेतों को देखकर गर्व से ऊंचा उठ जाता था वही आज समाज बिरादरी सभी से उपेक्षित हो लांछित सा जीवन व्यतीत करने पर बाध्य हो गया।[4]

एक सुदृढ़ किला जिसके भीतर बैठकर उसने अपनी मर्यादा सुरक्षित रखी थी वही अचानक परिस्थितियों के चक्र से ढह गया था और आज वह लुटा-लुटा सा खोया सा खड़ा था। जीवन की संचित निधि उसके देखते देखते लुट गई थी पर वह विवश था। वह असहाय था। उसके लिए जीवन निर्वाह भी कठिन हो गया। उसकी आत्मा अब इस पर विश्वास नहीं कर सकी थी कि 'खेती के

---

१ सभ्यता का रहस्य (मानसरोवर चौथा भाग) पृष्ठ १६६।
२ कर्मभूमि पृष्ठ १५३।
३ खून सफेद (मानसरोवर आठवां भाग) पृष्ठ ५।
४ बलिदान (मानसरोवर, आठवां भाग) पृष्ठ ७५, ७ ७३।

बराबर कोई रोजगार नहीं जो कमाई और तकदीर अच्छी हो।'[1] उसका पौरुष तकदीर के हाथों पराजित हो गया था। जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं 'मर्यादा' की 'ढाल' से पूरी नहीं हो सकती। जीवन की कठिनाइयां, दु:ख-दर्द इस 'ढाल' के सहारे उसने अब तक झेल ये पर मजदूर बनते ही वह ढाल टूट गई जो उसे आज तक भ्रम में रखे हुए थी। खेती केवल 'मर्यादा' रक्षा का साधन मात्र रह गई थी। जीविका का भार मजूरी पर आ पड़ा।[2] धरती की बरक्कत भी उठ गई थी। जीवन में परिस्थितियां बदलीं और उनके साथ उसे भी बदल जाना पड़ा।

खेती का मोह, उसकी मर्यादा की भावना, सहिष्णुता, धैर्य और पौरुष—सब कुछ परिस्थितियों के हाथों समाप्त होने लगा। 'गोदान' में गोबर खेती की झूठी मर्यादा तोड़कर शहर भाग जाता है। शहर में जाकर वह मजदूर बन जाता है और होरी गांव में 'मर्यादा' का भार ही ढोता रहता है। एक दिन ऐसा भी आता है जब वह विवश हो अपने जर्जर-तन और अभावों तथा विपत्तियों से आहत मन को वहां खींचकर ले जाता है जहां ईंट और गारे को ढोते ढोते उसकी 'मर्यादा' की समाधि चुनी जाती है। भाग्य की विडम्बनाओं से क्षत विक्षत मन और कंकाल शरीर को वह अंतिम तर्पण देता है और वह भी अपने अश्रुकणों से! अंतिम श्वास लेते समय उसे न मर्यादा का स्मरण रहता है न किसान के सम्मानित जीवन का। उसके नेत्रों के सम्मुख जीवन के अधूरे धुंधले बिखरे बिखरे से चित्र आने लगते हैं लेकिन बेक्रम और असम्बद्ध से—लेकिन जीवन की मनोकामनाओं और आकांक्षाओं की रंगीन छटा लिए। वह अपने असफल जीवन पर दृष्टिपात करता है—असहाय वेदना, असीम व्यथा, असफलता की ग्लानि, विवशता का नैराश्य और मौत की यातना—सब के साथ उसके जीवन पर पर्दा पड़ जाता है।

उसकी मृत्यु पर गोदान होता है उन बारह आने पैसों का जो धनिया ने सुतली बेचकर एकत्र किए थे। जीवन भर उसके स्वप्न उसके साथ भोंडा मजाक करते रहे। मृत्यु के बाद गोदान उसकी विवशताओं के प्रति तीखा व्यंग्य बन जाता है। जिसने 'आत्मोत्सर्ग' कर दिया उसके लिए 'गोदान' की क्या आवश्यकता? प्रश्न में निहित उत्तर परिस्थितियों के पास नहीं था।

कृषि दैविक और भौतिक आपदाएं

'सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर, सुन्दरी को गहनों पर और वैद्य को

---

१ कर्मभूमि पृष्ठ १५।

२ सवा सेर गेहूं (मानसरोवर चौथा भाग) पृष्ठ १६०।

अपने सामने बठे हुए रोगियो पर जो घमड होता है वही किसान को अपने खेतो को लहलहाते हुए देखकर होता है। उसकी सारी सम्पत्ति खतो मे होती है *या खलिहानो म*।"[1] उसका पूरा परिवार इस खेती पर आश्रित रहता है। खेती उसके पूरे परिवार के सदस्यो के सामूहिक श्रम का सुफल होती है। 'गोदान मे होरी खेतो मे अकेला नही है। होरी बलो को हाक रहा था और गोबर मोट ले रहा था। सोना और रूपा दोनों खेतो म पानी दौडा रही थी।" खेती परिवार का प्राण होती है फिर भी उसकी अवस्था एक अनाथ बालक-सी होती है। जल और वायु अनुकूल हुए तो अनाज के ढेर लग जाते हैं और यदि ये उनकी कृपा से वचित रह गए तो लहलहाते खेत 'विश्वासघाती 'मित्र की भाति 'दगा दे जाते है। ओला-पाला सूखा बाढ, टिड्डी आधी और दीमक लाही से खेत बचें तो फसल खलिहान म आ पाती है। और खलिहान से अग्नि और बिजली दोनो की ही शत्रुता होती है।

'गोदान मे कृषि-सम्ब धी विपत्तियो का उल्लेख करते हुए एक स्थान पर प्रेमचद ने लिखा है—' मगर जब चौमासा आ गया और वर्षा न हुई तो समस्या अत्य त जटिल हो गई। सावन का महीना आ गया था और बगूले उठ रहे थे। कुआ का पानी भी सूख गया था और ऊख ताप से जली जा रही थी। नदी से थोडा-थोडा पानी मिलता था मगर उसके पीछे आए दिन लाठिया निकलती थी। यहा तक कि नदी ने भी जवाब दे दिया।"[2] इतना ही नही, यदि खेती लहलहाने भी लगे तब भी दविक प्रकोप उसे तहस-नहस कर देता है। सग्राम' म मधुबन गाव के फत्तू का दु ख इसी सत्य की अभि यक्ति है। 'उसकी लहलहाती खती नष्ट हो गई और वह केवल इतना ही कह पाता है— 'कल इन खेतो को देखकर कसी गज भर की छाती हो जाती थी। ऐसा जान पडता था, सोना बिछा दिया *गया है। कित्ते कित्ते भर की बालें लहराती थीं पर अल्लाह ने सारा सब सत्यानाश* कर दिया। बाग म निकल जाते थे तो बौर की महक से चित्त खिल उठता था। पर आज बौर की कौन कहे पत्ते तक भर गए।[3]

खेतो की फसल खलिहानो म आ सके उससे पहले उसकी रक्षा करने का

---

१ भक्ति-मार्ग तथा मुक्ति धन (मानसरोवर तीसरा भाग) पृष्ठ २३८ ४०, १७६ २४८ २४६।

गोदान पृष्ठ १३२ २८ १४६।

पूस की रात (मानसरोवर पहला भाग) निष्कर्ष।

२ गोदान पृष्ठ १२४।

३ सग्राम पृष्ठ १३।

उत्तरदायित्व भी कृपक पर है। माघ-पूस की राता मे खेतो मे मडया डालकर उसकी रक्षा करना भी सरल नहीं है। निधनता किसान की साथिन है। पास म इतने कपडे भी नहीं कि रात की ठड मिटाई जा सके। 'पूस की रात' का हल्कू शीत को पराजित करने का असफल प्रयास करता है। 'गोदान' म होरी अपने पुरान साथी कम्बल म शीत को छिपा लेना चाहता है। माघ और महावट। घटा टोप अधेरा। जाडो की रात। मौत का-सा सन्नाटा। होरी पुनिया के मटर की खेत की रक्षा कर अपना कतव्य पूरा करता है।[1] कृपक अपने जीवन का सुख शान्ति इन खेता की रक्षा म स्वाहा कर देता है।

दविक भौतिक आपदाए तो खेती को नष्ट भ्रष्ट करन के लिए बनी ही हैं इनके साथ स्वय कृपक की कुछ अपनी स्वाभाविक मानवीय दुबलताए होती हैं जो उपज की आय को देखते देखते समाप्त कर डालती हैं। पत्नी के लिए आभूषण बनवाना उसके लिए आवश्यक है। बिरादरी को भोज भात दना और तीथ-यात्रा करना उसके कत य की परिधि मे आ जाते हैं। हरे भरे खेता को देख उसे 'ताव' आ जाता है। अपने खेता पर ही उसकी आशा टिकी रहती है। इसी आधार पर वह ऋण लेता है चाहे उसकी आशा निमूल ही सिद्ध हो।

कृषि और उसकी अन्य समस्याए

देहातो की अधिकाश भूमि खेती के लिए प्रयुक्त होती परन्तु उसके अनुपात म उपज बहुत कम थी। इसके पीछे अनेक कारण थे। कम उत्पत्ति का एक बहुत बडा कारण भारत म अनिश्चित वर्षा है। वर्षा के कम और असमान होने के अतिरिक्त अन्य कारण जसे बाढ, ओला और आधी आदि दैविक विपत्तिया हैं जो खेती को नुक्सान पहुचाती हैं।[2] कृषि की उत्पत्ति की कमी का अन्य कारण अकुशल ढग से खेता को जोतना तथा खेती करने के लिए अनुपयुक्त साधनो का होना भी था। अधिकतर खेती के लिए हला म बलो का उपयोग होता था जो बूढे और मरियल होते थे। उनके वत 'पिंसिन' लेन की स्थिति म पहुच जाते थे परन्तु किसान चाहकर भी उसको हल के जुए से मुक्त नहीं कर सकता था।[3]

कभी-कभी बल खेत जोतते-जोतते बीच म ही मर जाते। इस समय खेत जोतना कठिन हो जाता। होरी 'गोदान' म इसी स्थिति का सामना करता है।

---

१ गोदान पृष्ठ १२२।
२ वही पृष्ठ २२३।
३ वही पृष्ठ ४४५।

भोला गाय के वदले उसका वल खोलकर ले जाता है और होरी सोचने लगता है—मगर बैलो के बिना खेती कस हो ? गावो मे बोआई शुरू हो गई। कार्तिक के महीने म किसान के वल मर जाए तो उसके दोना हाथ कट जाते हैं। होरी के दोना हाथ कट गए थे। और सब लोगो क खेतो म हल चल रहे थे। बीज डाले जा रहे थे। कही-कही गीत की तानें सुनायी देती थी। होरी के खेत किसी अनाथ अबला के घर की भाति सूने पडे थे।[1] होरी दिन भर इधर उधर मारा मारा फिरता था। कही इस के खेत म जा बठता, कही उसकी वोआई करा देता।

खेत म हल जोतने वाला किसान और हल म जुतने वाला बैल दोना ही निबल होते थे। किसान को भरपेट भोजन भी नही मिलता। उनके बला को भूसे और सूखी चरी पर रहना पडता।[2] इसके अतिरिक्त उन्ह अच्छी खाद और बीज भी उपलब्ध नही होते थे। सिंचाई के उपयुक्त साधन भी नही थे। कुओ, नदियो और तालाब का पानी सूख जाता तो उसके साथ ही खेत भी सूख जाते।[3] कम उपज का एक यह कारण भी सोचा जा सकता था कि भूमि की उत्पादक शक्ति का ही ह्रास होने लगा था। प्रति एकड अन्न की औसत उत्पत्ति कम हो गई थी और निरन्तर होती जा रही थी। प्रति एकड उपज म कमी आयी। साथ ही अन्य फसलो की उपज म भी कमी आने लगी।

खेती की दुरवस्था क मूल मे अनेक ऐसे छोटे-मोटे कारण थे जिन्होने एक साथ मिलकर 'एक विकट समस्या का रूप धारण कर लिया था। समय क साथ समस्या जटिल से जटिल होती ही जाती थी। 'गोदान तक आते आते वह इतनी उग्र हो चुकी थी कि उसम उलझा 'होरी दम ही तोड देता है।

कृषि और लगान समस्या

प्रेमचद-युग म कृषक आज की तरह लगान क सम्बन्ध म निश्चिन्त नही था। सन् १९२९ म विश्वव्यापी आर्थिक मदी के कारण अनाज का मूल्य बहुत नीच गिर गया। सरकार की आय का अधिकाश भूमि स मिलता था। जमीदार इस स्थिति म सख्ती से लगान उगाहना और किसाना की प्रार्थना क उपरान्त भी

१ गोदान पृष्ठ ४४२ २६३।
२ वही पृष्ठ १४८।
३ उपदेश (मानसरोवर आठवाँ भाग) पृष्ठ २८६।
गोदान पृष्ठ ४४१ २२३ ३ ४।
४ मक्ति धन (मानसरोवर तीसरा भाग) पृष्ठ १३८।
प्रेमाश्रम पृष्ठ ४६।

लगान म छूट नही देता। किसान आय के लिए खेती पर निभर था। खेती भी ऋण के बन्धना से जकडी हुई थी। उपज अल्प थी और आय भी। इस आय पर पहला अधिकार महाजना का होता था और दूसरा जमीदार और उसके प्यादो का। शेष जो बच रहता उसस पूरे परिवार का निर्वाह भी कठिन हो जाता था। 'पदावार का मूल्य लागत और लगान से कही कम था।''[1]

लगान की निश्चित दर होती थी जो अपरिवतनशील होती थी चाह उपज दविक या भौतिक विपत्तियों से नष्ट हो जाए और चाहे जिन्स का भाव गिर जाए लगान की दर पूवनिर्धारित ही उगाही जाती। इस कारण अधिकतर स्थिति ऐसी बन जाती कि लगान की रकम इतनी बढ जाती कि उपज का मूल्य भी उस सीमा तक नहा पहुच पाता था।[2] लगान बरसाती नाले के पानी की तरह बढता जा रहा था और ऐसा प्रतीत होन लगा था कि जीवन म कितनी ही कतर ब्योत न करलो कितना ही तन-पेट काट लो चाहे एक एक कौडी को दात से क्यो न पकडो परन्तु यह लगान 'बबाक' नही हो सकता।[3] यह एक तरह से अन्याय ही था कि जिनको न भरपट भोजन मिले, न तन ढकने को भरपूर वस्त्र, उससे भी लगान लिया जाता था।[4] यह भावनात्मक रूप म उचित नहीं था परन्तु यह एक कठोर सत्य था जिससे जमींदार और सरकार दोनो ने ही आखें मूद रखी थी।

'कमभूमि' और गोदान' उपन्यासो म लगान समस्या का भयकर रूप दिखाई देता है। किसान अनपढ है। वह कानून नही जानता। वह लगान चुका भी देता है तो रसीद नहीं मिलती। जो हुकड और समझदार किसान होते—रसीद उन्ही को मिलती और शेष पर लगान चुकाकर भी तकाजे किए जाते।[5]

'कमभूमि म आर्थिक मन्दी पर प्रकाश डालते हुए प्रेमचद ने लिखा था— 'इस साल अनायास ही जिन्सो का भाव गिर गया। इतना गिर गया, जितना चालीस साल पहले था। जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच-बाचकर लगान दे देता था, लेकिन जब दो और तीन की जिन्स एक म बिके, तो किसान क्या करे। कहा से लगान दे कहा स दस्तूरिया दे, कहा से कज चुकाए? विकट समस्या आ खडी हुई और यह दशा कुछ इसी इलाके की न थी। सारे प्रान्त, सारे

१ कर्मभूमि पृष्ठ ३६६।
२ वही, पृष्ठ ३१३ ११५ २६३ ६४।
३ गोदान पृष्ठ ३।
४ कमभूमि पृष्ठ ३६६।
५ गोदान पृष्ठ ३००।

देश, यहां तक कि सारे संसार में यही मंदी थी।[1] कर्मभूमि में महन्त जी के प्यादे और कारकुन लगान उगाहने के लिए अत्याचार करते हैं। आत्मानन्द किसानों को उत्तेजित कर देता है जिन्हें अमर कठिनाई से शान्त कर पाता है। अमर गूदड़ के साथ महन्त जी से मिलता है। वह लगान में छूट की प्रार्थना करता है। महन्त जमींदार को भी सरकार को मालगुजारी देनी पड़ती है। इसलिए वे स्वयं लगान कैसे माफ कर सकते हैं। महन्त जी सरकार के पास मालगुजारी में छूट देने के लिए लिखते हैं और जब तक वहां से स्वीकृति न आए तब तक के लिए वे रुपये में चार आने की छूट दे देते हैं।

किसान जो कि अपने प्रति हुए क्रूर अत्याचार को मौन रहकर सहता है अब सजग हो उठा। जगह जगह किसान-सभाएं प्रारम्भ हो गई। किसानों में नयी चेतना फैलती है। कर्मभूमि' उपन्यास में संयुक्त प्रान्त का लगानबंदी आन्दोलन और उसका सरकार द्वारा दमन प्रतिबिम्बित हुआ है। अमर परिस्थितियों को देखकर लगानबंदी आन्दोलन प्रारम्भ करता है और जेल भेज दिया जाता है। सलीम इस इलाके का सरकारी आफिसर है जो प्रारम्भ में किसानों पर सख्ती करता है परन्तु बाद में अमर के पिता समरकान्त की प्रेरणा से इलाके में जाकर स्वयं स्थिति से परिचित होता है। वह किसानों का पक्ष लेता है और सरकार की दृष्टि में अपराधी होकर दंडित होता है। उसे नौकरी से अलग कर दिया जाता है। सलीम स्वयं इस आन्दोलन का नेतृत्व करता है। चमारों की हरिद्वार के निकट गंगा के किनारे स्थित बस्ती के लगानबंदी आन्दोलन को सरकार बुरी तरह कुचल देती है। किसानों की फसल ही नहीं, मवेशी भी कुर्क किए जाने लगे।[2]

'कर्मभूमि' का लगानबंदी आन्दोलन सफल नहीं हुआ पर उसका इस दृष्टि में महत्त्व अवश्य है कि वह किसानों की नव-चेतना का प्रतीक था। किसानों में जो जागृति आई वह इसी का परिणाम थी। आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले सभी गिरफ्तार कर लिए गए परन्तु गवर्नर सबको मुक्त कर देता है और इस सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए एक कमेटी बनाने का आदेश देता है। इस आन्दोलन में जो बलिदान हुए—वे किसान जागृति के सूचक और इन्हीं के आधार पर यह समझौता हुआ था।[3]

---

१ कर्मभूमि पृष्ठ २८७।
२ वही पृष्ठ २६२।
३ वही पृष्ठ ४०३।

प्रेमचद ने लगान-सम्बन्धी समस्या का चित्रण यथार्थ रूप म किया है। जेल' कहानी मे भी मृदुला मदी के समय किसानो की इस समस्या के सम्बन्ध म कहती है— देहातो म आजकल सगीनो की नोक पर लगान वसूल किया जा रहा है। किसानो के पास रुपये हैं नही, दें तो कहा से दें। अनाज का भाव दिन दिन गिरता जाता है। खेत की उपज से बीजो तक के दाम नही आते। मेहनत और इस सिचाई के ऊपर। गरीब किसान लगान कहा से दे।"[1]

'प्रेमाश्रम' म लगान उगाहने का मार्मिक वर्णन हुआ है। ज्ञानशकर और गौस खा दोनो एक होकर लगान उगाहने म कडाई से काम लेते हैं। 'ज्ञानशकर की स्वार्थपरता ने खा साहब को अपनी अभिलाषाए पूर्ण करने को अवसर प्रदान कर दिया था। वर्षान्त पर उन्होंने बडी निर्दयता से लगान वसूल किया। एक कौडी भी बाकी न छोडी। जिसने रुपये न दिए या न दे सका, उस पर नालिश की कुर्की करायी और एक का डेढ वसूल किया। कितनी असामियो को समूल उखाड दिया और उनकी भूमि पर लगान बढाकर दूसरे असामियो को सौंप दिया। मौरूसी और दखीलदार असामियो पर भी कर-वृद्धि के उपाय सोचने लगे।"[2] गौस खा बाद के फजुल्लाह और निर्दयता से लगान वसूल करते हैं। "किसी को चौपाल के सामने धूप म खडा करते, किसी को मुश्कें कसकर पिटवाते। दीन नारियो के साथ और भी पाशविक व्यवहार किया जाता। किसी की चूडिया तोडी जाती, किसी के जूडे नोचे जाते।"[3]

लगान समस्या भयकर रूप धारण कर चुकी थी। जमीदार सरकार को मालगुजारी देते। सरकार किसी तरह छूट दे भी देती तो वे पूरा लगान ही वसूल करते क्योकि सरकार छूट की रकम अगले वर्ष पूरी कर लेती।[4] नजर-नज़राना डाड-बाध सब कुछ छोड सकता था परन्तु लगान नही। उसे लगान वसूल करते समय कठिनाई का सामना करना पडता था और इससे मुक्ति तब ही सभव थी जब कि उसे कानून से उसे ऐसी सत्ता प्राप्त हो जाए जिसके बल पर वह जब चाहे जिस असामी को चाहे बेदखल करा सके।[5]

युग बदला मनोभाव बदला और उसके साथ मौन रहने वाला कृषक बदला।

---

१ जेल (मानसरोवर सातवां भाग) पृष्ठ १०।
२ प्रेमाश्रम पृष्ठ ४७।
३ वही पृष्ठ २६२।
४ संग्राम पृष्ठ ४३ ४६।
५ प्रेमाश्रम पृष्ठ २४७ ५२६।

'किसान संग्राम' में सहना है 'प्रेमाश्रम' में वह धूप नहीं रहता। वह लगान में छूट लेने के लिए सरकार, जमींदार और कारिन्दों से याचना नहीं होती। अब 'चिमटे की रानक' में न्याय और अधिकार की माँग की जाती है। सक्खू चौधरी 'प्रेमाश्रम' पूरे गाँव का लगान फजुल्लाह को देने को तयार है पर वह अदालत का खर्चा भी माँगता है। सुक्खू चौधरी अदालत का खर्चा भी देते हैं पर रुपया की रानक से नहीं, चिमटे की धमक से। अपने हाथ का चिमटा उसके सिर पर दे मारते हैं और तीखे स्वर में कहते हैं—'यही है अदालत का खर्चा। जो चाहे और ले लो।'[1] यह सुक्खू चौधरी का नहीं, आगामी कल का स्वर है। परिस्थितियाँ उसे विवश कर रही हैं कि वह अपने लिए न्याय खुद प्राप्त करे। आने वाला यह स्वर पर मुखर नहीं हो पाता और लगान की यह समस्या 'गोदान' में इतनी भयंकर हो जाती है कि होरी को लगान के लिए रुपये प्राप्त करने के लिए अपनी बेटी को भी बेच देना पड़ता है। यहाँ इस समस्या का विकराल रूप किसान को घेर चुका है पर कोई समाधान नहीं है। सुक्खू चौधरी की बात कल की कहानी है और होरी आज की और आनेवाले कल की कहानी।[2] आने वाले कल की कहानी की कल्पना की जा सकती है और वह कल्पना कितनी सत्य होगी इसका निर्णय भविष्य करेगा।

ऋण-समस्या

प्रेमचंद-साहित्य आर्थिक विपन्नता की मर्मस्पर्शी कहानी है जिसका प्रारम्भ और अन्त करुणा की आर्द्रता में होता है। 'गोदान' भारतीय कृषक की आत्मकथा है। इसके रचनाकाल के समय स्वयं प्रेमचंद ऋणग्रस्त थे अतएव उनकी अपनी अनुभूतियों ने भी 'गोदान' में अभिव्यक्ति पायी है।

ऋण-समस्या गाँवों को जकड़ चुकी थी। गाँवों की ऋण सम्बन्धी सूचनाओं के आधार पर यह कहा गया था कि— सारे भारत के लिए हम कुल ग्रामीण ऋण को १,००० करोड़ मान सकते हैं।[3] किसान पर ऋण का बोझ बढ़ता जा रहा था, इसके मूल में अनेक कारण थे। ऋण जो दिन-दिन बढ़ता ही जाता था उसका प्रमुख कारण था कि सूद की दर निश्चित नहीं थी। महाजन जो तत्कालीन ऋण-व्यवस्था के प्रमुख आधार थे ब्याज लेते समय ईमानदारी से काम नहीं

१ प्रेमाश्रम पृष्ठ ३११।

२ प्रेमचन्द युग के संदर्भ में यह वाक्य अपना महत्त्व रखता है।

३ भारतीय अर्थशास्त्र पृष्ठ २८३-८४।

करते थे। इसी कारण सूद मूल स भी दुगुना तिगुना हो जाता था और मूल ज्यो का त्यो रहता। किसान अनपढ होने के कारण रुपया लेते समय लिखा-पढी भी नही करता। रुपया चुकाने के बाद भी रकम उनके नाम के आगे लिखी रहती।[1]

ऋण का बोझ बढ रहा था। उसका एक कारण यह भी था कि आय का साधन केवल खेती था जो एक वर्ष भी ठीक स नही हो पाती थी। आर्थिक मदी के कारण भाव गिर गए थे। जीवन निर्वाह और लगान के लिए वह ऋण लेने पर विवश था। हर फसल पर महाजन पहले के ऋण के बदले उपज तुलवा लेता। दविक और भौतिक विपत्तिया उपज को अलग नष्ट कर देती। किसान ऋण को एक तरह स मुफ्त समझने लगा था क्योकि निर्धनता म जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निलज्जता जो तकाजे गाली और मार स भी भयभीत नहीं होती उसे सदैव ऋण लेने के लिए प्रोत्साहित करती रहती थी।[2]

ऋण लेते-लेते वह अभ्यस्त हो गया था। महाजन की घटा चिरौरी करने म उसे लज्जा नही थी। रुपया के लिए झूठ बोलते और झासा देने की उसकी आत्मा उसे धिक्कारती नही थी। यह सब उसके जीवन का प्रसाद बन गया था। वह चाहता था कि 'हम कोई रुपये न दे, हमे भूखा मरने दे, लातें खाने दे, एक पैसा भी उधार न दे, लेकिन पैसेवाले उधार न दें, तो सूद कहा से पायें ? एक हमारे ऊपर दावा करता है, तो दूसरा हम कुछ कम सूद पर रुपए उधार देकर अपने जाल म फसा लेता है।'[3] वह अच्छी तरह जानता था कि इसी तरह सूद बढता जाएगा और उसके बाल-बच्चे निराश्रित होकर भीख मागते फिरेंगे। ऋण की चिन्ता एक काली दीवार की भाति उसके सम्मुख खडी हो जाती। उसके अपने अनुभव उसे यह बता चुके थे कि ऋण वह अतिथि है जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता।[4]

उसके अपने जीवन की कुछ अन्य आस्थाए थी जिनको पूरा करना उसका कर्तव्य बन चुका। बिरादरी, भोज भात और डाड-बाध कुछ ऐसे सामाजिक कृत्य थे जो धर्म का स्वरूप ग्रहण कर चुके थे और धर्म की अपेक्षा उसके भीरु

---

१ गोदान पृष्ठ २७४ ३२६।
२ वही पृष्ठ ७-१०।
३ वही, पृष्ठ १८५।
४ वही, पृष्ठ १०३।

करना सिखाती थी। प्रत्यक को कम से कम जीवन निर्वाह का आश्वासन तो रहता ही था जो आर्थिक उ नति के लिए प्राथमिक महत्व की बात थी। बडे परवारा की अपेक्षाकृत कम आय म बहुत बचत हो जाती थी और बडे बडे परिवारो का अपेक्षाकृत कम आय म ही सुगमता से काम चल जाता था क्याकि घर में आवश्यक सामान और चीज-वस्तु पर दोहरे खच की आवश्यकता नही होती थी। सयुक्त परिवार म उसकी सम्पत्ति का अच्छे से अच्छा प्रयोग सभव था और भूमि क बहुत अधिक उपविभाजन और उप खण्डन से बचा जा सकता था।[1] परन्तु अलग्योझा होते ही परिस्थितिया नवीन रूप धारण कर लेती हैं। सयुक्त-परिवार टूटते ही ऋण का बोझ बढन लगता। खेतो की भूमि छोटे छोटे खण्डो म विभाजित हो जाती और एक हल की खेती होने लगती। यह एक कृषक के लिए अपमानजनक तो होती ही साथ ही, आर्थिक दृष्टि से भी हानिकारक होती। एक परिवार कई परिवारो म बँट जाता। उसके खर्च बढ जाते पर आय घट जाती।[2] बदलती परिस्थितिया स्वाभाविक दुबलताए और शोषक वग के अत्याचार उसके ककाल शरीर स चिपकने वाली जोकें थी जो उसके जीवन का शोषण कर रही थी।

ग्राम्य जीवन मे औद्योगिक समस्याए

देश की अथ व्यवस्था कृषि और उद्योग धन्धो पर निभर करती है। गावो की अथ व्यवस्था विशेष रूप स खेती पर निभर करती थी। किसान खेती की झूठी मर्यादा को तोडकर जीवन निर्वाह के लिए मजदूर बन रहा था। प्रेमचद ने फलती महाजनी सभ्यता को देखा था। उन्होने गबन और प्रेमाश्रम म आशिक रूप मे और रगभूमि' तथा गोदान' म विस्तार से औद्योगिक समस्याओ पर प्रकाश डाला है।

औद्योगिक सभ्यता या पूजीवादी सभ्यता मे समाज दो वर्गों म बटकर रह गया—एक पजीपति दसरा मजदूर। रगभूमि मे जान सेवक के अपने स्वाथ सूरदास से सौदा करने के लिए विवश करते है। जॉन सेवक ताहिरअली से स्पष्ट कहते हैं— मेरा इरादा है कि म्युनिसिपलिटी के चेयरमन साहब से मिलकर यहा एक शराब और ताडी की दुकान खुलवा दू। तब आस पास क चमार यहा रोज आएगे, और आपको उनसे मेल जोल पदा करने का मौका मिलेगा। आजकल

---

१ भारतीय अर्थशास्त्र पृष्ठ १०३।
२ गोदान पृष्ठ ३१ ३६ २०३।

इन छोटी छोटी चालो के बगर काम नही चलता ?"[1] दूसरे क्षण ही वह अपने स्वार्थों पर पर्दा डाल सूरदास को ही प्रलोभन देते हुए कहते हैं—"यहा एक कारखाना खोलूगा जिससे देश और जाति की उन्नति होगी, गरीबा का उपकार होगा, हजारा आदमियो की रोटिया चलेंगी। इसका यश भी तुम्ही को होगा।"[2] सूरदास किसी यश की कामना नहीं करता। पाडेपुर बस्ती के लोगो को वे प्रलोभन देते हैं। वे जनहित की चर्चा करते हुए कहत हैं—"इस सिगरेट के कारखाने से कम से कम एक हजार आदमियो के जीवन की समस्या हल हो जाएगी और खेती के सिर स उनका बोझ टल जायगा। जितनी जमीन एक आदमी अच्छी तरह जोत-बो सकता है, उसम घर भर का लगा रहना व्यथ है। मेरा कारखाना एस बकारो को अपनी रोटी कमाने का अवसर देगा।'[3] इतना ही नहीं, वह कुवर भरतसिंह स देशभक्ति और देश कल्याण की बात करत हैं—"हम देखते हैं कि इस देश म विदेश क करोडा रुपए के सिगरेट और सिगार आत हैं। हमारा कतव्य है कि इस धन प्रवाह को विदेश जान स रोकें। इसके बगैर हमारा आर्थिक जीवन कभी पनप नही सकता।"

जान सवक अपनी स्वार्थपूर्ति म सफल होते हैं। कारखाने के लिए सूरदास की जमीन छीन ली जाती है। मजदूरो के लिए पाडेपुर की बस्ती खाली करवा ली जाती है। पूजीपति जान सेवक का स्वार्थ पूरा हो जाता है और वह अपने कारखान की उन्नति क लिए नतिक अनतिक सभी साधन काम म लाता है।

'रगभूमि म पूजीपति शोषण का रूप विशेष नहा उभरा। उसम पूजीपति के स्वाथ का फलता जाल ही दिखाई देता है किन्तु 'गबन म देवी दीन सेठ करोडीमल के शोषण को देखकर तिरस्कार से कहता है—' उस पापी कहना चाहिए महापापी। दया तो उसके पास स होकर भी नही निकली'। उसकी जूट की मिल हैं। मजदूरो के साथ जितनी निर्दयता इसकी मिल म होती है और कही नही होती। आदमियो को हण्टरा से पिटवाता है हण्टरो से। चरबी मिला घी बेचकर इसने लाखो कमा लिए। कोई नौकर एक मिनट की भी देर करे तो तुरत तलब काट लेता है।"[5]

---

१ रगभूमि पृष्ठ ४।
२ वही पृष्ठ ८।
३ वही पृष्ठ ४४।
४ वही पृष्ठ ४४।
५ गबन पृष्ठ १६ ।

पूजीवाद तेजी से फल रहा था। किसान अपने जीवन स तग आकर मजदूर बनन के लिए शहरा म भाग रहा था। 'प्रेमाश्रम' का बलराज ज़मीदार के अत्याचारा से तग आकर शहर म जाकर मिल म मजदूरी करना पसन्द करता है।[1] 'गोदान' मे गोबर अपने पिता होरी की दयनीय स्थिति से दुखी होकर सोचता है—'वह गुलामी करता है, लेकिन भर पट खाता तो है। केवल एक ही मालिक का तो नौकर है। यहा तो जिसे देखो, वही रोब जमाता है। गुलामी है पर सूखी। मेहनत करके अनाज पदा करो और जो रुपए मिलें वे दूसरो को दे दो।'[2] किसान अधिक स्वतत्र और सुखी जीवन के लिए मजदूर बनता ह परन्तु पूजीपतिया के स्वाथ यहा भी उसे सुखी नही रहने देते। मजदूर पूजीपतियो के शोषण के विरोध म हडतालें करते हैं।

'गोदान' म भी पूजीपति खन्ना के साथ मजदूरो का सघष होता है। पूजीपति विजयी होता है। मिल जलकर राख हो जाती है पर इसकी चिंता उसे नही होती। पेट भरने के लिए मजदूर झुकते हैं। पेट की समस्या ही उनक पराजय का मूल कारण है। औद्योगिक सभ्यता का विरोध किया गया है पर उस कुचल दिया जाता है। सूरदास ग्रामीण-सभ्यता का प्रतीक है। सूरदास का सघष जान सेवक से है जो पूजीवाद का प्रतीक है। सूरदास जानता है कारखाना खुलते ही 'जहा यह रौनक बढेगी, वहा ताडी, शराब का भी तो परचार बढ जाएगा कसबिया भी तो आकर बस जाएगी, परदेसी आदमी हमारी बहू-बेटिया को घूरगे, कितना अधरम होगा। दिहात के किसान काम छोडकर मजूरी के लालच से दौडेंगे, यहा बुरी बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरण अपन गाव म फलाएगे। दिहाता की लडकिया बहुए मजूरी करने आएगी और यहा पसे के लोभ म अपना धम बिगाडेंगी। यही रौनक शहरो म है वही रौनक यहा हो जाएगी।'[3] सूरदास का विरोध कुचल दिया जाता है। जान सेवक आर्थिक दृष्टि से इतना प्रभावशाली नही है जितना वह दिखाता है। कुवर भरतसिंह से वह शेयर खरीदने के लिए आग्रह करता है और इसके लिए लाभ की दर बढा चढाकर बताता है।

'गोदान' म खन्ना की आर्थिक स्थिति दृढ है। मिल क नष्ट होने पर वह चिन्तित नही। रायसाहब और राजा सूर्यपाल सिंह भी खन्ना से ऋण लेते हैं। पूजीपति खन्ना का प्रभाव नगरा और गावो म फल चुका है। उसकी एक महाजनी

---

१ प्रेमाश्रम पृष्ठ ५१।
२ गोदान पृष्ठ ३५७।
३ रंगभूमि पृष्ठ ७७।

कोठी है जिसका एजेन्ट झिगुरीसिंह बेलारी गाव म किसाना को सूद पर रुपया देता है। 'रगभूमि' का पूजीवादी और साम तवादी सघप 'गोदान म आते आते समाप्त हो जाता है। सामन्तवाद पर पूजीवाद की विजय होकर ही रहती है।

पूजीवादी-सभ्यता पैसे पर निभर है। "यहा व्यक्ति का कोई महत्व और मूल्य नहीं है। यहा जो कुछ है धन है और मशीन है। वही देहातो की तबाही, वही घरेलू व्यवसाया का सवनाश।"[1] यह पूजीवादी-सभ्यता ही महाजनी-सभ्यता है। किसान इस सभ्यता के प्रभाव स जकड गया था। साम तवादी-सभ्यता कृषि पर निभर थी। इसका विकास देहातो स होता था। पूजीवादी-सभ्यता नगरो म पनपती है। 'प्रेमाश्रम और 'गोदान' उपन्यासो में सभ्यता का रहस्य तथा लोकमत का सम्मान तथा 'म त्र कहानी म इन दोना सभ्यताओ की परस्पर विरोधी स्थितिया पर प्रकाश डाला है। आर्थिक विषमता देहातो म किसाना को फास चुकी है। *'कफन कहानी का अकमण्य घीसू और माधव यह देखकर खुश हैं* कि वे किसानों से अधिक खुश हैं क्याकि "जिस समाज म रात दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत स कुछ बहुत अच्छी न थी और किसाना के मुकाबल म वे लोग, जो किसाना की दुबलताओ स लाभ उठाना जानते थे, कही ज्यादा सम्प न थे वहा इस तरह की मनोवत्ति का पदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। फिर भी उस (घीसू को) यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटहाल है तो कम से-कम उस किसानो की सी जी तोड मेहनत तो नही करनी पडती और उसकी सरलता और निरीहता स दूसरे लोग बेजा फायदा तो नहीं उठाते।[2]

देहाता म जो शोषण फैल रहा था उससे किसान तग आ चुका था परन्तु उससे बचन का रास्ता नहीं था। देहाता से भागकर नगर मे जाता और वहा मजदूर बनकर नतिकता का उल्लघन कर कुसस्कारो मे ग्रस्त हो जाता। परिस्थितिया कभी एक-सी नही रहतीं। समाज पर एक दिन पूजीपतिया का प्रभाव भी नष्ट होकर रहेगा।[3] प्रेमचद उस समाज-व्यवस्था का स्वप्न देखते थे जहा किसी तरह की विषमता को आश्रय न मिल सके। वग भेद की दीवारें टूट *जाए और प्रत्येक को अपने परिश्रम का उचित लाभ मिले क्योंकि आर्थिक-साम्य* ही एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है।

---

१ विविध प्रसग दूसरा भाग पष्ठ ४४६।

२ कफन पष्ठ ७।

३ पश से मनुष्य (मानसरोवर आठवा भाग) पष्ठ ११५।

४

ग्राम्य जीवन सामाजिक पक्ष

प्रेमचन्द साहित्य समाज सापेक्ष है। समाज के विभिन्न वर्गों की विभिन्न समस्याए उनके उपन्यासो और कहानियो म मूर्त होकर आयी है। प्रेमचद ने नागरिक समाज का ही नही ग्रामीण समाज का भी विस्तृत चित्रण किया है प्रेमचद समाज को महत्त्व देते हैं। व्यक्ति एक सामाजिक इकाई है। सामाज के सदर्भ म ही उसका महत्व है। व्यक्ति परिवार म जीता है। परिवार समाज म जीता है। व्यक्ति का जीवन परिवार को ही नही समाज को भी प्रभावित करता है। समाज की भी अपनी सत्ता है जो व्यक्ति पर नियत्रण रखती है।

प्रेमचन्द ने जिस ग्रामीण समाज का चित्रण किया है उसकी अपनी विशेपताए हैं। समाज एक दिन म नही बदलता। समाज की आधारभूत सस्थाए धीरे धीरे टूटती हैं। परिवतन जितनी तीव्रता से नागरिक समाज म दिखाई देता है उतना ग्रामीण समाज म नही। ग्रामीण समाज म परिवतन की प्रक्रिया मन्द गति स चलती है। प्रेमचन्द युगीन ग्रामीण समाज आज का ग्रामीण-समाज नही है जो नागरिक सभ्यता और नगर की सुख सुविधाओ स परिचित हो चुका है। प्रेमचद युगीन ग्रामीण समाज की बात करते समय व भोले भाले निरीह किसान सपरिवार झुण्ड के झुण्ड सामने आकर खड़े हो जाते हैं जो शोषण की चक्की म अनवरत पिस रहे हैं। परिवार और समाज दोनो धरातलो पर उसका शोषण होता है। उनके छोटे छोटे परिवार जो बिरादरी और धर्म की मान्यताओ स जकड़े हुए हैं अपने स्वतन्त्र जीवन स बहुत दूर नियति के हाथो पराजित हैं। किसान अपने परिवार के धरातल पर विभिन्न भूमिकाए निभाकर अलग अलग रिश्तो की सज्ञा पाता है। परिवार म उसकी विभिन्न भूमिकाए कितनी सफल और असफल होती हैं यह उस आर्थिक ढाँचे पर निर्भर है जो उसके जीवन का नियत्रण रखता है। यह सत्य है कि शोषण के विभिन्न रूप उसको जकड़े हुए हैं फिर भी जहाँ उसके

जीवन के अभाव हैं वहा जीवन का सहज उन्मुक्त प्रवाह भी है। वह रोना ही नही, हँसना भी जानता है। आर्थिक शोषण ने उसके जीवन का स्तर निम्नतम बना दिया है परन्तु आनन्द की सहज प्रवृत्ति का सहज प्रवाह बच रहा है।

टूटते हुए सयुक्त परिवार

प्रेमचन्द्र-युग म सयुक्त परिवार टूट रहे थे। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था म सयुक्त परिवारो का महत्त्व था। सयुक्त परिवार प्रथा लोगो को बिना किसी हानि की सभावना के निस्वार्थ रूप से परिश्रम करना सिखाती थी। इस प्रथा से प्रत्येक को कम से कम जीवन निर्वाह का आश्वासन मिल जाता था जो आर्थिक उन्नति के लिए प्राथमिक महत्त्व की बात थी। उपभोग के क्षेत्र म सयुक्त परिवार मे बहुत बचत हो जाती और बडे बडे परिवारो का अपेक्षाकृत कम आय म ही सुगमता से काम चल जाता था क्योकि घर म आवश्यक सामान और चीजो पर दोहरे खर्च की आवश्यकता नही होती थी। सयुक्त-परिवार म सम्पत्ति का अच्छे से अच्छा प्रयोग सभव था और भूमि को बहुत अधिक उपविभाजन और उपखण्डन से बचाया जा सकता था।[1] इन विशेषताओ के उपरात भी सयुक्त परिवार प्रथा टूट रही थी। प्रेमचन्द्र-साहित्य म इन्ही टूटते हुये सयुक्त-परिवारो की विभिन्न कहानिया हैं।

सयुक्त-परिवार प्रथा जहा पारस्परिक सौहार्द भावना की प्रतीक थी वहा वह ऐसी भूमि भी थी जहा द्वेष, ईर्ष्या के बीज धीरे धीरे जम चले थे। जिस परिवार म सास होती वहा तो गृहस्वामिनी बनने की प्रतिद्वंद्विता नही होती परन्तु जेठानी देवरानी म जो प्रतिस्पर्धा होती उसम द्वेष क्रोध ईर्ष्या और दुर्भावना के अपने अनोखे रूप दिखाई देते।[2] बात महिलाओ तक ही सीमित नही रहती, पुरुषवर्ग तक पहुचती और फिर अलग्योझा की स्थिति आ जाती। अलग्योझे के समय मार पीट तक बात पहुच जाती। अलग्योझा होते ही घर के आगन म दीवारें खडी हो जाती। खेतो म मेडें पड जाती और मनो म भी एक दीवार बन जाती जो स्नेह के प्रवाह को रोक लेती।[3]

परिवार अलग हो जाते। सुख दुख म मिलकर रहने की भावना खत्म होते ही कठिनाइया भी अलग अलग उठानी पडती। प्रत्येक के ऊपर अपनी अपनी

---

१ भारतीय अर्थशास्त्र पृष्ठ १०३।

२ गोदान पृष्ठ ३१।

३ वही पृष्ठ २८३।

गृहस्थी का उत्तरदायित्व आ जाता। घर का खर्चा जो मिलकर उठाया जाता अब अलग अलग उठाना पडता। घर की जरूरतें पूरी करने के लिए विभाजित हुए छोटे छोटे खेत आय के लिए अपर्याप्त हो जाते। आय कम और व्यय अधिक होने लगा और जरूरतें पूरी करने के लिए ऋण लिया जाने लगा। दो चार बीघे का स्वामी बनकर पूरी गृहस्थी का खर्च पूरा करना कठिन हो जाता।[1] संयुक्त-परिवार म सभी की बराबर जिम्मेदारी होती थी। श्रम का उचित मूल्यांकन न होने पर स्थिति विद्रोहात्मक रूप धारण करने लगती। परिवार विभाजन का आघात स्थायी चिह्न छोड जाता। अलग्योझा मर्मान्तक पीडा पहुंचाता। जहां मिल जुल कर खाना-पीना, उठना-बैठना होता वहीं सूनापन साम्राज्य स्थापित कर लेता।[2]

व्यक्तिगत स्वार्थपरता, अदूरदर्शिता और वैमनस्य की भावना अलग्योझा करवा देती है परन्तु भाइयों के मन म कहीं वही पुराना स्नेह बना रहता है। 'गोदान' म होरी के भाई अलग हो जाते हैं। हीरा होरी की गाय को जलकर माहुर दे देता है। पुलिस आती है परन्तु होरी थानेदार को रिश्वत देकर घर की लाज रखना चाहता है। हीरा भाग जाता है। ऐसे समय म पुनिया की रक्षा करना उनका ही तो काम है। अन्तर का अनुराग अलग्योझा की दीवार भी लाघ जाता है। अपने भाई कितने ही बुरे हो, हैं तो अपने ही भाई। अपने हिस्से के लिए सभी लडते हैं पर अपना खून थोडे बट जाता है।[3] अलग-अलग रहने से क्या होता है। परिवार की इज्जत आबरू तो एक ही है। किसी का क्या साहस है कि तिरछी आख देख सके। सुख म भले ही उडकर रहे परन्तु दु ख के दिन तो मिलकर ही काटे जाते हैं।

हीरा घर छोडकर भाग जाता है। पुनिया का भार होरी सहर्ष उठाता है। वह पुनिया की खेती सभालता है। जब तक हीरा लौटकर नहीं आता वह पुनिया के प्रति पूरा उत्तरदायित्व निभाता है। देखा जाए तो होरी के जीवन म विपत्तियो का प्रारम्भ हीरा ही करता है। गाय जो होरी की बडी अभिलाषा है द्वार पर दो चार दिन बध भी नहीं पाती कि हीरा उस मार डालता है। यह गाय ही गोबर और पुनिया के सम्पर्क का कारण बनती है। हीरा क द्वेष का शिकार होती है। अलग्योझा होकर भी परिवार का बोझा होरी ही उठाता है। जीवन मे विपत्तियो

---

१ गोदान पृष्ठ ३१ ५५ ३८ ३६।

२ अलग्योझा (मानसरोवर पहला भाग) पृष्ठ २७ २८।

३ अलग्योझा की कहानी का सार।
गोदान में होरी की हीरा के लिए सम्भावनाए।

४ गोदान पृष्ठ १११।

की ऐसी शृंखला बनती चलती है कि होरी उसम बधता ही जाता है। वह पराजित होता है जीवन की अभिलाषाए अतृप्त रहती हैं। जीवन के सघर्षों म वह टूटता है पर होरा को देखकर उस लगता है वह हारा नहीं है। ममत्व-ब धुत्व कभी पराजित नहीं हो सकता।

होरी का सयुक्त परिवार ही नहीं टूटा। गावा म परिवार विघटन तेजी से हो रहा था। मालती मेहता के साथ गावा म जाकर स्पष्ट देखती है कि पारम्परिक फूट और वैमनस्य के कारण सयुक्त-परिवार टूट रहे हैं। गाँव में दो भाई भी साथ नहीं रह पाते।[1] सयुक्त परिवार के विघटन न ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को छिन भिन्न कर दिया। सयुक्त-परिवार टूटते हैं। बडे-बडे खेत टुकडों म बट जाते हैं। छोटे छोटे खेत और एक अकेला व्यक्ति पूरी तरह खेती का काम नहीं समाल पाता। खच बढ जात और आय कम। आय को बढाने का साधन ऋण बन जाता। ऋण को न चुका पाने पर किसान कभी नहीं पनपता। ग्राम्य जीवन म सयुक्त परिवार के टूटने से आर्थिक कठिनाइयाँ अधिक बढ गइ। ये आर्थिक कठिनाइया ही किसान के जीवन का दयनीय बना डालती।

समाज और बिरादरी

ग्रामीण समाज मे बिरादरी का अपना महत्त्व था। कृषक के जीवन मे बिरादरी वृक्ष की भाति जडें जमाए हुए थी। शादी-ब्याह मुण्डन-छेदन और जन्म-मरण सब कुछ बिरादरी के हाथ म था। उसके बिना किसान के जीवन की कल्पना भी सभव न थी क्योंकि बिरादरी के बिना उसका जीवन विशृंखल हो जाता, तार-तार हो जाता।[1] बिरादरी का समाज पर अकुश रहता जिसस व्यक्ति का काम-व्यापार नियन्त्रित और मर्यादा मे रहता। समाज के विधान को कोई चुनौती नहीं द सकता। उसकी मर्यादा तोडने वाला कभी सुख की नींद नहीं सो सकता। गाव म जो कुछ घटता, और व्यक्ति जीवन म जो कुछ करता उसका मूल्याकन बिरादरी के औचित्य और औचित्य के आधार पर होता। पचायत ही अच्छे-बुरे का निर्णय करती।[2]

गोदान म होरी की कहानी इस बिरादरी की सत्ता की कहानी है। होरी अपने पुत्र की पत्नी को आश्रय देता है पर बिरादरी की दृष्टि म यह सवथा

१ गोदान पृष्ठ १६०।
२ दड (मानसरोवर, तीसरा भाग) पृष्ठ १४३।
गोदान पृष्ठ १६६ ८६ १९८।

अनुचित है—अन्याय है और अधम भी। होरी विवश है परन्तु उसकी पत्नी धनिया बिरादरी की पूरी उपेक्षा करती है। उसने अपनी बहू को अपने घर म आश्रय दिया है, दुनिया चाहे उसे हरजाई समझे। जिसका हाथ उसके बेटे ने पकडा है उसको आश्रय देना उसका कर्तव्य है। बिरादरी उसे अपने म रखे या न रखे इसकी चिन्ता भी उसे नही है। अपने परिश्रम की रोटी खाते है। बिरादरी मे रहकर उसकी मुक्ति नही हो जाएगी। वश परम्परा की रक्षा के लिए उसे अपने युग के होने वाले शिशु की रक्षा करनी ही है।

होरी धनिया के ठीक विपरीत सोचता है। वह सोचता है बिना बिरादरी को भात दिए ब्राह्मणो को भोज दिए उसका उद्धार नहीं है। उसका हुक्का पानी नही खुलेगा। उसके लिए बिरादरी ही सब कुछ है। उसके लिए पचो म परमेश्वर रहता है जिसका न्याय सिर आखो पर रखना पडेगा। वह बिरादरी म नक्कू बनकर जीने की अपेक्षा गले म फासी लगाकर मर जाना अधिक श्रेयस्कर समझता है। बिरादरी का जो महत्त्व है उसे वह भुला नही पाता। वह आज मर गया तो वही मिट्टी को पार लगाएगी। इसी से वह बिरादरी का लगाया दड सहज स्वीकार कर लेता है। वह खलिहान से अनाज ढो-ढोकर पचो के घर पहुचाता है। बिरादरी का वह आतक था कि वह सिर पर लादकर अनाज ढो रहा था मानो अपने हाथो से कब्र खोद रहा हो। जमीदार साहूकार और सरकार किसी का इतना रोब नही था। कल बाल बच्चे क्या खायेंगे इसकी चिंता प्राणी को सोखे लेती थी पर बिरादरी का भय पिशाच की भाति सिर पर सवार अकुश लिए जाता था।[1]

धनिया होरी के इस व्यवहार से जल उठती है। होरी का हाथ पकडकर तीखे स्वर म कहती है 'ढो तो चुके बिरादरी की लाज। बच्चो के लिए भी कुछ छोडोगे कि सब बिरादरी के भाड म झोक दोगे। ये पच राक्षस हैं राक्षस। ये सब हमारी जमीन छीनकर माल मारना चाहते हैं। डाड तो बहाना है। इन पिशाचो से दया की आशा नही की जा सकती। होरी हतप्रभ है। वह सत्य की थाह लेना चाहता है पर बिरादरी का आतक उसे जड बना रहा है। धनिया चोट पर चोट करती है 'कौन सा पाप किया है जिसके लिए बिरादरी से डरें। किसी के घर चोरी की है किसी का माल काटा है। मेहरिया रख लेना पाप नहीं है। हा, रखकर छोड देना पाप है। आज उधर तुम्हारी वाह वाह हो रही होगी कि

१ गोदान पृष्ठ १८३ १८८ ८६ ६ ६१।

बिरादरी की कैसी मरजाद रख ली। [1] धनिया बिरादरी को चिढाती हुई पात के जन्म पर अकेले ही चीख चीखकर सोहर गाती है। *गाव म यह पहला अवसर* था जब ऐसे शुभ अवसर पर बिरादरी न थी परतु धनिया दिखा देना चाहती थी कि उसे बिरादरी की चिन्ता नही।

बिरादरी का अन्याय इतना बढ गया था कि कलेजा चलनी हो गया था। [2] होरी की पीढ़ी मौन रहकर इसके अत्याचार सहती है पर आनवाली पीढी का गोबर जानता है कि यह बिरादरी कुछ नही बस महत्त्वपूण है वह तत्कालीन समाज-व्यवस्था जो धन पर आधारित है। वह होरी से कडवाहट से पूछता है 'हुक्का पानी सब ही तो था बिरादरी मे आदर भी था, फिर मेरा ब्याह क्या नहीं हुआ। इसलिए कि घर म रोटी न थी। रुपए हो तो न हुक्का-पानी का काम है न जात बिरादरी का। दुनिया पसे की है हुक्का पानी कोई नही पूछता। [3] गोबर समाज की शापक बिरादरी पर तीखा व्यग्य है। बिरादरी सचमुच म गरीबा को *सताने और लूटने के लिए है क्याकि उनके पास रक्षा के लिए पैसा की ढाल नही* है। व्यक्ति का अच्छा-बुरा पसे की चमक म छिप जाता है। इसी कारण मातादीन के लिए कोइ दड नही है पर उसी स्थिति म बहुत कुछ उससे अधिक उत्तरदायित्व पूण स्थिति म गोबर का कष्टकर दड होरी को भोगना पडता है क्योकि होरी गरीब है।

धार्मिक मान्यताए

प्रेमचद साहित्य म चित्रित ग्रामीण जनता धार्मिक अन्धविश्वासा से जकडी हुई थी। धम का वास्तविक स्वरूप तिरोहित हो गया था। उसका बाह्यस्वरूप बहुत विस्तृत था परन्तु उसके मूल मे अत्य त सकीण मा यताए थी। इस धम ने जाति भेद की दीवारें खडी करके एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से ऊचा-नीचा प्रमाणित कर दिया। पूजा पाठ ऐसे बाह्याडम्बर थे जिन्हाने धम का मूल स्वरूप विकृत कर दिया था। सामाजिक कुरीतिया परम्परागत मान्यताए और रीति रिवाज सब ही धम के महत्त्वपूण अग थे। एक सारहीन धम उनके प्राणो का कष्ट किए हुए था।

ग्रामीण समाज,म ऐसी निराधार आस्थाए थीं जिनका निर्वाह करना प्रत्येक

---

१ गोदान पृष्ठ १६२।

२ दड (मानसरोवर तीसरा भाग) पृष्ठ १४३।

३ गोदान पृष्ठ ३१६।

व्यक्ति का कतव्य था। धार्मिक रूढियो और अधविश्वासो को सबसे अधिक प्रश्रय ब्राह्मण वग ने दिया क्योकि इसक माध्यम से उन्होने धमभीरु ग्रामीण जनता को पूणरूप स अपने अधीन कर लिया था। ब्राह्मण धम का प्रतिरूप था। उसके मिथ्याभिमान और कमकाण्ड ने एक आतक सा फला रखा था। 'गोदान' क दातादीन का धमनिष्ठा का प्रभाव इतना फल चुका है कि कोई उसके अत्याचारो का विरोध नही कर पाता। ब्राह्मणत्व का मिथ्याभिमान उसे बोलते रहने पर विवश करता है। उसका अहकार स्पष्ट बोलता है 'कोई हमारी तरह नेमी बन तो ले। कितना को जानता हू, जो कभी सध्या वदन नही करते, न उन्ह धम स मतलब न करम से न कथा से मतलब न पुरान से। वह भी अपने को ब्राह्मण कहते हैं। हमारे ऊपर क्या हसेगा कोई, जिसने अपने जीवन म एक एकादशी भी नागा नही की। कभी बिना स्नान पूजन किए मुह म पानी नही डाला। नेम का निभाना कठिन है। कोई बता दे हमने कभी बाजार की कोई चीज खायी हो या किसी दूसरे के हाथ का पानी पिया हो, तो उसकी टाग की राह निकल जाऊ।'"[1]

दातादीन ब्राह्मण है। 'जजमानी' उसका धम है। इसी 'जजमानी के सहारे उसका जीवन सुख शान्ति से व्यतीत हो रहा है। वे झिगुरीसिंह से इस 'जजमानी' की महत्ता स्पष्ट करते हुए कहते है 'तुम जजमानी को भीख समझो मैं तो उसे जमीदारी समझता हू बकघर। जमीदारी मिट जाय बकघर टूट जाय, लेकिन जजमानी अत तक बनी रहेगी। जब तक हिन्दू जाति रहेगी तब तक ब्राह्मण भी रहेगे और जजमानी भी रहेगी। सहालग मे मजे से घर बठे सौ दो सौ फटकार लेते हैं। कभी भाग्य लड गया तो चार पाच सौ मार लिया। कपडे, बतन भोजन अलग। कही न कही नित कार परोजन पडा ही रहता है। कुछ न मिले तब भी एक-दो थाल और दो चार आन दक्षिणा के मिल ही जाते हैं। ऐसा चन न जमीदारी म है न साहूकारी म।[2]

ग्रामीण जनता ब्राह्मणत्व के खोखलेपन से परिचित होकर भी चुप है। उसके मन म धम का भय बसा हुआ है। धम का मुख्य स्तम्भ भय है। अनिष्ट की शका को दूर कर दीजिए फिर तीथयात्रा पूजा पाठ, स्नान ध्यान रोजा नमाज किसी का निशान भी नही रहेगा। मस्जिदें खाली नजर आएगी और मन्दिर वीरान।'[3] *ग्रामीणो की वह धमभीरुता इन्ह स्वाथ पूरा करने के लिए प्रेरित*

---

१ गोदान पष्ठ २४१।
२ वही पष्ठ २५०।
३ रगभूमि पष्ठ ६३।

करती हैं। धम भीरु प्राणियो का दाव सहज ही चल जाता है।"[1] सेवासदन म महत रामदास और 'कमभूमि' मे महत आत्माराम गिरि एस ही पाखडी हैं जो श्रद्धालु धमभीरु आसामिया से बेगार लेते है। भेंट, पूजा चढ़ावा सब ग्रामीणा को दना ही पडता। कोई भी इस अत्याचार का विरोध नही कर पाता। धम के मुआमले म कौन मुह खोलता ? धम-सकट सबसे बडा सकट है।[2]

ब्राह्मण आर्थिक शोषण करता है। समाज मे धम की जडें बहुत गहरी हैं। समाज के किसी पहलू को धम के अन्तगत समाहित कर लिया जाता है। कोई भी सामाजिक कृत्य धम स अछूता नही है। कानून चाह किसी कृत्य के लिए एकदम दड निर्धारित न कर सके किन्तु धम के पास सदव दड व्यवस्था तयार रहती है। 'गोदान म हीरा होरी की गाय को माहुर दे देता है। दातादीन क पास इम अधम के लिए दड विधान है। चुनिया होरी के द्वार पर आश्रय मागती है। होरी अपने ही पुत्र की पत्नी को आश्रय देता है। दातादीन इस अधम के लिए दड-व्यवस्था कर देते हैं। दातादीन ब्राह्मण है इसलिए धम अधम की व्याख्या करन की उनकी अपनी कसौटी है। उसका पुत्र मातादीन चमारिन सिलिया से सम्बन्ध रखता है। वह पुत्र को भी जन्म देती है परन्तु कोई भी विरोध म कुछ नही बोल पाता।

दातादीन धम का सरक्षक है इसलिए उसका पुत्र मातादीन भी उसकी छाया म सुरक्षित है किन्तु एक दिन जब वही सिलिया को दो मुट्ठी अनाज पर लताडने लगता तो स्थिति दूसरा रूप धारण कर लेती है। सिलिया ने अपना नारीत्व दिया धम दिया—उस पर ऐसा व्यवहार। सिलिया की मा का आक्रोश फूट पडता है—'वाह-वाह पडित ! खूब नियाव करते हो। तुम्हारी लडकी किसी चमार के साथ निकल गई होती और तुम इस तरह की बातें करते तो देखती ! हम चमार हैं इसलिए हमारी कोई इज्जत ही नही है।"[3] दातादीन 'चमार' की इज्जत अपने 'धम से आकते हैं पर चमार इस धम की सीवन उधेड दते हैं। ब्राह्मण उन्हें ब्राह्मण नही बना सकते पर वे ब्राह्मण को चमार जरूर बना सकते हैं। वे मातादीन के मुह म हड्डी ठूस देते हैं। मातादीन बेधरम कर दिया जाता है। मातादीन का धम लुट गया ! "तुम बडे नेमी धरमी हो। उसके साथ सोओगे लेकिन उसके हाथ का पानी न पिओगे।" चमार का सीधा प्रश्न है

१ रगभूमि पृष्ठ ७०।
२ कर्मभूमि पृष्ठ २८६।
३ गोदान पृष्ठ २११।
४ वहीं पृष्ठ २१३।

सीधा व्यग्य है जो धम के पाखड को कडी चुनौती है।

प्रेमचद जाति भेद के पीछे छिपे धम के इस पाखड का भडाफोड करना चाहते हैं। उनकी दष्टि म 'जो अपना धम पाले वही ब्राह्मण है जो धम से मुह मोडे वही चमार है।'[१] दातादीन और मातादीन धम के पाखड को निभाते है इसीलिए उनको अपने ब्राह्मणत्व पर अभिमान है। उनक इसी पाखड पर प्रेमचद न तीखा व्यग्य करते हुए लिखा है—'हमारा धम है हमारा भोजन। भोजन पवित्र रहे फिर हमारे धम पर कोई आच नही आ सकती। रोटिया ढाल बनकर अधम स हमारी रक्षा करती हैं।'[२] यह ब्राह्मण वग जिस ढोंग पर जी रहा है वह जाति पसे और लाक्न पर टिका हुआ है। यह ढाग उनको हमशा उनके पद पर आसीन रखेगा। मातादीन वधरम कर दिया जाता है पर इससे क्या? मातादीन को कई सौ रुपए खच करन क बाद अत म काशी के पडितो न फिर स ब्राह्मण बना दिया। उस दिन वडा भारी हवन हुआ वहुत से ब्राह्मणो न भोजन किया और वहुत स मत्र और श्लोक पढे गए। मातादीन को शुद्ध गोवर और गोमूत्र खाना पीना पडा। गोवर से उसका मन पवित्र हो गया। मूत्र से उसकी आत्मा मे अशुचिता के कीटाणु मर गए।[३]

प्रेमचद ने मातादीन की शुद्धि का जो उल्लेख किया है वह धम को हास्यास्पद सिद्ध करता है। चमारिन से शारीरिक सम्पक रखकर न तन ग दा हुआ न मन। मुह म हड्डी जाने से ब्राह्मण धम 'बेधरम' हो गया। गोबर मूत्र खाने पीने से फिर धम लौट आया। वस्तुत धम के बाह्याडम्बर पर तीखा व्यग्य करना ही लेखक का मूल उद्देश्य है। समाज म धम का ढोग अधिक है। धम क्या है? उसका मूल स्वरूप क्या है? यह ढोंग म कोई जानना नही चाहता। कमभूमि मे समरकान्त अमर से सीधे पूछते हैं— धम है क्या चीज? साल म एक बार भी गगा-स्नान करते हो? एक बार भी देवताओ को जल चढाते हो? कभी राम का नाम लिया है जिन्दगी म? कभी एकादशी या कोई दूसरा व्रत रखा है। कभी कथा-पुराण पढते या सुनते हो? तुम क्या जानो धम किस कहते हैं।'[४] समरकान्त के कथन म तत्कालीन धम की खुली परिभाषा है। प्रेमचद न वस्तुत इन धर्माडम्बरो का चित्रण कर इनके विरोध म स्वर उठाया है। धम की क्षति पूर्ति

१ गोदान पृष्ठ ३५१।
२ वही पृष्ठ १६२।
३ वही पृष्ठ ३४७।
४ कर्मभूमि पृष्ठ ४४।

हो जाए तो वह धम क्या ? पर उस समय धम का यही रूप प्रचलित था । 'धम की क्षति जिस अनुपात से होती है, उसी अनुपात से आडम्बर की वद्धि होती है।'[1] धम क आडम्बरो को जो वास्तविक धम समझते हैं एक दिन उनको भी अपनी भूल मालूम पडती है। समरका त सलीम से अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहते हैं— 'मैं धम की असलियत को न समझकर धम के स्वाग को धम समझे हुए था। यही मेरी जि दगी की सबसे बडी भूल थी।'[2] समरका त की भूल अकली समरका त की भूल नही थी वह सम्पूण हि दू जाति की भूल थी जो धम की सकीणता और रूढियो म कद थी। गोदान' का मातादीन भी वास्तविक धम को पहचान सिलिया की कुटिया को 'दवी का मन्दिर' स्वीकार कर भी समपित कर देता है।

'गोदान' ग्राम्य जीवन का महाकाव्य कहा जा सकता है। यहा धम का जो रूप दिखाया गया है वह सोद्देश्य ही है। धम के पाखण्ड का भडाभोड करने के उद्देश्य से उन्होने मातादीन दातादीन और सिलिया की कथा ली है। धम जाति विशेष की बपौती है। धम के ठेकेदार नैतिक अनतिक की परिभाषा अपनी शक्ति के आधार पर करते हैं। धम और कम म सामजस्य का न होना ही इनके व्यक्तित्व की अपनी विशेषता है। समाज की रूढियों का विरोध धम की सकीणताओ का उल्लघन के लिए कठोर दण्ड का विधान है। गौ-हत्या का पाप ब्राह्मण-हत्या से कम नहीं। उसस मुक्ति पाने के लिए तीन मास के लिए भिक्षा मागना, सात तीथ-स्थानो की यात्रा, पाच सौ विप्रो को भोजन और पाच गउओ का दान आवश्यक हो जाता।[3] यह धम शक्ति का धम है जिसका भय भोली भाली जनता को त्रस्त रखता। जीवन के सब भय इस धम के पीछे छिप जाते हैं। तुलसामाता को दीया चढाना इतवार और मगलवार को दीया करना और महावीर स्वामी की लडडू की मनौती करना, गाव के अपन इलाके की 'डीह' की इच्छा को मानना देवी-देवताओ को ही नहीं भूत प्रेता और चुडला को मान्यता देना—ये सब व्यथ की बातें धम का अग थी जिसे जनता अपने जीवन म[4] बहुत गहरी आस्था के साथ स्थान दे चुकी थी।

एक सारहान-अथहीन धम जनता की श्रद्धा छीन बठा था। एक विशेष

१ कमभूमि पष्ठ १६२।
२ वही पृष्ठ ३४१।
३ मुक्तिमार्ग (मानसरोवर, तीसरा भाग) पृष्ठ २४७।
४ बरगान पृष्ठ ७ ७१ ७३ ७६।
सग्राम पृष्ठ ७३।

धर्मानुराग उन्ह तीथयात्रा, पूजा-पाठ और जप-तप म लगाए रखता।[1] अधिकतर गांवो म न कोई मंदिर होता, न मस्जिद। मुसलमान लोग एक चबूतरे पर नमाज पढ लेते और हिन्दू वृक्ष क नीचे जल चढा देते।[2] हिन्दू धम बहुत ही सकुचित था जहा अन्य धर्मों के प्रति तो कोई सद्भावना थी ही नहीं। साथ ही अपनी ही जाति के नीच अछूत लोगों का भी उसम स्थान न था।[3]

धम उनके जीवन का सुदृढ आश्रय था। यह धम उनका शोषण करता पर वे शान्त भाव से सब स्वीकार कर लेते। दातादीन 'गोदान' म होरी को ऋण देता है परन्तु सूद म ईमानदारी उठाकर ताक म धर देता है। वह धम के नाम पर होरी को धमकाता है और होरी के पेट म धम की क्रान्ति छिड जाती है। ब्राह्मण के रुपए! उसकी एक पाई भी दब गई तो हड्डी तोडकर निकलगी। भगवान न करे किसी पर उसका कोप गिरे। वश म कोई चुल्लू भर पानी देने वाला घर म दीया जलाने वाला भी नही रहना। होरी की धमभीरुता ही उसे दयनीय बना देती है। डाड चुकाने मे भी वह बिरादरी और धम के भय से विवश है। यह धम उसके जीवन मे इतनी गहरी जडें जमा चुका है कि वास्तविक स्थिति स उसे उबरने नही देता। पूवज म के कर्मों का फल ही है कि उसे इतना दुख उठाना पड रहा है। भाग्य म जो लिखा है वह भोगना ही है। ऐसे अधविश्वास उसे मत्यु के हाथो सौंप देते हैं। होरी जीवन भर सघप करता है। जीवन के अन्त म वह धम के हाथो उपहास का पात्र बनता है। होरी मर रहा है। दातादीन गोदान की सलाह देते हैं। यह हिन्दू धम की विडम्बना ही है। यह धम है जो इन्सान से जीने का हक छीन ले। उसके छोटे-छोटे सुखो से भी वचित कर दे और अन्त मे उसके कफन से भी अपना देय मागे। यह हिन्दू धम की सबसे बडी विडम्बना है। यह धम जीते जी ही नही मरने पर भी इन्सान का शोषण करता है।

प्रेमचद धम का विरोध करते थे बात ऐसी नही है। प्रेमचद ने जहा भी ऐसी बातें कही जो धम विरोधी प्रतीत होती हैं तो यह धम का वही स्वरूप है जो मिथ्या आडम्बरो पर आधारित होकर जीवन विकास के माग अवरुद्ध कर व्यक्ति का शोषण करता है। प्रेमचद ने उस धम का विरोध किया है जो ऊच-नीच

---

१ प्रेमाश्रम पष्ठ ७१।
प्रेरणा (मानसरोवर चौथा भाग) पष्ठ १०।
२ हिंसा परमोधर्म (मानसरोवर पाचवा भाग) पृष्ठ ६५।
३ मक्तिधन (मानसरोवर तीसरा भाग) पृष्ठ १७६।
४ गोदान पृष्ठ ३२८।

छुआछूत की बात करता है, जो धम के नाम पर कमकाण्ड को प्रोत्साहित करता है धम सकीणता की दीवारें नही खडी करता, वह मानवता का सदेश देता है। धम के ठेकेदारो न धम का दुरुपयोग किया है। धम का साधनापक्ष तिरोहित हो गया है, केवल पाखड चारो तरफ फैल गया है। उनकी 'ठाकुर का कुआ', 'सदगति' और 'दूध का दाम' आदि कहानियो म धम के उस रूप पर व्यग्य किया है जो लागो को उच्च वग और अछूत वग म बाट देता है और जो अछूतो के साथ अमानुषिक व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है। 'कमभूमि' उपन्यास मे भी ऐसे धम के विरोध म सक्रिय कदम उठाया गया है।

प्रेमचद ने अपने साहित्य म उस धम का व्यापक चित्रण किया है जो अध विश्वास और रूढियो पर आधारित था। उनके प्रमुख उपचारो मे जहा धम का भी वह रूप मिलता है वहा ऐसे पात्र भी उभरे हैं जो इस धम का विरोध करते दिखाई देते हैं। यह बात अलग है कि वह विरोध केवल मौखिक वाद विवाद मात्र बनकर रह गया है। गोदान म गोबर दातादीन के हथकडो को खूब पहचानता है। सूद पर-सूद इतना बढ जाता है कि मूल का पता ही नही चलता। होरी दातादीन से उधार लेता है और दातादीन 'धम के नाम पर दुगुने तिगुने से भी ज्यादा वसूल करना चाहते हैं। गोबर' धमभीरु होकर दातादीन की सत्ता स्वीकार नहीं कर लेता अपितु उसक प्रभुत्व की हसी उडाता हुआ कहता है 'तुम्हारे घर म किस बात की कमी महाराज जिस जजमान के द्वार पर जाकर खडे हो जाओ कुछ न कुछ मार ही लाओगे, जनम म लो, मरन म लो सादी म लो, गमी मे लो। धोप किसी से कुछ भूल-चूक हाजाय तो डाड लगाकर उसका घर लूट लो।'[1]

'कमभूमि' म धम की विडम्बना पर शान्तिकुमार व्यग्य करते हैं। यह निश्चित है कि समय आन पर भगवान और धम के ठेकेदारो का ढोग मिटाकर रहेगा। शान्तिकुमार इसी सत्य का उदबोधन करते हुए कहते हैं 'अन्धे भक्तो की आँखो म धूल झोककर यह हलवे बहुत दिन खाने को न मिलेंगे, महाराज! समझ गए? अब वह समय आ रहा है जब भगवान भी पानी म स्नान करेंगे, दूध से नहीं।'[2] धम अमीरो की चीज ही नही गरीबो की भी है। धम ढोग नहीं सिखाता। वह दया धम सेवा और त्याग का दूसरा नाम है।[3] मन्दिर किसी एक आदमी

१ गोदान पृष्ठ २१४।
२ कमभूमि पृष्ठ २०१।
३ वही पष्ठ २०२।

या समुदाय की चीज नही है। वह जन जन की अपनी चीज नही है।[1] इसी कारण कमभूमि' म मदिर क द्वार अछूत ग्रामीण चमारा के लिए खुलकर रहते ह।

प्रेमच द के धम सम्ब धी विचार वस्तुत सोफिया के माध्यम से 'रगभूमि' म प्रकट हुए हैं। *वह अनुसेवक से कहती है मूर्खों को यह कहते हुए लज्जा नही आती कि मजहब खुदा की बरकत है। मैं कहती हू यह ईश्वरी कोप है—दवी वज्र है जो मानव जाति के सवनाश के लिए अवतरित हुआ है मैं इस विषय पर जितना विचार करती हू उतना ही धम के प्रति अश्रद्धा बढ़ती है।*[2] देखा जाय तो धम का तत्कालीन रूप अश्रद्धा को ही ज म देता है। उनके विचारा की ही अभियक्ति अमर क माध्यम से रगभूमि म हुई है। वह धम के पीछे लाठी लेकर दौडन लगा। धन के सम्ब ध का उसे बचपन से ही अनुभव होता आता था। धम-ब धन उससे कही कठोर कही असहाय कही निरथक था। धम का काम ससार म मेल और एकता पदा करना होना चाहिए। यहा धम न विभिन्नता और द्वेष पदा कर दिया है। क्यो खान पान म रस्म रिवाज म धम अपनी टागे अडाता है? मैं चोरी करूँ खून करूँ धोखा दूँ धम मुझ अलग नही कर सकता। *अछूत के हाथ का पानी पीलू धम छूम तर हो गया। अच्छा धम है। हम धम क बाहर किसी स आत्मा का सम्ब ध भी नही कर सकते।* आत्मा को भी धम ने बाध रखा है प्रम को भी जकड रखा है यह धम नही धम का कलक है।[3]

अमर इतना सोचकर चुप नही है। वह एसी शांति चाहता है जो सवव्यापक हो जीवन क मिथ्या आदर्शों की झूठे सिद्धान्ता का परिपाटियो का अन्त कर दें जो एक नए युग का प्रवतक हो एक नई सृष्टि खडी कर द जो मिट्टी के असख्य दवताओ को तोड फोडकर चकनाचूर कर द। जो मनुष्य को धन और धम के आधार पर टिकने वाले राज्य क पजे स मुक्त कर दे।[4]

प्रेमचद धम क उस उदार रूप की कल्पना करते हैं जो व्यक्ति को व्यक्ति स प्रेम करन द सद्भाव रखन द एक दूसर के दुख म शरीक होन द एक-दूसरे क लिए त्याग और सेवा करने दे धम क अच्छ स्वरूप और माग पर चलने स ही व्यक्ति का कल्याण है। सेवा धम ही अच्छा धम है।[5] इसी उद्देश्य स कमभूमि

---

१ कमभूमि पष्ठ २०४।
२ रगभूमि पष्ठ ११८।
३ कर्मभूमि पष्ठ ८३।
४ वही पृष्ठ ८३।
५ सेवास न पृष्ठ २१२।

अमर और सुखदा, 'प्रेमाश्रम' म प्रेमशकर अछूता और किसाना को मुक्ति म दिलान क लिए प्रयत्नशील हैं। दुख और सवाभाव म ईश्वर का वास है, उसे पाकर ही व्यक्ति वास्तविक मुक्ति और ईश्वर प्राप्त कर सकेगा।[1] 'गोदान' म मालती गोबर क पुत्र को अपना ममत्व देती है।

प्रेमचद व्यक्ति को दुगुणा से ही मुक्त नही मानते हैं व उसम जो देवत्व है उस पर भी यकीन रखते हैं। व्यक्ति के मूल्याकन का आधार उसकी जाति नही, उसका कम है। जो अपन कम से विमुख है वही निन्दनीय है। कोई ऊच-नीच नही, कोई पूज्य और घणित नही ससार क मदान म सब खिलाडी हैं।[2] 'जो अपना धरम पाल वही ब्राह्मण है जो धरम से मुह मोडे वही चमार है। जो सच्चा है वह चमार भी हो तो आदर के योग्य है। जो दगाबाज, भूठा, लम्पट हो, वह ब्राह्मण भी हो तो आदर के योग्य नही।'[3] प्रेमचद इसी तथ्य को मानकर चल हैं। उनका उदार विचार उस धम की स्थापना की बात करता है जहा ऊच नीच वग भेद, धन-वभव और धम के बाह्याडम्बर तथा सकीणताए नही हैं—अपितु वहा एक एसी मानवता की उदात्त भावना है जो परस्पर समानता सद्भाव, स्नेह और त्याग की बात करती है।

ग्रामीण समाज सामान्य विशेषताए

छोटे छोटे परिवारो म बटा ग्रामीण समाज बिरादरी और धम से नियन्त्रित था। सयुक्त परिवार बदलती परिस्थितियो के कारण विशृखलित हो चल थे। बिरादरी उनक जीवन म गहरी जडें जमा चुकी थी। धम की अ ध मान्यताए उनके जीवन के सहज प्रवाह म अवरोध उत्पन्न कर रही थी। इस समाज की कुछ मूलभूत विशेषताए थी जो परिवतन की सहज गति म भी यथावत चली आ रही थीं।

परिवार स्त्री पुरुष के सहज सम्बन्धो का वह व्यवस्थित रूप है जिसे धम और समाज स्वीकार कर लेता है। व्यक्ति परिवार और समाज के धरातल पर जीता है। परिवार म और समाज म स्त्री पुरुष दोना का सहयोग मिलता है। दोना के सहज सम्ब धो की स्वीकृति विवाह सस्था द्वारा ही प्राप्य है। विवाह से पूव स्त्री पुरुष के सम्ब ध तिरस्कार ही पाते हैं। वे सम्ब ध ही आदर पाते हैं जो विवाह स मान्यता प्राप्त कर चुके हैं। वृद्ध विवाह और विधवा विवाह दोना ही देहाता म

---

१ कमभूमि पष्ठ २७३।
२ गोदान पष्ठ ३५१।
३ कमभूमि पष्ठ १४२।

प्रचलित थे परन्तु इनको विशेष आदर नही मिल पाता था। 'गोदान' म भोला पुर्नविवाह के लिए लालायित है। झुनिया भी अपनी सुरक्षा और जीवन के स्थायित्व के लिए गोबर से सम्बन्ध स्थापित करती है। रूपा का विवाह बूढे रामसेवक से होता है। इन विवाहा के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य रहता था।

विवाह किसी रीति से और कसे ही पुरुष से हो, नारी के लिए वह एक समझौता है। इसके लिए वह हमेशा आगे बढती है क्योंकि जीवन म वह स्थिरता चाहती है। हिन्दू-नारी की पति के प्रति अपनी आस्था है मान्यता है। जिसके साथ उसका गठबन्धन हो गया उनका साथ निभाना उसका कर्तव्य है। पति चाहे कसा हो, उसकी नारी भावना म कोई अन्तर नही पडता। पति चाहे बूढा हो या जवान, इससे उसका क्या बनता बिगडता है। उसे जो चाहे वही जवान है और जो न चाहे वही बूढा। उसके सतीत्व की भावना पति के प्रति रग रूप या आयु पर आश्रित नही थी। उसकी नीव इसस बहुत गहरी है—श्वेत परम्पराओ की तह मे जो केवल किसी भूकम्प से ही हिल सकती है।[1]

गोदान की रूपा का ववाहिक जीवन पूर्ण सुखी है। रामसेवक बूढा है इसस रूपा प्रभावित नही है—"रूपा अपनी ससुराल म खुश थी। जिस दशा म उसका बालपन बीता था उसम पसा सबस कीमती चीज थी। मन मे कितनी साधें थी, जो मन म ही घुट घुटकर रह गयी थीं। वह अब उन्हे पूरा कर रही थी। अनाज से भरे हुए बखार और गाव से सिवान तक फल हुए खेत और द्वार पर ढोरो की कतारें और किसी प्रकार की अपूर्णता उसके अन्दर आने ही न देती थी।[2] रूपा अपने अभावो को रामसेवक के वभव म पूरा होते देखती है। पति इसीलिए वृद्ध होकर भी उसके मन म अन्यथा भाव पदा नही कर पाता।

पति-पत्नी के सहज सम्बन्धो में परिस्थितिया कडवाहट घोल देती हैं। गोदान म होरी क्रोध मे धनिया को सबके सामने पीटता है। धनिया भी मान करती है पर यह क्रोध और मान दाम्पत्य-जीवन की स्थायी भावनाए नहीं हैं। पत्नी पति के प्रति कभी अनुदार नही हो सकती। होरी इस घटना के बाद बीमार पडता है। धनिया का सारा मान समाप्त हो जाता है। वह सोचती है—'पति जब मर रहा है तो उसस कसा बर! ऐसी दशा म तो बरियो से भी बर नही रहता, वह तो अपना पति है। लाख बुरा हो पर उसी के साथ जीवन के पच्चीस साल काटे हैं सुख किया है तो उसी के साथ दुःख किया है तो उसी के साथ, अब तो

१ गोदान पृष्ठ ५३३।
२ वही पृष्ठ ३६ ।

चाहे वह अच्छा है या बुरा अपना है।[1] धनिया होरी से समय-समय पर उलझती रहती है। होरी की भीरुता उसे सहन नही होती। जीवन म बहुत-स ऐसे अवसर आते हैं जब वह अपने तीख वचना से होरी को मर्माहत कर देती है।[2]

धनिया हमेशा पति का विरोध करती है क्योकि जीन के लिए यह आवश्यक है कि अ याय और कायरता का विरोध किया जाए। इसके साथ ही वह होरी के कृशकाय शरीर को अपने सम्पूण सतीत्व स अभयदान देती है। जीवन की कडवाहट म दाम्पत्य जीवन का रस भी बहता रहता है।[3] जीवन के सघर्षो म वह घर और घर क बाहर खेता म अपना पूरा सहयोग दती है। होरी जीवन क प्रत्येक धरातल पर बुरी तरह पराजित है। अपने अ तिम क्षणा म वह धनिया स विदा मागता है। उसकी मृत्यु के समय 'गोदान' की बात उठती है और धनिया सुतली बेचकर जो दस आन पस पाती है वही पति क हाथ पर रखकर गोदान कर देती है। पति का वह यहा साथ नही दे पाती क्योकि यहा साथ दना उसक वश की बात नहीं है। पति के प्रति वह पूण समर्पिता है पर अन्त म वह पछाड खाकर एसी गिरती है कि जसे वह पति के बिना निशेष हो चुकी है।

देहात की नारी शिक्षिता नही है पर उसक विचारो म गहराई है। पति क प्रति उसकी निष्ठा सतीत्व की मर्यादा और नारीत्व की गरिमा युग युग की नारी की विभूति है। वह पति क प्रति एकनिष्ठ है। अपने सतीत्व की ओट म वह जीवन की प्रत्यक विपत्ति हसकर झेलती है। सुहाग ही वह तृण होता है जिसको पकडकर वह जीवन-सागर पार कर लेना चाहती है। वह नारीत्व के सम्पूण तप और व्रत स अपने पति की मगल-कामना ही नही करती अपितु जीवन सघष के लिए प्रेरणा भी देती है।[4]

पति पर उसका पूण अधिकार है जिसको वह पर-स्त्री के साथ बाट नही

---

१ गोदान पृष्ठ १२१।

२ 'पापी ने मारते-मारते मरा भुरकस निकाल दिया फिर भी इसका जी नहा भरा। मुझ मारकर समझता है मैं बडा वीर हू। भाइयों क सामन भीगी बिल्ली बन जाता है, पापी कहीं का हत्यारा। —गोदान पृष्ठ ११३।

'हमें नहीं रहना है बिरादरी म। बिरादरी म रहकर हमारी मुकत न हो जाएगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं तब भी अपने पसीने की कमाई खायेंग। गोदान पृष्ठ १३१।

३ गोदान, पृष्ठ १०।

४ वही पृष्ठ ५।

सकती। पति चाहे पर स्त्री की ओर स्वय आकर्षित हो पर वह इसमे जितना दोष पति का मानती है उससे अधिक उस स्त्री का जो ऐसे व्यक्ति से प्रतिशोध नही लेती। 'गोदान' मे सोना अपने पति मथुरा और सिलिया के व्यवहार के प्रति शकालु होकर कहती है—"क्या तूने उसकी नाक दातो से नही काट ली? क्या नही उसका गला दबा दिया? तब मैं तेरे चरणो पर सिर झुकाती। अब तो तुम मेरी आखो मे हरजाई हो, निरी बेसवा।"[1] वह अपने और मथुरा के बीच किसी भी स्त्री को स्वीकार नही कर सकती। मथुरा सिलिया के प्रति आकर्षित है पर यह सिलिया का ही दोष है जो उसको बढावा देती है। सिलिया उसकी दृष्टि मे बहुत नीचे गिर जाती है। वह उससे स्पष्ट कहती है— अगर यही करना था तो मातादीन का नाम क्यो कलकित कर रही है? क्यो किसी को लेकर बैठ नही जाती—जब अकेले नही रहा जाता तो किसी से सगाई क्या नही कर लेती? क्यो नदी तालाब मे डूब नही मरती? क्यो दूसरे के जीवन मे विष घोलती है? आज मैं तुमसे कह देती हू कि अगर इस तरह की बात फिर हुई और मुझे पता लगा तो हम तीनो मे से एक भी जीता न रहेगा।[2]

सोना ही नही झुनिया जो वधव्य का अभिशाप ढोती है और गोबर को देखकर विचलित हो जाती है वह भी नारी की एकनिष्ठता की बात करती है। वह ताक झाक करने वाली नारी और पुरुष दोनो की ही नही निन्दा करती है। वह गोबर को धीरे धीरे अपनी ओर आकर्षित करती है पर वह रसिकता और मन बहलाने का ओछापन भी पहचानती है। वह ऐसे वसे को मन नही देती। वह एक ऐसे व्यक्ति को चाहती है जिसे अपना कह सके। सुख दुख मे साथ निभाना ही प्रेम का आत्मा है। यौवन का उद्दाम प्रवाह उसे विवाह से पूर्व मा की स्थिति मे खडा कर देता है परन्तु गोबर के भाग जाने पर वह होरी धनिया का आश्रय प्राप्त कर अपने जीवन की साधना प्रारम्भ कर देती है। गोबर लौटकर आता है तो वह मान करती है। वह धीरे धीरे परिवार से दूर हो गोबर के साथ शहर चली जाती है। गोबर शहरी वातावरण मे उसके साथ निर्दयता का व्यवहार करता है। मिल मे हडताल होती है और वह आहत होता है। झुनिया मौन रहकर सहती है। वह रसिकता मे बहना ही नही जानती उसमे पत्नी की गरिमा और त्याग भी है। नारी का प्रेम महान है। वह त्याग का ही दूसरा

---

१ गोदान पृष्ठ ४१०।
२ वही पृष्ठ ४५३।

रूप है।[1]

नारी की प्रेम करने की प्रवृत्ति सहज स्वाभाविक है वह नगर और गाव की सीमाओ म नही बधती। झुनिया प्रम करती है साथ आश्रय भी पाती है। यहा विधवा समस्या के रूप मे झुनिया को लिया गया है। विधवा आश्रय की खोज म भटकती है। प्रेमचद क्योकि सुधारवादी थे इसलिए उन्होने झुनिया का पतन ही नही दिखाया, अपितु विधवा विवाह को भी मान्यता दी है। साथ ही इस प्रसग के माध्यम से वह प्रेम और भोग त्याग और वासना म अन्तर दिखाना चाहते थे। 'गोदान' म सिलिया और मातादीन की प्रेम-कथा भी नियोजित है। सिलिया गाव की अल्हड युवती ही नही प्रेम म अधिकार भावना और आत्माभिमान भी रखती है। वस्तुत यहा पर भी सिलिया का प्रेम अछूत-समस्या अधिक है। धम और ऊँच-नीच की दीवारें व्यक्ति व्यक्ति को अलग-अलग बाट नहा सकती। उन्होने इस कथा के माध्यम से धम क ढाग पर भी व्यग्य किया है। उद्देश्य इन प्रेम कथाओ का कुछ भी हो किन्तु इनम नारी के गरिमामय रूप का ही अन्त म चित्रण हुआ है। पुरुष की पिपासा और स्वय उसकी लालसा उस कुछ दिनो क लिए कलकित चाह कर दे पर अन्त म उसे सुहाग और ममता का आधार मिल ही जाता है।[2]

गावो म जहा सतीत्व और नारीत्व की गरिमा से युक्त नारिया मिलती हैं वहा नोहरी और दुलारी जसी स्त्रिया हैं। नोहरी अपने पति भोला की ओट म नोखेराम की ओर बढती है और दुलारी वधव्य क अभिशाप म भी लाला परमेश्वरी और होरी की छेडखानी को स्वीकार कर ही लेती है। एसी एक-दो नारिया जो भूल भटक मिलती हैं, ग्रामीण नारी का प्रतिनिधित्व नही करती।

होरी और धनिया ग्रामीण समाज के उस परिवार का प्रतिनिधित्व करत हैं, जो सयुक्त परिवार के टूटन पर बना है। होरी न अपने भाइयो को प्यार से पाला है। धनिया न भी उनके लिए सहा है पर एक दिन पारस्परिक ईर्ष्या इतनी बढ जाती है कि होरी का सयुक्त-परिवार टूट जाता है। एक दिन उसका भाई हीरा उसकी गाय को माहुर भी दे देता है। होरी जब गाय लाता है तो वह भाइयो के साथ मिलकर इस सुख को भोगना चाहता है। वह हीरा को बुलाने जाता है पर बीच म से ही लौट आता है। हीरा सोचता है—भाइयो का पसा मारकर ही

१ गोदान पृष्ठ ६६ २६६ ४११ ४२५।
२ वही (सिलिया की कथा)
प्रमाश्रम पृष्ठ २४८।

गाय खरीदी गई है। इसी जलन स वह गाय को माहुर भी दे देता ह—होरी स्पष्ट देखता है। वह धनिया से कह भी देता है कि हीरा ने गाय को जहर दिया है। धनिया पहले विश्वास नही करती। वह पहले भी होरी का विरोध करती है। होरी जब हीरा के व्यग्य-बाण सुन गाय लौटाने जाता है तब ही वह स्पष्ट कह देती है मैं अभी जाकर पूछती हू न, कि तुम्हारे बाप कितने रुपए छोडकर मरे थे। डाढीजारा क पीछे हम बरबाद हो गए, सारी जिन्दगी मिट्टी म मिला दी पाल पोसकर सडा किया और अब हम बेईमान हैं। मैं कह देती हू अगर गाय घर के बाहर निकली तो अनथ हो जाएगा। रख लिए हमने रुपए दवा लिए खेत। डके की चोट कहती हू मैंन हण्डे भर अशर्फिया छिपा ली। हीरा और शोभा और ससार को जो करना हो कर ले। क्यो न रुपए रख ल ? दो दो का ब्याह नही किया, गौना नही किया ?[1] धनिया और होरी की सतकता भी बेकार जाती है और गाय को विष दे दिया जाता है। हीरा भाग जाता ह। पुलिस आती है। हीरा के घर की तलाशी लने की थानेदार धमकी देता है। धनिया फुकार उठती है 'यह हत्यारा भाइ कहने जाग है। यही भाई का काम है। वह बरी है पक्का बरी और बरी को मारन म पाप नही, छोडने म पाप है।'[2] वह रणचडी का रूप धारण कर लती है। वह होरी स भी कह देती है 'गवाही दिलाऊगी तुमसे बेटे के सिर पर हाथ रखकर।' पर होरी गोबर की कसम खाकर अपनी कही बात को ही नट जाता है। धनिया होरी को धिक्कार उठती है जब भाई के पक्ष म भूठ बोलता है। अगर मरे बेटे का बाल भी बाका हुआ तो घर म आग लगा दूगी। सारी गहस्थी म आग लगा दूगी।[3] होरी थानदार को रिश्वत देकर बात दबा दना चाहता है पर धनिया सब जान जाती है। होरी हीरा क परिवार को भी अपना परिवार समभ उसकी मर्यादा भी अपनी मर्यादा मानता है। धनिया कुछ नही सहगी। वह साफ-साफ चीखकर कहती है जिसक घर म चूहे लोटें, वह भी इज्जत वाला है। दरोगा तलासी ही तो लेगा। ल ले जहा चाह तलासी। एक तो सौ रुपय की गाय गई उस पर यह पलयन। वाह री तेरी इज्जत![4] पर होरी अपन भाइयो क स्नह स बधा है। हीरा क बाद पुनिया क खत वही सभालता है। धनिया भी चुप रहती है। पुनिया क दुख स कही वह भी द्रवित है। होरी इस

---

१ गोदान पृष्ठ ४७।
२ वही पृष्ठ ११२।
३ वही पष्ठ ११३।
४ वही पृष्ठ ११३।

विपत्ति से ऐसा घिरता है कि उबरता नही। फिर भी जब हीरा लौटकर उसके सामने आकर खड़ा हो जाता है तो वह जीवन के सब दुख भूल जाता है। उसका ममत्व जागता है और वह अपने आप से पूछता है वह पराजित कहा हुआ है ? ठीक ही है—ममत्व पराजित हुआ भी कहा है ?

होरी भाइयो के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाता है। धनिया भी कभी किसी तरह पीछे नही है। घटनाए परिवारो म दीवारें खडी कर देती है पर आतरिक स्नेह सब कुछ भूलकर एक दूसरे को गल लगा लता है। होरी धनिया अपन परिवार के प्रति भी अपन उत्तरदायित्व को निभाते हैं। धनिया को गोबर जसे पुत्र पर नाज है और होरी उसको देखकर यह दुख मनाता है कि वह उसको ढग से खिला पिला नही सका नही तो आज गोबर कितना हृष्ट पुष्ट होता। वह गोबर की झूठी कसम भले ही खा ले पर उस गोबर से धनिया से कम प्यार नही है। गोबर का दिया 'प्यार' झुनिया लेकर उसके द्वार पर आती है। धनिया अपना क्रोध भूल जाती है। होरी और धनिया को अपने दिन याद आते है और वे अपनी बहू को आश्रय देकर बिरादरी के दड को भी स्वीकार करते हैं। जिसका हाथ उनक बटे ने पकडा है उसका साथ देना उनका कर्त य है। वह कोई पाप नहा करती—पुनवधू को आश्रय देकर वह कर्तव्य ही निभाती है। धनिया का ममत्व झुनिया को मिलता है। पौत्र के जन्म पर वह अकली ही सोहर गाकर बिरादरी की उपेक्षा करती है। गोबर उसकी दृष्टि म कायर है जो घर से भाग गया। गोबर लौटकर आता है। पुत्र के लिए वह आटा घी उधार लाकर पूरिया तलती है। बेटे के आन की खुशी म वह मिठाई भी बाटती है। वह प्रसन्न है गोबर सही सलामत है। गोबर झुनिया को शहर ले जाना चाहता है परन्तु धनिया नही चाहती। वह यही सोचती है—यह आग झुनिया ने लगायी है। वही बैठे-बठे मन्तर पढा रही है। धनिया अपने मन की बात कह दती है और फिर "संग्राम छिड गया। ताने महने गाली गलौज धुक्का फजीहत, कोई बात न बची। गोबर भी बीच बीच म डक मारता जाता।"[1] गोबर झुनिया के साथ शहर चला जाता है। जाते समय वह मा का अभिवादन करना भी नही चाहता। बहन की शादी पर वह गाव लौटता है पर परिवार के बोझ म वह हिस्सा बटाना नही चाहता। होरी स वह स्पष्ट कह दता है कि यह नही हो सकता कि वह कमा-कमाकर उसका घर भरता रहे।

होरी के जीवन पर जो भी विपत्तियाँ आयी उनक मूल म उसका पुत्र गोबर

१ गोदान पृष्ठ २३ ।

ही उत्तरगामी है। वह धनिया के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है और बाद में उसे छोड़कर भाग जाता है। दण्ड में होरी का सर्वस्व स्वाहा हो जाता है। साथ आने पर ऐसा सिलसिला शुरू हो जाता है जिससे होरी मुक्त नहीं हो पाता। जीवन के अन्तिम क्षणों में भी वह गोबर और उसके पुत्र मंगल के लिए गाय के वास्ते ही खपता रहता है।

होरी ने अपनी भावना और पुत्र के लिए किया क्योंकि उसका उत्तरदायित्व है—स्वाभाविक है परन्तु उसके प्रति निश्चित ही किसी ने कर्तव्य नहीं निभाया। जीवन संघर्ष में वह अकेला खड़ा रह गया। गोबर भी उसे उस स्थिति में छोड़ गया जहाँ आत्म निर्वाह की समस्या उसके सामने व्याघ्र रूप में खड़ी थी।

धनिया—होरी को पुत्र ही नहीं पुत्रियाँ भी प्यारी हैं। ग्रामीण समाज में कोई कन्या अविवाहित नहीं रह सकती। लड़की बड़ी हुई नहीं कि उसके विवाह की चिन्ता सताने लगती।[1] विवाह में दहेज लेन की प्रथा था और इस दहेज के कारण वे लड़कियाँ भी ब्याह दी जातीं जिनसे परिवार में कुछ हेटी हो जाती। गरीबों में 'कुल कन्या' भी बेच दी जाती पर इससे समाज में हँसी ही होती।[2] परिस्थितियाँ ऐसी भी आ जातीं जब रुपया लेकर कन्या का विवाह किया जाता परन्तु यह वह अपमानजनक स्थिति होती जब व्यक्ति अपने आप ही आसमान के गर्त में गिरा महसूस करता है।

होरी और धनिया जीवन-पर्यन्त संघर्ष करते हैं। खेती जैसे आय के दैनिक साधनों से उन्हें जीवन निर्वाह के लिए भी पर्याप्त पैसा नहीं मिलता। ऋण के बोझ में परिवार का खर्चा और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना भी उनके वश की बात नहीं। महाजनों की घुड़कियाँ धर्म की अन्ध आस्थाएँ और उत्तरदायित्वों के प्रति सजगता उसे जकड़े रखती है। वह जीवन में खेलता जाता है। खेलना उसकी विवशता है। यह विवशता ही उसका जीवन है। होरी धनिया उस ग्रामीण जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं जो धर्म समाज की जंजीरों में कसी शोषण के आघातों को सह सहकर टूट रही है।

गाँव में रहन सहन और खान पान

प्रेमचन्द युगीन गाँवों में आर्थिक दुरवस्था के कारण रहन-सहन का स्तर बहुत

---

१ गोदान पृष्ठ २५७।
२ वही पृष्ठ १४५ ३८६, ३८०।

निम्न था।[1] ये गाव क्या थे पुरवा थे। गाव म दस-बारह घर होते जिनमे आधे खपरल के होते और शेष फूस के। कही स्वच्छता का नाम नहीं होता। घरो के आगे कूडे और गोबर के ढेर सडते रहते जिसकी दुग ध वायु को विषाक्त बनाये रखती। मकानो की भाति रास्ते भी बेसिलसिलेवार बेढगे और टूटे फूट ही होते। मोरियो के गन्दे पानी के निकास के समुचित प्रब ध न होने के कारण रास्ता कीचड से पूरा भर जाता।[2] ऐसे ऊबड-खाबड गाव म भूले भटके किसी रमणीक गाव के दशन भी हो जाते जहा झोपडो की सख्या बीस पचीस तक पहुच चुकी होती और झोपडे भी इटा से चुने होते। छत पर छप्पर होता और द्वार पर बनकर की टट्टिया।[3]

इन टूटे फूट खपरल के झोपडो म जीवन के लिए प्रयत्नशील प्राणी जसे-तसे जीवन की घडिया ही पूरी करते। उनके घरा म था ही क्या? गहस्थी की विभूतिया के रूप म दो तीन पीतल और लोह के बतन और दो-तीन मिट्टी के घडे। सोने के लिए घर के कोने मे पडी पुआल। मानव लालसाओ का सूक्ष्म सस्करण इन झोपडो म सहज ही मिल जाता है। कही-कही 'प्रेमाश्रम' के लखनपुर गाव म वह दृश्य भी देखने को मिल जाता है जो मायाशकर देखता है, 'ऐसा विरला ही कोई घर था जिसम धातु के बतन दिखाई देते हो। कितने घरा म लोह के तवे तक न थे। मिट्टी के बतनो को छोडकर झोपडे म और कुछ दिखाई न देता था। न ओढना, न बिछौना, यहा तक कि बहुत स घरा म खाटें तक न थी। और वे घर ही क्या थे! एक एक, दो दो छोटी कोठरिया थी—एक मनुष्य के लिए एक पशुओ के लिए। उसी एक कोठरी म खाना सोना-बठना सब कुछ होता था। जो किसान बहुत सम्पन्न समझे जाते थे उनके बदन पर साबित कपडे न थे। उ ह

---

१ टूटे फूटे फूस के झोपडे मिट्टी की दीवारें घरा के सामने कूड करकट के बड-बड ढर कीचड स लिपटी हुई भसे दुबल गाए। मनुष्यो को देखो तो उनकी शोचनीय दशा। हड्डियो निकली हुई हैं। किसी क शरीर पर एक बफटा वस्त्र नही और कसे भाग्यहीन कि रात दिन पसीना बहाने पर भी कभी भरपेट रोटिया नहीं मिलती। —वरदान पष्ठ ६८।

२ गोदान पष्ठ २ ४ ५२६।
उपदेश (मानसरोवर आठवा भाग) पष्ठ २८६।

३ कमभूमि पृष्ठ १४३।

४ गोदान पष्ठ ५१६।
रगभूमि पृष्ठ २३।

भी एक जून चबेना पर ही काटना पडता था। कितने ही ऐसे गाव थे जहा दूध तक न मयस्सर होता था।'[1] 'गोदान' म होरी भी दूध घी के 'अजन' के लिए तरसता रहता है।

गाँव म दूध घी तो दूर रहा भरपट भोजन भी कठिनाई स मिलता। भर पेट न सही, आधा पेट तो मिलना ही चाहिए और दोनो जून न मिले तो क्या एक जून तो मिल ही जाय। गोदान म रूपा पेट की आग अमिया खाकर मारती है। चाची के घर जाकर भरपेट भोजन कर तृप्त भी हो जाती है पर 'होरी' के घर की रूखी गाडी तब ही चलती है जब पुनिया अनाज लाकर देती है। इन लोगो की रसना के स्वाद बहुत सीमित रहते। जौ की रोटिया और अरहर की दाल के साथ बथुए की भाजी—बस ये ही उनके षटरस व्यजन थे। अधिकतर दाल भाजी नदारत ही रहती। गेहू के आटे का उपयोग तब होता जब घर म कोई पाहुना आ जाये। यह आटा भी दुलारी सहुआइन से उधार लिया जाता।[2]

देहातो म पहनावा भी सीधा सादा होता। ससुराल जाते समय पाचो कपडो की जरूरत पडती परन्तु हर रोज तो धोती-बनियान से ही आदमी काम चला लेता। गम कपडा भूल भटके बन जाए तो जिन्दगी भर चलाना पडता। होरी गोदान म पुरानी मिर्जई को ही सभाल रखता है। उसका कम्बल भी पुराना हो गया। बचपन म अपने पिता के साथ इसम सोया फिर अपने बेटे गोबर के साथ इसी कम्बल म सोया और अब बुढापे म वह इसी मे सिमटकर जाडा मिटाना चाहता है। बुढाप म आज वही बूढा कम्बल साथी है पर अब वह भोजन को चबाने वाला दात नही दुखने वाला दात है।[3] 'पूस की रात' का हल्कू तो मजदूरी म से पसा काट काटकर कम्बल के लिए तीन रुपए जमा करता है पर वे भी जमीदार के कारिन्दे को देने पड जाते है।

पुरुषो को तन ढाकने की इतनी चिन्ता नही जितनी स्त्रियो को है। तन पूरा ढक जाए इसके लिए तो धोती चाहिए ही। बारीक साडिया बडे घरो म पहनी जाती है, गोबर चाहे धनिया, सोना और रूपा के लिए बारीक साडिया शौक म ले आए। स्त्रियो म शृगार की भावना स्वाभाविक है। काजल, मिस्सी और सिंदूर का प्रयोग तो सब विवाहिताए कर ही लेती हैं। आभूषणो के प्रति भी उनके मन

---

१ प्रमाश्रम पृष्ठ ४३३।
२ गोदान पृष्ठ ५२५ २२ २३।
प्रमाश्रम पृष्ठ १० ६८।
३ गोदान पृष्ठ ४ १२२।

सहज आकर्षण है। यह बात अलग है कि आभूषण सोने के क्या, चांदी के भी न लें। आभूषणों में गले में हसली और टूसेल कानों में करनफूल और सोने की लिया, हाथों में चादी के चूडे और कगन पहनने की प्रथा थी। विवाह के वसर पर धोती धोती पहनी जाती। बच्चे यों ही नगे बदन लगोटिया हनकर ही घूम लेते।[1]

देहातों का जीवन स्तर बहुत ही निम्न था। जहा जीवन की मूलभूत वश्यकताए भी पूरी न हो सकें वहा बाह्य साजसज्जा का प्रश्न ही नही ठता। देहातों में साधारण परिवार ऐसे ही दीन-हीन, विपन्नता और दन्य की ति थे परन्तु पटवारी मुखिया और जमीदार आदि सम्पन्न होते थे। घर म र्सी बिछाने को दरी चारपाई और तख्त भी इनके यहा मिल जाते। अन्य ोटा मोटी वस्तुए—मजीरा, ढोलक और रामायण आदि जिनकी यदा-कदा गाव ा जरूरत पडती रहती, इनके यहा मिल जाती। कुछ किसान जो अच्छा खाते- ीते थे उनके घरों म जीवन की मूलभूत आवश्यकताए सहज ही पूर्ण हो जाती ा परन्तु ग्राम्य जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाला गोदान' का होरी है जो ीवन की छोटी-से छोटी अभिलाषाए अपूर्ण लिए ससार से विदा हो जाता है।

ग्रामीण समाज मे स्वास्थ्य-रक्षा की व्यवस्था

भारत के गाव प्रगति के प्रत्येक क्षेत्र म पिछडे हुए थे। गावों का खुला वातावरण लहलहाते खेतों की ताजी हवा स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होती है परन्तु गाव म रोग कृशकाय ही मिलते। स्वस्थ रहने के लिए ताजी खुली हवा ही नही, पौष्टिक सतुलित आहार की भी आवश्यकता होती है जो गाव म उपलब्ध नही था। आर्थिक विपन्नता शारीरिक दुर्बलता का प्रमुख कारण थी। पेट की आग' यौवन म ही व्यक्ति को बूढा बना देती।[2]

स्वास्थ्य रक्षा के लिए सफाई की भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए जिसका अभाव था। टूटे सडे रास्ते जिनम से पानी निकलने की भी गुजाइश न रहती दलदल बना डालते और मच्छरों का प्रकोप बढ जाता। गावों म छूत के रोग बहुत जल्दी फैलते। मौसमी-बुखार हैजा प्लेग और चेचक ऐसे ही सक्रामक रोग थे जो परिवार-के-परिवार अपनी चपेट म ले लेते। गावों म रोग थे, रोग का

---

१ गोदान पृष्ठ २२ २ ३१ ४८०।

२ समरयात्रा (मानसरोवर, सातवा भाग) पृष्ठ ७१।
गोदान—धनिया का जीवन—वह ३६ वर्ष की आयु मे ही बूढा लगने लगता है।

सारा परिवार उनके लिए चिन्तित रहता। उनके लिए पहर रात से उठकर सानी लगानी पड़ती। उनके लिए दाना और सान की भी चिन्ता रहती।[1]

बैल किसान के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनके बिना खेत नहीं जुत पाते। अगर खेती के मौसम में बैल मर जाएँ तो किसान पर विपत्ति टूट पड़ती। खेत उनके बिना अनाथ अबला के घर की भाँति सूने पड़े रहते। कातिक के महीने में किसान के बैल मर जाएँ तो उसके दोनों हाथ ही कट जाते।[2]

किसान अपने बैलों को प्राणों से भी अधिक प्यार करता फिर भी उन पर अत्याचार करता। वे दिन भर जुते रहते। पर यह अधिक निर्दयता नहीं होती कि वे अपने बूढ़े बैलों का निरादर करें। भगवान से विनती करता। बूढ़े पर मरियल बैलों की गर्दन पर जुआ रखते हुए उसका हृदय कचोटता है परन्तु वह स्वयं विवश है।[3] जब कभी परिस्थितियाँ उन्हें उनसे अलग करतीं तो उनके प्राणों पर बन आती। उनकी आँखों से अश्रुप्रवाह होने लगता। पशु भी स्वामी के प्रति पूर्ण वफादार हैं। वह अपने घर के स्नेह में बँधे रहते हैं। दूसरे द्वार पर बँधना भी उन्हें स्वीकार नहीं लगता।

गऊ पालने की लालसा प्रत्येक ग्रामीण के मन में रहती। गऊ उनके लिए देवी है। परन्तु गऊ के दर्शन तो दूर की बात उसका गोबर भी उनको मिल नहीं पाता।[4] भेड़-बकरियाँ भी उनकी सम्पत्ति है परन्तु उनकी अच्छी तरह देखभाल नहीं हो पाती। उनके खिलाने पिलाने की चिन्ता ही बनी रहती। पशुओं के प्रति ग्रामीणों के मन में एक सहज अनुराग है। पशु उनकी जीविका का साधन ही नहीं उनकी सम्पत्ति का एक अंश भी होते हैं। ये पशु भी किसानों की पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष के शिकार हो जाते हैं। कोई किसी की बछिया को माहुर दे देता।[5] तो कोई किसी की भेड़ बकरी की टाँग ही तोड़ देता। पशु ही गाँव की विभूति है द्वार की शोभा है जिसको सुरक्षित रखने के लिए वह सहज प्रयत्नशील रहता है।

---

१ बलिदान (मानसरोवर आठवाँ भाग) पृष्ठ ७२।
२ गोदान पृष्ठ २६३ ६४।
३ वही पृष्ठ ४४५।
४ बलिदान (मानसरोवर आठवाँ भाग) पृष्ठ ७२।
   दो बैलों की कथा—निष्कर्ष।
५ गोदान पृष्ठ ६ ८८ ९१।
६ वही होरी की गाय का प्रसंग।

५

ग्राम्य जीवन राजनीतिक पक्ष

प्रेमचन्द साहित्य, समाज और राजनीति म घनिष्ठ सम्बन्ध मानकर चले है। जिस भाषा का साहित्य अच्छा होगा, उसका समाज भी अच्छा होगा। समाज अच्छा होन पर मजबूरन राजनीति भी अच्छी होगी। य तीना साथ-साथ चलन वाली चीजें हैं।[1] इसी कारण युग-परिस्थितिया से प्रभावित होते हुए उन्होने जिस साहित्य का निर्माण किया उसम युग चालता प्रतीत होता है। प्रेमचद ने ग्रामीण जीवन का चित्रण करते हुए देश की तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितिया को ध्यान म रखा है। ग्राम्य जीवन के विभिन्न पक्षों पर विचार करते हुए उन्होने उसके आर्थिक पक्ष पर ही अधिक लिखा। वह युग आर्थिक मदी का था जिसका सीधा प्रभाव भारत की उस जनता पर पडा था जो देहाता म बसती थी। गावो म आर्थिक विपन्नता एक जटिल समस्या का रूप धारण कर चुकी थी क्योकि देश की राजनीति और अर्थ-व्यवस्था परस्पर मिलकर एक हो गई थी। आर्थिक समस्या के लिए देश के राजनीतिक नेताओ न कदम उठाया और अपन अपने ढग स इस समस्या को सुलझाना चाहा।

देश विदेशी सत्ता के अधीन तो था ही साथ अपने ही देश म एक ऐसी सस्था भी थी जो जनता के शोषण म लगी हुई थी। इसका प्रभुत्व विदेशी सत्ता से भी अधिक व्यापक था। सामन्तवाद का लोप हो चुका था और नवागत सभ्यता पूँजीवाद थी जिसके फलते ही देश म वर्ग-सघर्ष की भावना बल पकडने लगी। यह वर्ग-सघर्ष तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो की पृष्ठभूमि पर उभरा। विदेशी सत्ता से मुक्ति का प्रयास चल रहा था, साथ ही इसका भी प्रयत्न किया जा रहा था कि देश स्वदेशी शोषण की चक्की से पिसने से बच सके। प्रेमचन्द तत्कालीन

---

१ प्रेमचद घर म पृष्ठ ७१।

राजनीतिक परिस्थितियो मे प्रभावित होकर साहित्य रचना कर रह थे। भारत म होने वाली घटनाए तो उन पर प्रभाव डाल ही रही थी, विदेशो म घटी बातें भी उनको बुरी तरह झकझोर रही थी।

स्वत त्रता प्राप्ति तत्कालीन परिस्थितियो म देश की प्रमुख माग थी। नगरा और देहातो म स्वतन्त्रता का अपना अलग अलग रूप था। नगरा म स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जो आन्दोलन चल रहे थे उनका मूल उद्दश्य विदेशी शासन स मुक्ति प्राप्त करना था। यहा की अथ व्यवस्था स्वतत्र कही जा सकती थी। दहाता की स्थिति नगरो क ठीक विपरीत कही जा सकती थी। यहा दोहरी शासन व्यवस्था थी। एक शासन विदेशी सरकार का था और दूसरा उन शोषको का था जो सरकार की सत्ता बनाए रखन म उसके प्रबल समथक और हितैषी थे। इन शोषको मे जमीदार, कारि दे, सरकारी अफसर और महाजन आते थे। दहाता म विदशी सरकार के प्रभुत्व स मुक्त होन क साथ साथ इन शोषको की बढती फलती शक्ति से भी बचना था। स्वतन्त्रता प्राप्ति का प्रमुख साधन स्वराज्य स्वीकार किया गया। यह गाधीजी और उनके सहयोगियो की सबसे प्रबल पुकार थी।

'स्वराज्य हमारा ज मसिद्ध अधिकार है — यह नारा नगरा म ही गूज रहा था क्याकि गाधीजी न अपन आन्दोलना को नगरा तक ही सीमित रखा था जब कि स्वतन्त्रता प्राप्ति म सहयोग क लिए दहाता म बसनेवाली अस्सी प्रतिशत जनता म भी चेतना फलना आवश्यक था। प्रमचन्द न भी स्वराज्य के महत्त्व को समझा और स्पष्ट लिखा— भारत क उद्धार का कोई उपाय है तो वह स्वराज्य है जिसका आशय है—मन और वचन की पूण स्वाधीनता। क्रमागत उन्नति (Evolution) पर स यदि हमारा एतबार अब तक रहा उठा था तो अब उठ गया। हमारा रोग असाध्य हो गया है। यह अब चूर्णों और अवलेहो स अच्छा नहीं हो सकता। उसस निवृत्त होन क लिए हम कायाकल्प की आवश्यकता है। अब राज्यप्र हम स्वाधीन नहीं बनात बल्कि हमारी पराधीनता को और भी पुष्ट कर देते हैं।[१] प्रमचन्द विदेशी सत्ता स ही नहीं भारतीय शोषको की बढ़ती प्रभुत्व शक्ति म भी मुक्ति चाहते थ। उनकी दृष्टि म विदेशी शासन स स्वतन्त्रता प्राप्ति इतना अधिक महत्त्व नहीं रखता था जितनी अपन शासको स। इसी कारण उन्होन कहा था 'हमारा स्वराज्य कवल विदेशी जुए स अपन को मुक्त करना नहीं है बल्कि सामाजिक जुए स भी इस पाखडी जुए स भी जो विदेशी शासना स कहीं

---

१ कर्म्म विशेष (मानसरोवर भाग आठ) पृष्ठ २१६ ।

अधिक घातक है ।"[1]

स्वराज्य की माग शहरी जनता ही की नही,ग्रामीण जनता की भी माग बनगई थी। जागरण'के सम्पादकीय म उ होने लिखा था—' अधिकाश भारतीय स्वराज्य इसलिए नही चाहते कि अपने देश के शासन म उनकी आवाज़ ही पहले सुनी जाय पर स्वराज्य का अथ उनके लिए आर्थिक स्वराज्य होता है । अपने प्राकृतिक साधनो पर अधिकार,अपनी प्राकृतिक उपजा पर अपना नियत्रण,अपनी वस्तुओ का स्वच्छन्द उपयोग और अपनी पदावार पर अपनी इच्छानुसार मूल्य लेने का स्वत्व— यही उनकी सबसे बडी, सबसे पहली, सबसे उत्कट माग है । यह माग स्वराज्य का अग नही स्वराज्य इस माग का अग है ।' आगे चलकर उ होने लिखा है— स्वराज्य का अथ केवल आर्थिक स्वराज्य है । आज भारत का उद्योग धन्धा पनप उठे, आज भारत के घर घर म खाने के लिए दो मुट्ठी अन्न और पहनने के लिए दो गज कपडा हो जाए अथवा परिश्रम के स्थान पर थोडा विश्राम हो, जीवनम कुछ कविता कुछ स्फूर्ति, कुछ सुख मालूम पडेतो कौन कल इस बात की चिन्ता करेगा कि भारत की पालमट म अंग्रेज हैं या हिन्दुस्तानी । जो भी शासक हो शासन का फल चाहिए। '[2] प्रेमचद के ये विचार देहाता मे फली स्वराज्य भावना की प्रतिध्वनि ही थे । यहा स्वराज्य आर्थिक स्वतत्रता की पुकार बन गया था । गाधी जी ने देहातों मे स्वराज्य की भावना के प्रचार का महत्त्व समझा और देहातो म सत्याग्रहिया के जत्थे के जत्थे जाकर स्वराज्य की चर्चा करने लगे ।[3]

गावा म सत्याग्रहिया का आगमन एक उत्सव की चहल-पहल पैदा कर देता । 'समरयात्रा' कहानी म एसे ही एक उत्सव का चित्रण करते हुए प्रेमचद लिखते हैं— आज सवेरे से ही गाव म हलचल मची थी । कच्ची झोपडिया हसती हुई जान पडती थी । आज सत्याग्रहियो का जत्था गाव म आयेगा । कोदई चौधरी के द्वार पर चन्दोवा तना हुआ है । आटा, घी तरकारी दूध और दही जमा किया जा रहा है । सबके चेहरो पर उमग है, हौसला है आनन्द है ।"[4] सत्याग्रहिया के आते ही नवज्योति देहाता के टूटे फूटे गन्दे घरो मे फल जाती । सत्याग्रहियो के हाथ की तिरगी पताका, स्वदेशी परिधान, थके-क्लान्त चेहरे और ज्योति से दीप्त आखें

---

१ जागरण ४ जनवरी १९३४

२ वही १७ अप्रैल १९३१ ।

३ लाग डाट (मानसरोवर छठा भाग) पृष्ठ ८५ ।

४ समरयात्रा (मानसरोवर, सातवां भाग) पृष्ठ ६८ ।

देहातियो म एक प्रेरणा बन जाती। उन्हे लगता मानो स्वराज्य ऊँचे आसन पर बठा हुआ सबको आशीर्वाद दे रहा है। गावा म स्वराज्य की चर्चा तेजी स फलने लगी।

स्वराज्य का अथ केवल स्वतत्रता नही है। उसको व्यापक रूप म देखें तो स्वराज्य चित्त की वत्तिमात्र है। ज्यो ही पराधीनता का आतक दिल स निकल गया स्वराज्य मिल गया। भय ही पराधीनता है निभयता ही स्वराज्य है। पराधीनता के ब धन काटो जिसके लिए आत्मसयम परम आवश्यक है। आत्मा की दुबलता ही पराधीनता का मुख्य कारण है। आत्मा को बलवान बनाओ इद्रियो को साधो, मन को वश म करो तभी भ्रातभाव की उत्पत्ति होगी। तभी भोग विलास से मन हटेगा। तभी नशेबाजी का दमन होगा। आत्मबल के बिना स्वराज्य कभी उपलब्ध नही होगा।[1]

स्वराज्य म जन जन का हित निहित था कि तु शोषक वग परिस्थितियो को देखकर समझ गया था कि उसकी सत्ता खत्म होकर रहेगी। इसी कारण परोक्ष और अपरोक्ष रूप स वह इन आन्दोलना को कुचलने मे सहायता कर रहा था।[2] ग्रामीण जनता को स्वराज्य पर दृढ आस्था हो गइ थी और उसको यह विश्वास हो चला था कि स्वराज्य आने पर ही उसकी दयनीय स्थिति म सुधार हो सकेगा। जनता के लिए स्वराज्य सबसे बडा आकषण था क्योकि इससे देश विदेशी सत्ता से मुक्त हो जायेगा। देश की शासन व्यवस्था अपने लोगो के हाथ म आ जायगी। इस कल्पना के साथ यह शका भी उठ खडी हुई कि क्या नये सत्ताधारी शोषण की स्वाभाविक प्रवत्ति को त्याग देंगे? अगर नही, तब वास्तविक स्वराज्य नही मिल सकेगा। स्वराज्य का मतलब यह तो नही कि विदेशी सत्ता को हटाकर उस देशी सत्ता को स्वीकार कर लें जो शोषण का चक्र गतिशील रखे। स्वराज्य का अथ यह तो नहा कि 'जान' की जगह 'गोविन्द' बठ जाये। इस आशका के उपरान्त भी सब प्राणप्रण स स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील थ। देहात 'स्वराज्य भावना के सुदृढ आधार बन गये थे। पचायतो म स्वराज्य पर ही चर्चा होती। सभाए होती और दूर दूर से गाववाले इनम एकत्रित होते।[3]

प्रेमचद-युगीन प्रमुख राष्ट्रीय आन्दोलनो म सन १९२१ का 'असहयोग आन्दोलन' और सन १९३० का 'नमक बनाओ आन्दोलन' प्रमुख था। इस समय

---

१ समरयात्रा (मानसरोवर सातवा भाग) पृष्ठ ६६।

२ माग-डाक (मानसरोवर छठा भाग) पृष्ठ ६।

तक प्रेमचद का 'प्रेमाश्रम' लिखा जा चुका था। प्रेमचद ने आदोलन की तीव्रता को महसूस किया था। उन्होंने यह भी सोचा कि राजनीतिक दासता ने बहुत से आर्थिक और सामाजिक प्रश्नो को जन्म दिया है। ये प्रश्न तब तक नहीं सुलझाए जा सकते जब तक राजनीतिक गतिविधिया निश्चित उद्देश्य की ओर केन्द्रित नहीं होती। प्रेमचद जो ग्रामीण जीवन के कुशल चित्रकार थे उन्होने यही निष्कर्ष निकाला था कि किसानो की दुर्दशा का कारण वह तत्कालीन शासन व्यवस्था थी जिसको बनाए रखने के लिए शोषक-वर्ग जी जान से लगा हुआ था। 'प्रेमाश्रम' म प्रेमशकर इसी निष्कर्ष पर पहुचे हैं।

प्रेमचद इन असहयोग-आदोलनो से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया था। लाल फीता कहानी म आदोलन के सभी पक्षो का समर्थन किया गया है। इसका नायक हरिविलास भी आदोलन के समर्थन मे बीस वर्ष की सरकारी नौकरी से त्यागपत्र द देता है।

सन् १९२१ म प्रेमचद ने स्वराज्य के फायदे' नामक लेख म स्वराज्य प्राप्ति के प्रमुख साधनो का उल्लेख करते हुए लिखा—"स्वराज्य का मुख्य साधन स्वावलम्बन है अथात सब जरूरतो को अपने आप पूरा कर लेना। स्वराज्य-प्राप्ति का दूसरा साधन उन व्यवस्थाओ का त्याग करना है जो हमारी आत्मा को दबाती हैं और उस पराधीन, परावलम्बी बनाती हैं। अदालतें, सरकारी नौकरिया, सरकारी शिक्षा आदि हमारी आत्मा को कुचलने वाली, हमारे मन के पवित्र भावो का दमन करने वाली हम कौडी का गुलाम बनाने वाली, हमारी वासनाओ को भडकाने वाली सस्थाए हैं।[1]

स्वराज्य आदोलन के प्रमुख अग थ—सभाए सत्याग्रह जुलूस हडताल पिकेटिंग और स्वदेशी वस्त्र प्रचार। प्रेमचद न प्राय इन सभी पर लिखा है। 'कर्मभूमि उपयास म किसान-सभाओं का उल्लेख हुआ है।[2] य सभाए ग्रामीण जनता म नवचेतना का सचार करने म सबस प्रमुख थी। स्वराज्य के लिए सत्याग्रह होते और सत्याग्रही पकडे जाते। जेलें ठसाठस भर जाती। जेल जाना सम्मान की बात समझी जाती थी। स्वराज्य का मन्दिर जेल म है—लोगों क हृदय में यह भावना घर कर चुकी थी। जेल भक्ति और सम्मान की चीज बन गई थी। जेल म रहकर व्यक्ति अधिक दृढ रहता था क्योकि जेल क भीतर रहकर

---

१ स्वराज्य के फायदे विविध प्रसग भाग २ पष्ठ २७३ ७४।

२ कर्मभूमि पृष्ठ ३ ०।

न समझौते का आश्वासन रहता न क्षमा का भय। सत्याग्रही अपना विरोध दिखाने के लिए जुलूस निकालते। नारे लगाते। पुलिस के पास इनका प्रत्युत्तर डंडों और गोलियों में था। पलभर में कतारें की कतारें ढह जातीं। पलभर में जीते जागते मनुष्य मिट्टी का ढेर बन जाते। सत्याग्रही दृढ़ रहते। पीठ दिखाकर भागना उन्होंने सीखा नहीं था।[1]

प्रेमचन्द की 'जुलूस' कहानी इस दृष्टि से उल्लेखनीय कहानी है। जुलूस राष्ट्रीय जागरण का उद्घोष करते हैं। 'जुलूस' कहानी में स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयत्न शील जत्था वन्देमातरम् गाती हुई बढ़ती जाती है। जुलूस का मुखिया इब्राहीम दरोगा के घोड़े की टापों से कुचल जाता है। उसका बलिदान जनता की सहानुभूति प्राप्त कर लेता है। जो लोग जुलूस वालों पर हंसते थे वे ही इस बलिदान से उनके साथ सहानुभूति रखने लगे।[2] वस्तुतः जुलूस निकालने से यह सिद्ध होता है कि 'हम जीवित हैं अटल हैं और मैदान से हटे नहीं हैं।'[3] वे यह दिखाना चाहते थे कि गोलियाँ और किसी तरह का अत्याचार उन्हें भयभीत नहीं कर सकता। वे किसी भय से डरकर पथ से विचलित नहीं होंगे और उस व्यवस्था का अन्त करके रहेंगे जिसका आधार स्वार्थपरता और शोषण है। जुलूस में परिवार के परिवार गोलियों के शिकार होते और जेल में ठूस दिये जाते। ये लोग चाहते तो अपने को निर्दोष सिद्ध कर सकते थे परन्तु वे दिखा देना चाहते थे कि *उन्हें नौकरशाही लोगों से किसी न्याय की आशा नहीं है।*[4]

विरोध प्रदर्शन सभा, सत्याग्रह और जुलूसों के माध्यम से तो होता ही साथ हड़तालें भी की जातीं। हड़ताल के प्रति लोगों की सद्भावनाएं नहीं थीं क्योंकि इससे जनता की कठिनाइयाँ बढ़ जाती थीं। सहानुभूति न होने के कारण न नेता और न जनता इसे प्रोत्साहित करती। अधिकतर मजदूर प्रतिदिन काम करके पेट भरते थे। उनके लिए हड़तालों में हानि अधिक थी। विदेशी वस्तुओं और शराब के विरोध में 'धरना' दिया जाता। मैकू[6], होली का उपहार[7] और

---

१ लाल फीता (मानसरोवर छठा भाग), पृष्ठ २०३ २०८।
२ जलूस (मानसरोवर सातवाँ भाग) पृष्ठ १३।
३ जेल (मानसरोवर सातवाँ भाग) पृष्ठ १४।
४ वही पृष्ठ १४।
५ वही पृष्ठ १६।
६ मैकू (मानसरोवर सातवाँ भाग) पृष्ठ ६१।
७ होली का उपहार—कफन पृष्ठ १११।

'तावान'[1] कहानी म शराब और विदेशी वस्त्रो के प्रयोग के विरोध मे धरना दिया जाता है। 'सुहाग की साडी' म रतनसिह पत्नी के विरोध करने पर भी 'सुहाग की साडी' रखन के लिए तयार नही होते क्याकि वह विदेशी कपडे से बनी थी।[2] इस आन्दोलन म महिलाओ और छात्रा का पूण सहयोग मिला था। 'पत्नी से पति'[3] कहानी की गोदावरी पति की आना का उल्लघन कर काग्रेस की आम सभा म पहुच जाती है। 'आहुति' का विश्वम्भर पढाई लिखाई छोडकर स्वयसेवक बन जाता है और देहातो म चेतना फैलान का उत्तरदायित्व अपने पर ले लेता है।[4]

गावा म नवजागरण की भावना फलती जाती है। 'लाग डाट' कहानी का बेचन चौधरी आन्दोलन का पक्ष लेता है। 'सग्राम' नाटक के जमीदार सबलसिह भी आन्दोलन के प्रबल समथक हैं। 'समरयात्रा' कहानी मे कोदई चौधरी और वृद्धा नोहरी सत्याग्रहियों का स्वागत कर इस आन्दोलन का मानो पूण समथन ही करते हैं। अब तक देहातो और नगरों म जो आन्दोलन चल उनका नेतत्व गाधी के समथका ने ही किया। इसी कारण इस विरोध म अहिंसात्मक साधन अपनाये गये। 'कायाकल्प' का चक्रधर 'कमभूमि' का सलीम और 'रगभूमि' का सूरदास ऐसे ही गाधीवादी नेता हैं, जो व्यक्तिगत बलिदान से लोगो के विद्रोह को शान्त करना चाहते हैं। इनम सूरदास का चरित्र विशेष उल्लेखनीय है जो अहिंसा के पथ पर चलकर सरकारी कमचारियो का हृदय परिवर्तित करना चाहता है। सरकार के पास मारने का बल है तो उसके पास मर जाने का बल तो है ही।[5] 'प्रेमाश्रम', 'कमभूमि' और 'कायाकल्प' उपन्यासो मे जनता और सरकार के बीच सीधा सघष होता है। प्रेमाश्रम म प्रेमशकर किसाना की दशा सुधारने के लिए हाजीगज म कृषि प्रयोगशाला खोलता है। लखनपुर गाव के किसानो को वह जमीदार और सरकारी पदाधिकारिया के अत्याचार और अन्याय स बचान का भी पूरा प्रयास करता है। उसी के प्रभाव से कुछ बिगडे किसाना और सरकारी कमचारिया का सुधार भी होता है। 'कायाकल्प' का चक्रधर जगदीशपुर रियासत म सेवा-समिति का सगठन करके निम्न वग का सुधार करना चाहता है। वह मजदूरा और

---

१ तावान (मानसरोवर पहला भाग) पष्ठ ३०५।

२ सुहाग की साडी (मानसरोवर सातवा भाग) पष्ठ २७०।

३ पत्नी के पति (मानसरोवर सातवा भाग) पष्ठ १९।

४ आहुति—कफन पष्ठ १ ।

५ रगभूमि पृष्ठ ४६५।

चमारो मे विरोध को शान्त करता है। जेल में कैदियों में दरोगा की रक्षा करता है। पर अहिंसा का मार्ग स्वीकार करता है परन्तु बाद में उसका राजनीतिक जीवन नहीं राह पर नहीं चल पाता। रियासत से सम्बन्ध जुड़ जाने पर वह ग्रामीणों से अहिंसात्मक मार्ग पर सच्चा व्यवहार नहीं करता। उन पर अहिंसा का प्रभाव स्थायी नहीं है। 'कर्मभूमि' उपन्यास में अमर, सुखदा और डॉ० शान्तिकुमार—सभी गांधीवादी जीवन-दर्शन से प्रेरित हैं। गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित अनेक पात्रों का निर्माण उन्होंने किया किन्तु 'सूरदास' अपने आप में अकेला है। 'सूरदास गांधीजी का ही प्रतिरूप है, कहना चाहिए उनका लघु साहित्यिक संस्करण है। वह गांधीजी के विचारों और उनके अहिंसात्मक सत्याग्रह का सजीव प्रतिनिधि है।'[1]

इस आन्दोलन का विरोध और दमन सरकार द्वारा ही नहीं उसके सहायकों द्वारा भी हुआ। विदेशी सरकार यदि इस आंदोलन का दमन करती तो स्वाभाविक भी था परन्तु स्वदेशी ही इसका विरोध करने में जुटे हुए थे। विचित्र होली 'आदर्श विरोध' और 'सत्याग्रह' कहानियों में ऐसे ही व्यक्तियों का नाम आता है जो व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण सरकार का समर्थन करते हैं। संग्राम नाटक में पुलिस इंस्पेक्टर सरकार की दमन-नीति का उल्लेख करता हुआ कहता है—'आजकल बड़े से बड़े आदमी को जब चाहे फांस लें। कोई कितना ही मुअजिज हो अफसरों के यहां उसकी कितनी ही रसाई हो इतना कह दीजिये कि हुजूर यह भी सुराज का हामी है बस सारे हुक्काम उसके जानी दुश्मन हो जाते हैं।'[2] जमींदार, जो सरकार के प्रमुख सहायक थे किसानों का दमन करते थे। प्रेमाश्रम में राय कमलानन्द कौंसिल में सरकार का पक्ष लेते थे, किसानों के सुख दुख से उनका कोई वास्ता नहीं था। 'रंगभूमि' में कुंवर भरतसिंह अपनी रियासत सुरक्षित रखकर ही जनसेवा करना चाहते हैं। 'गोदान' के रायसाहब अमरपालसिंह राजा की उपाधि स्वीकार कर सरकार के हो जाते हैं। जमींदार सरकार के हितैषी हैं परन्तु पूंजीपति अपने स्वार्थ के कारण राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करते हैं। 'रंगभूमि' में जान सेवक विदेशों में जाने वाले धन को रोककर आर्थिक दासता से मुक्ति चाहते हैं। 'गोदान' में खन्ना दो बार राष्ट्रीय आन्दोलन में जेल जा चुके हैं। इस आन्दोलन का वास्तविक समर्थक किसान था जो बहुत देर बाद अपने शोषण के

---

१ प्रेमचन्द और गांधीवाद पृष्ठ १६१।

२ संग्राम पृष्ठ १३२।

विरोध म उठा था। गाधीजी सवप्रथम मध्यवर्गीय हितो को लेकर चले थे। गाधीजी के समथक बाद म गाव म भी पहुचे और किसाना न स्वराज्य का मतलब आर्थिक स्वतत्रता से लिया। 'कमभूमि का अमर किसाना के हितो के लिए जमींदार और सरकार से लडता है और किसान उसे सच्चे अर्थों म मुक्तिदाता मान लेते हैं। किसान ही नही, मजदूर भी इन आदोलना से प्रभावित हो रहे थे। गोबर जो पहले किसान था बाद म मजदूर बनता है। वह भी 'गोदान' म शहर मे सभाओ मे जाकर राष्ट्रीय भावनाओ से परिचित होकर यह अनुभव करता है कि उसे अपना भाग्य अपने आप ही बनाना है।

गाधीजी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर प्रेमचद ने अपने साहित्य मे तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियो को ज्यो का-त्यो उतार दिया है। असहयोग-आन्दोलन सफल भी नही हुआ और उसे बीच मे ही स्थगित कर दिया गया। गाधीजी के सिद्धात समय को देखते हुए मूल्यहीन दिखाई देने लगे। जनता का विश्वास भी इन आदोलना पर से उठ गया था क्योकि इनसे प्रेम के स्थान पर द्वेष बढता था। दूसरे, यह रोग का वास्तविक और उचित निदान न था। केवल बाहरी टीम-टाम से रोग का नाश सभव नही था।[1] अहिंसावादी विचार-धारा क्रान्ति की ओर मुड चली। अब तक जिस अहिंसा का आश्रय लेकर चुप रहा गया वह व्यय ही सिद्ध हुई। 'अब उद्धार शान्त रहने से नही, मरने से होगा।[2] जनता को समय की गति के साथ विश्वास हो चला था कि पिकेटिंग और जुलूसो से स्वतत्रता नही मिल सकती। इन साधनों को अपनाना अपनी विवशता और दुबलता का खुला ऐलान था। झडिया लेकर और गीत गाकर देश स्वतन नही होते। यह बच्चा का खेलभर है। बच्चा को रोने धोने से खाने को मिठाइया मिल जाती हैं वही इन लोगा को मिल जायेगा। वास्तविक स्वतत्रता तभी उपलब्ध होगी जब हम इसका मूल्य चुकाने को उद्यत होंगे। जेल जाना, डडे खाना स्वतत्रता का मूल्य नही क्योकि इससे विदेशी शासन को कोई हानि नही पहुचती। विदेशी शासन उसी दिन समाप्त हो जायेगा जब उन्हे पता लग जायेगा कि अब वे भारत की जनता पर दमन नही कर सकते और यह तब ही होगा जब उन्हे यहा लाभ नही, हानि उठानी पडेगी। यदि भारत म स्वय मरने की जगह एक हजार अग्रेज कत्ल कर दिये जाए तो आज ही स्वराज्य मिल जाये। एक गोरे अफसर के कत्ल कर देने से

---

१ कमभूमि पृष्ठ ३८० ४०७ ८।
२ कायाकल्प पृष्ठ ११४ ११७।

हुकूमत पर जितना डर छा जाता है, उतना एक हजार जुलूसो से मुमकिन नही।[1]

सत्याग्रह म अन्याय का दमन करने की शक्ति है—समय क साथ यह सिद्धात भी व्यर्थ हो गया।[2] वडे बडे कार्यकर्ताओ के वश म भी कुछ नही रहा था। वे वाह्य रूप से देश के परम भक्त थ पर तु वे मूलत शोषक ही थे और उनकी दृष्टि अपने स्वार्थ पर ही केन्द्रित रहती थी।[3] प्रेमचद ने इसी को लक्ष्य करके लिखा था—"सभी खद्दर पहनने वाले और जल जानेवाले देवता नही हैं। उनम भी अकसर वडे वडे हथकण्डबाज लोग शामिल हैं, जो जेल भी किसी-न किसी स्वार्थ स ही गए थे।[4] 'प्रतिशोध' कहानी म ईश्वरदास मिस्टर व्यास की हत्या कर देते हैं क्योकि वे नवयुवको पर लगाए गए झूठे अभियोग को अपने स्वार्थ के लिए प्रमाणित कर देते हैं। भाडे का टट्टू' म निरपराध रमेश को डाके के झूठे अभियोग म जेल भेज दिया जाता है। जेल से निकलकर रमेश पक्का क्रातिकारी बन जाता है और शस्त्र जमा करने के लिए पसो के लिए डाके डालना शुरू कर देता है।[5] रगभूमि उपन्यास म वीरपालसिंह और उसके साथी क्राति के समर्थक हैं। वे सरकारी खजाना लूटते हैं और पुलिस के आदमियो की हत्या भी करते हैं।[6]

प्रेमचद तत्कालीन बदलती राजनीतिक गतिविधियो का सूक्ष्म निरीक्षण कर रहे थे। उन्हे समय के साथ यह विश्वास हो चला था कि ससार सिद्धान्तो के आधार पर नही चलता। मनुष्य का मूल्य इन सिद्धान्तो से कही अधिक है। सन् १६३४ के जागरण के सम्पादकीय म अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होने लिखा था—'अब यह मान लेना पडेगा कि जिस चीज को महात्माजी (गाधी) भीतर की आवाज कहते हैं जिसका मतलब यह होता है कि उसम गलत होने की सभावना नही, बहुत भरोसे की चीज नही क्योकि उसने एक से ज्यादा अवसरो पर गलती

---

१ कातिल—गुप्तधन भाग २ पृष्ठ ६५।
२ प्रेमाश्रम पृष्ठ ३७५।
३ गबन पृष्ठ २१८।
४ विविध प्रसग भाग २ पृष्ठ २६ ।
५ प्रतिशोध—गुप्तधन भाग २ पृष्ठ ४६।
भाडे का टट्टू (मानसरोवर तीसरा भाग) पृष्ठ ३०६।
६ रगभूमि पृष्ठ १८३।

की है।''[1] उन्होंने यह भी अनुभव किया था कि अच्छे तरीकों के असफल होने पर क्रान्ति होती है।[2] उन्होंने यह भी कहा कि 'यदि मुझे विश्वास हो जाता और मैं जान लेता कि ध्वंस से हम स्वर्ग मिलेगा तो मैंने ध्वंस की भी चिन्ता न की होती।'[3] उनकी गाधीवादी आस्था के शव पर 'प्रेमाश्रम' का बलराज क्रान्ति के नारे लगाता है। वह समाचारपत्रों में रूस की क्रान्ति की बात पढ़ता है। उसे लगता है किसान का अपना महत्त्व है और सभव है कि एक दिन रूस की तरह यहा भी किसानों का राज्य हो जाए। वह शोषकों का अत्याचार नहीं सहेगा। उसका वश चले तो वह एक एक का सिर झुका दे।[4] वह अकेला है परन्तु ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहता है। वह अच्छी तरह जानता है सबल से टक्कर लेने में स्वयं उसका अनिष्ट है परन्तु उसकी अवस्था उस रोगी की-सी है जो बचने की आशा खोकर पथ्य कुपथ्य का विचार भी छोड़कर मृत्यु की ओर दौड़ पड़ता है।

बलराज की विद्रोही भावना उस दिन विस्फोट का रूप धारण कर लेती है जिस दिन उसे पिता का सरक्षण और प्रोत्साहन भी मिल जाता है। अपने अपमान का प्रतिकार लेने के लिए वह गौसखा की हत्या कर डालता है। सारा गाव उसकी निन्दा करता है। केवल गाधीजी का चेला कादिर ही उसके साहस की प्रशसा करता हुआ कहता है—'यारो ऐसी बातें न करो। बेचारे ने तुम लोगों के लिए, तुम्हारे अधिकारों की रक्षा के लिए यह सब कुछ किया। उसके जीवन और हिम्मत की तारीफ तो करते नहीं उलटे उसकी बुराई करते हो। हम सब-के-सब डरपोक हैं। वही एक मर्द है।[5]

बलराज की हिंसा ने सबकी आखें खोल दी। यह प्रश्न केवल बलराज का नहीं था—लाख-लाख किसानों का था जो जमींदार और उसके सहायकों के हाथों पिसते चले आ रहे थे। किसान अब सशस्त्र होकर विरोध के लिए उठ खड़ा हुआ था। बलराज ने 'सग्राम' के 'हलधर' को अपना स्वर सौंपा है। हलधर उन सबका घातक है जो गरीबों को चूसते हैं और उनके जीवन को उजाड़ देते हैं। वह अपने अपमान का बदला लेना चाहता है क्योंकि उसके विचार में वह आदमी नहीं

---

१ जागरण—१६ अप्रैल १९३४।
२ निबन्ध मजरी पृष्ठ १३२।
३ वही पृ० १३२।
४ प्रेमाश्रम पृष्ठ ८४।
५ वही पृष्ठ ८५।
६ वही पृष्ठ २०४।

हिजडा है जो अपने अपमान का प्रतिकार लेने का साहस नहीं करता।[1]

बदलती परिस्थितियो ने यह स्पष्ट कर दिया था कि सीधी अगुली घी नहीं निकलेगा। लोग जितना दबते जायेंगे उतने ही और दबाए जायेंगे। इसलिए यह आवश्यक हो गया कि परिस्थितिया को इस तरह ढाल दे जिससे शोषक उनको सताने की सोच ही न सकें। जो उनको रौंदे उनके पैरो म काटा बन चुभ जाए।[2] इस उग्र विचारधारा का स्वागत अधिक हुआ क्योकि जनरुचि सदैव उग्र की ओर होती है।[3] अपने अधिकारो के लिए प्राण देना पड़ता है इसलिए दस-बीस प्राणो की आहुति देनी ही पडेगी। परन्तु यह भावना गाधीवाद की तरह असफल सिद्ध हुई। शासन सदैव इसे कुचलने को हर तरह से उद्यत था।

प्रेमचद ने दोनो विचारधाराओ को निकटता से परखा था। उन्हें दोनो ही परिस्थितियो म अनुकूल प्रतीत नही हुइ। उनकी अन्तिम कृति गोदान' म परिस्थितियाँ *इतनी जटिल बन गई थी कि होरी' उनम दम तोड़ देता है।* गोदान' म तत्कालीन राजनीतिक गतिविधिया विशेष नही उभरी हैं पर उन शोषकों का विस्तृत वर्णन हुआ है जो किसानो को हर तरह से चूस रहे थे। 'गोदान' म वस्तुत स्वतन्त्रता प्राप्ति म बाधक तत्वो के रूप म इन शोषको का बहुरगी चित्रण अधिक हुआ है।

राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता म सबसे अधिक बाधक तत्कालीन शासन व्यवस्था थी जिसम विदेशी सत्ता के सहायक के रूप म जमीदार देशी रियासतो के नरेश महाजन तथा शासन व्यवस्था के पदाधिकारी भी सम्मिलित थे। प्रेमचद-साहित्य म इन शोषको का चित्रण करते हुए प्रेमचद ने किसानो की उस दयनीय स्थिति का उल्लेख किया है जो न गाधीजी की अहिंसा से सुलझी न क्रान्तिकारी विचारधारा से।

सरकार राष्ट्रीय आन्दोलन का दमन करना चाहती थी। जमीदार और राजा लोग सरकार के सहायक बनकर अपनी राजभक्ति का प्रमाण देते। देशी रियासतें स्वतन्त्र होती किन्तु ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधि इन रियासतो म हमेशा बना रहता। ये रियासतें देशभक्तो का दमन करने म सरकार की सहायता करती। रगभूमि'का विनय इसी कारण दडित होता है। मिस्टर क्लाक पोलिटिकल

---

१ सग्राम निश्चय।
२ रगभूमि पृष्ठ ३ ६।
३ रियासत का दीवान (मानसरोवर दूसरा भाग) पृष्ठ १६४।

एजेंट हैं जो रियासत में आतंक फैलाए रहते हैं। वह दौरे पर निकलते, तो एक अंग्रेज़ी रिसाला साथ ले लेते और इलाके के इलाके उजड़वा देते गाँव के गाँव तबाह करवा देते, यहाँ तक कि स्त्रियों पर भी अत्याचार होता था।' 'रियासत का दीवान', कहानी, में इसी तरह के शोषण का चित्रण करते हुए प्रेमचंद ने लिखा है— रियासत के हर एक किसान और ज़मींदार से जबरन चन्दा वसूल किया जा रहा था। पुलिस गाँव गाँव चन्दा उगाहती फिरती थी। रकम दीवान साहब नियत करते थे। वसूल करना पुलिस का काम था। फरियाद की कहीं सुनवाई न थी। चारों ओर त्राहि त्राहि मची हुई थी।"[1]

'कायाकल्प' में राजा विशालसिंह के तिलक उत्सव के लिए प्रजा से चन्दा उगाहया जाता है। हुक्म मिलने की देर थी। कर्मचारियों के हाथ तो खुजला रहे थे। वसूली का हुक्म पाते ही बाग बाग हो गए। फिर तो वह अंधेर मचा कि सारे इलाके में कुहराम पड़ गया। चारों तरफ लूट-खसोट हो रही थी। गालियाँ और ठोंक-पीट तो साधारण बात थी किसी के बल खोल लिए जाते थे, किसी की गाय छीन ली जाती थी, कितना ही के खेत कटवा लिए गए। बेदखली और इजाफे की धमकियाँ दी जाती थीं।[2] राजा विशालसिंह गद्दी पर बैठते ही अत्याचार बढ़ा देते हैं। उनके विचार में 'मैं प्रजा का गुलाम नहीं हूँ। प्रजा मेरे पैरों की धूल है। मुझे अधिकार है कि उसके साथ जैसा उचित समझूँ वैसा सलूक करूँ।"[3]

इन अत्याचारों को सरकार का संरक्षण प्राप्त था। 'रंगभूमि' में क्लार्क स्पष्ट स्वीकार करते हैं—' साम्राज्य के लिए हम बड़े-से-बड़ा नुकसान उठा सकते हैं बड़ी से बड़ी तपस्याएँ कर सकते हैं। हम अपना राज्य प्राणों से भी प्रिय है और जिस व्यक्ति से हम क्षति की लेशमात्र भी शंका हो, उसे हम कुचल डालना चाहते हैं उसका नाश कर डालना चाहते हैं उसके साथ किसी भाँति की रियायत सहानुभूति—यहाँ तक कि न्याय का व्यवहार भी नहीं कर सकते।[4] विदेशी शासन व्यवस्था की नींव शोषण पर टिकी हुई थी। भ्रष्टाचार और अन्याय इसके प्रमुख अंग थे। 'नमक का दरोगा' और दण्ड कहानियाँ इसी सत्य का उद्घाटन करती हैं। तत्कालीन व्यवस्था में कौंसिलें भी बेकार थी जो जनमत का प्रतिनिधित्व

१ रियासत का दीवान (मानसरोवर, दूसरा भाग) पृष्ठ १६४।

२ कायाकल्प पृष्ठ ३६।

३ वही पृष्ठ १०२।

४ रंगभूमि पृष्ठ २९१।

करती थी, क्योंकि इनमें आये प्रतिनिधि यह हमेशा याद रखते थे कि कौंसिलों में उनकी उपस्थिति केवल सरकार की कृपा और विश्वास पर निर्भर है।"[1] इसी कारण वे अपनी वास्तविक स्थिति से परिचित होकर सोच रहे थे— 'हम काठ के पुतले हैं, तमाशा दिखाने के लिए खड़े किये गए हैं इसलिए हम डोरी के इशारे पर नाचना चाहिए। यह हमारी नासमझी है कि अपने को राष्ट्र का प्रतिनिधि समझते हैं।'[2] जनता के हितों के लिए कौंसिलों में जाकर कानून बनाना बेकार है। लोगों में जब तक शिक्षा और जागृति नहीं फैलती तब तक सब कुछ व्यर्थ ही होगा।[3]

स्वराज्य प्राप्ति के लिए इन विरोधी शक्तियों को जड़ से नष्ट करना पहला काम था। गांधीजी का आन्दोलन पहले विशेषकर नगरों में फैला। बाद में गांवों में भी स्वराज्य की आवाज उठी। शोषण का सीधा और भयंकर प्रभाव देहाती जनता पर पड़ रहा था क्योंकि एक और विदेशी सत्ता थी, दूसरी ओर उसके सहायकों की सत्ता थी जो सीधे किसानों को पीस रही थी। इसीलिए देहातों में यह आवश्यक हो गया था कि स्वतन्त्रता की लड़ाई दो मोर्चों पर हो। विदेशी शासन समाप्त हो भी जाए तो भी तब तक वास्तविक स्वराज्य नहीं मिलेगा जब तक शासन की वह व्यवस्था समाप्त न कर दी जाए जिसकी नींव शोषण और अन्याय पर टिकी हुई थी।

प्रेमचंद पूर्ण स्वराज्य चाहते थे। विदेशी सत्ता के साथ वे तत्कालीन शोषण में क्रियारत शासन-व्यवस्था से भी मुक्ति चाहते थे जिससे आर्थिक विषमता समाज से उठ जाए। आहुति में रूपमणि प्रेमचंद के विचारों का प्रतिरूप ही है। वह वास्तविक स्वराज्य की अभिलाषा करती हुई कहती है— 'अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा लिखा समाज यों ही स्वार्थांध बना रहे तो मैं कहूंगी ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा है। अंग्रेजी महाजनों की धन लोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ाएगी कि वे विदेशी नहीं स्वदेशी हैं? कम से कम मेरे के लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जान की जगह

१ आदर्श विरोध (मानसरोवर आठवां भाग) पृष्ठ २३०।
२ प्रेमाश्रम पृष्ठ २६।
३ कानूनी कुमार (मानसरोवर दूसरा भाग) पृष्ठ २६३।

गाविन्द बठ जाए। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हू, जहा कम-से कम विषमता को आश्रय न मिल सके।"[1]

इस विषमताहीन समाज व्यवस्था के लिए किसानो को खुद अपने पैरो पर खडा होना चाहिए। किसान परिस्थितिया म टूटकर गिर रहा है। वह खडा नही रह पाता क्योकि परिस्थितिया विरोधी हैं जिनको वह पहचानकर भी, चाह कर भी विरोध नही कर सका है। होरी' 'गोदान म अधूरे सपने लेकर मृत्यु रथ पर आरूढ हो जाता है। गोबर की क्रातिकारी विचारधारा उसको सत्य से परिचित कराती है पर जीवन के अत म होरी म वह शक्ति नही जो सत्य को स्वीकार कर सके। प्रमचद गाधीवादी थे किन्तु समय के साथ गाधीवाद का खोखलापन वह देख चुके थ। गोदान' म मेहता किसानो की दुदशा का प्रमुख कारण उनका देवत्व मानते हैं। उनके विचार मे अगर ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते, तो यो न ठुकराए जाते।[2] प्रेमचद ने भी इस देवत्व को देखा था और यह महसूस किया था कि देवता बन रहने से काम नही चल सकता। गोदान' मे जिस महाजनी सभ्यता क प्रभाव म होरी' घुटकर रह गया है अब उसे मिटाना होगा और इसक लिए होरी जस हजारो-लाखो देवताओ को इसान बनना होगा। अपनी अतिम पूण कृति 'मगलसूत्र म उन्होने एक स्थान पर लिखा है—' देवता हमेशा रहगे और हमेशा रहे हैं। उन्ह अब भी ससार धम और नीति पर चलता हुआ नजर आता है। वे अपने जीवन की आहुति देकर ससार से विदा हो जात है। लेकिन उन्हे देवता क्या कहो? कायर कहो आत्मसेवी कहो। देवता वह है जो न्याय की रक्षा कर और उसक लिए प्राण द द। अगर वह जानकर अनजान बनता है और धम से गिरता है और अगर उसकी आखो म यह कुव्यवस्था खटकती ही नहीं तो वह अन्धा भी है और मूख भी देवता किसी तरह नही और यहा देवता बनने की जरूरत भी नही। देवताओ न ही भाग्य और ईश्वर और भक्ति की मिथ्याए फलाकर इस अनीति को अमर बनाया है। मनुष्य न अब तक इसका अत कर दिया होता या समाज का ही अत कर दिया होता। नही मनुष्यो को मनुष्य बनना पडेगा। दरिन्दो के बीच म उनसे लडने क लिए हथियार बाधना पडेगा। उनके पजो का शिकार बनना देवतापन नहीं जडता है।"[3]

---

१ आहुति—कफन पष्ठ १०८।

२ गोदान पष्ठ २१३।

३ मगलसूत्र प्रमचन्द स्मृति पृष्ठ २६३।

प्रेमचद जीवन के अतिम दिना म आन्दोलनो को ढहते देख चुके थे। जिस प्रेमाश्रम की उन्होने कल्पना की थी वह 'गोदान' के 'होरी' को आश्रय नही दे सकी। इसी कारण होरी के मार्मिक अत से विवश होकर 'मगल सूत्र' म उन्हाने 'लडने के लिए हथियार बाधना पड़ेगा—"यह सत्य स्वीकार किया था। प्रेमचद ने गाधीजी के अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनो को बीच म ही स्थगित होते देखा था। उन्होने हिंसा की गतिविधियो को भयकर परिणामो म बदलते देखा था। उनके विचार म अहिंसा और हिंसा दोना ही अतिया थी और परिस्थितियो म सही रूप से जूझने क लिए दोनो का सतुलित और समयोचित रूप ही आवश्यक था।

प्रेमचद राजनीति के क्षेत्र म गाधीवादी थे या साम्यवादी वस्तुत प्रमचद पूणत न गाधीवादी थे न साम्यवादी। प्रारम्भ मे उनका झुकाव गाधीवाद की ओर था और अतिम दिना म साम्यवाद की ओर। प्रश्न यह भी उठता है प्रेमचद केवल गाधीजी के हृदय परिवतन के सिद्धात म आस्था रखने के कारण ही गाधीवादी नही कहे जा सकते थ। वे यह भी चाहते थे कि देश म जमींदार और उसके सहायक जो किसानो के शोषक हैं—न रहे। केवल इस विनाश की सोचकर ही वे कम्युनिस्ट नही कहे जा सकते। वस्तुत प्रेमचद अपने को जितना कम्युनिस्ट समझते थे उससे अधिक कम्युनिस्ट थे और जितना गाधीवादी मानते थे उससे कम गाधीवादी थे। देखा जाए तो प्रमचद का आदि गाधीवाद था और अत साम्यवाद।[1] प्रेमचद साम्यवादी थे इसका प्रमाण उनके स्वय के य शब्द कहे जा सकते है—'कम्युनिज्म अर्थात साम्यवाद का विरोध वही तो करता है जो दूसरो से ज्यादा सुख भोगना चाहता है जो दूसरो को अपने अधीन रखना चाहता है। जो अपन को भी दूसरा के बराबर ही समझता है जो अपन म सुर्खाब के पर लगा नही देखता जो समदर्शी है उसे साम्यवाद से विरोध क्या होने लगा?"[2] प्रेमचद का झुकाव साम्यवाद की ओर ही था क्योकि वे समानता के ही पोषक थे। उनका यही दृष्टिकोण टूटते हुए गाधीवाद पर 'गोदान' के बाद 'मगल सूत्र' मे साम्यवाद म स्पष्ट उभरकर आ सका है।

---

१ प्रेमचद एक अध्ययन पृष्ठ १०६।

२ जागरण सम्पादकीय २६ जनवरी, १६३४।

६

शोषक और शोषित उभरते नये स्वर

प्रेमचद-साहित्य जमीदारा और उसक सहयोगिया के अत्याचारा की ममस्पशी कहानी है। प्रेमचद की अतिम पूण कृति 'गोदान' है जिसम होरी की कहानी है। होरी और कोई नही, कृषक-वग का प्रतिनिधित्व करनेवाला वह व्यक्ति है जो शोषण के विभिन्न कुचक्रो से आहत होकर मृत्यु की गोद म सदा के लिए शात हो जाता है। 'गोदान तक आते आते उनकी विचारधारा निश्चित मोड ले चुकी थी। 'रगभूमि का सूरदास हार-हारकर खेलता है परन्तु गोदान का होरी बिना हार जीत की चिन्ता किये खेलता जाता है। वह तब तक खेलता रहता है जब तक उसक जीवन पर यक्षानिकी पात नही हो जाता। होरी के जीवन पर दृष्टिपात करते ही शोषण और शोषित की कहानी अपने आप सामने आ जाती है।

शोषक-वग

परिस्थितिया समय के साथ बदलती चलती हैं। 'सेवासदन मे जिस जमीदार के दशन होते हैं वह 'प्रेमाश्रम' म कुछ नया रूप धारण कर लेता है। गोदान म भी वह कुछ बाहर से बदला नजर आता है। जमींदार बदला लगता है पर क्या वह सचमुच बदल गया है। नही। जमीदार 'गोदान तक नही बदला है चाहे वह बाहर से कितना ही बदला नजर क्या न आये। जमींदार भीतर से वही शोषक है भले ही उसे बदलती हुई परिस्थितिया का आभास हो चला था।

प्रेमचद-साहित्य म जमीदारो की अनेक कहानिया हैं। जमीदारो के नाम बदल गये गुण नही। किसी कहानी का नायक सदन है तो किसी का राय कमलानन्द। उनकी पहली कृति सेवासदन' है जिसम जमीदार के रूप मे 'सदन' दिखाई देता है। वह उस वग का प्रतिनिधित्व करता है जो अपनी शक्ति को सुरक्षित रखना चाहता है। वह विचारा से बहुत बडा सुधारक प्रतीक होता है किन्तु असलियत

यह है कि वह "कृषि सहायक सभा' खोलने के विचार मात्र से सचेत हो जाता है। इस सभा का उद्देश्य किसानो की सहायता करना नही है, केवल जमीदारो के अधिकारो को नष्ट करना ही है।' इसी उपन्यास म जमीदार महन्त रामदास तीर्थयात्रा और यज्ञ के लिए अपने असामिया पर चन्दा लगाकर कडाई से वसूल करवाते हैं। चेतू उनका शिकार बनता है। पुलिस तक बात पहुच भी जाय तो क्या ? पुलिस तो जमीदार की सहायक है। यहा जमीदार अपने स्वत्वा का रक्षक है कृषका का शुभेच्छु है और पुलिस का कृपापात्र।

प्रेमाश्रम उनकी दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना है। इसम जमीदारो की तीन पीढिया हैं। इन पीढियो क जमीन्दार अलग अलग हैं। पहली पीढी 'सामन्तवाद' की प्रतीक जटाशकर की है जो कभी की समाप्त हो चुकी है।। इस पीढी के पास शक्ति और धन दोनो थे परन्तु वह शोषण क दुष्कृत्य से अनभिज्ञ थी। आज इस पीढी की स्मृति ही शेष रह गई है। दूसरी पीढी ज्ञानशकर की है जो पूजीवाद की प्रतीक है। ज्ञानशकर तालाब का पानी बन्द कर देता है। वह चरावर म मवेशिया को चरने से रोक देता है और किसानो के गाव से बाहर बनाये गय भोपडो म आग लगवा देता है। वह अपनी सुख सुविधाओ को ही देखता है। इसके लिए वह असामियो पर इज़ाफा लगान का दावा करता है। बहुत-से असामियो के शिकमी खेत भी छुडा लेता है। लगान क लिए बेदखली दायर कर देता है। नालिश करता है और किसाना की विपत्तियो म वह कर्तव्य भूलकर अपने राग रग म डूबा रहता है। इसके लिए किसाना से रुपया वसूल करता है और न मिलने पर हटरो से पीटता है। मायाशकर तीसरी पीढी म आते हैं जो साम्यवाद के प्रतीक हैं। मायाशकर समाजवादी है जो अपन और कृषको के बीच शोषक और शोषित का सम्बन्ध तोडकर एक नया सम्बन्ध स्थापित करते हैं। यह सम्बन्ध बन्धुत्व की भावना पर आधत है। वह कृषको के मित्र हैं, शोषक नही।

इस उपन्यास म जमीदार के तीन रूप है। पहला रूप ज्ञानशकर का है जो शिकार हिंसक पशु की तरह करते हैं। दूसरा रूप राय कमलानन्द का है जो विचारा म प्रगतिशील होकर भी व्यवहार म शोषक ही हैं। वे स्वय जमीदारी प्रथा के प्रतिनिधि है। गायत्री जमींदार का तीसरा रूप है जो अपनी सत्ता का अनुचित प्रयोग करती है। तीना ही शहर म रहकर गाववाला की स्थिति से अपरिचित रहते हैं।

उपदेश कहानी म ऐसे ही जमीदार की कथा है जो शहर म रहता है और स्वय पास के गाव म जाकर यह भी नही देखता कि उसके असामियो की क्या हालत है। कृषि से उन्ह विशेष प्रेम है और पत्रा म जहा कही किसी नयी खाद या

पर मजबूर किया जाये। वे मेहता से अपने प्रगतिशील विचारों को प्रकट करते हुए कहते है—'किसी को भी दूसरे के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नही है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। कम करना प्राणी मात्र का धर्म है। समाज म एसी व्यवस्था जिसम कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें, कभी सुखद नही हो सकती। पूजी और शिक्षा जिस मैं पूजी का ही रूप समझता हू इनका किला जितनी जल्दी टूट जाए, उतना ही अच्छा है। जिन्ह पेट की रोटी मयस्सर नही उनके अफसर और नियोजक दस दस, पाच पाच हजार फटकारें, यह हास्यास्पद है और लज्जास्पद भी। इस व्यवस्था ने हम जमीदारो मे कितनी विलासिता, कितना दुराचार, कितनी पराधीनता और कितनी निलज्जता भर दी है, यह मैं खूब जानता हू लेकिन मैं इन कारणो से इस व्यवस्था का विरोध नही करता। मेरा तो यह कहना है कि अपने स्वाथ की दृष्टि से भी इसका अनुमोदन नही किया जा सकता। इस शान को निभाने के लिए हमे अपनी आत्मा की इतनी हत्या करनी पडती है कि हमम आत्माभिमान का नाम भी नही रहा।[1] हम अपने असामियो को लूटने के लिए मजबूर हैं। अगर अफसरो को कीमती-कीमती डालिया न दें तो बागी समझे जाए। शान से न रहें, तो कजूस कहलाए। प्रगति की जरा-सी आहट पाते ही हम काप उठते हैं और अफसरो के पास फरियाद लेकर दौडते हैं कि हमारी रक्षा कीजिये। हम अपने ऊपर विश्वास नही रहा, न पुरुषाथ ही रह गया। बस, हमारी दशा उन बच्चो की-सी है जिन्ह चम्मच से दूध पिलाकर पाला जाता है बाहर से मोटे, अन्दर से दुबल सत्वहीन और मुहताज।' मेहता उनके इस लम्बे भाषण को सुनकर यही कहते हैं "आपकी जबान म जितनी बुद्धि है, काश! उसकी आधी भी मस्तिष्क म होती।[2] और यही इस वग की सबसे बडी विवशता थी जिससे जमीदार मुक्ति नही प्राप्त कर पा रहा था। वे केवल उस दिन की इतजार कर रहे थे जब परिस्थितिया बदलेगी और वे इस व्यवस्था से मुक्त होगे।

शोषित वग

प्रेमचन्द साहित्य म ग्राम्य जीवन का यथातथ्य चित्रण हुआ है। प्रेमचद स्वय गाव की धरती पर पले थे। ग्राम्य जीवन के उनके अपने अनुभव थे। इसी

---

१ गोदान पृष्ठ ५८।

२ वही पृष्ठ ५९।

कारण ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों पर उन्होंने जो कुछ लिखा वह अनुभूति जन्य ही कहा जा सकता है। प्रेमचंद ने कृषक के शोषण के विभिन्न रूपों को देखा और यह भी जानना चाहा कि आखिर वे कौन-से ऐसे कारण हैं जो किसान का खुला शोषण करा रहे हैं। समाज स्पष्ट दो वर्गों में बटा दिखाई दे रहा था—एक शोषक दूसरा शोषित। यह सत्य था कि शोषक अपनी सत्ता का अनुचित लाभ उठा रहा था और शोषित वर्ग के प्रति अनुदार होकर अपनी सत्ता के संरक्षण में लीन था। इसके साथ यह भी नहीं भूला जा सकता कि किसान ने स्वयं उन परिस्थितियों का निर्माण किया था जो शोषक को प्रोत्साहित करती थी।

प्रेमाश्रम में प्रेमशंकर और कोई नहीं, स्वयं प्रेमचंद ही हैं जो किसानों की दुरवस्था पर विचार करते है। वे शोषण की समस्या का कारण ढूढ़ने का प्रयास करते हैं। वे अन्य शास्त्रवेत्ताओं की भांति कृषकों पर अपव्ययता, आलस्य अशिक्षा और कृषि के साधनों से अनभिज्ञता का दोषारोपण कर समस्या के विभिन्न कारणों को नहीं खोजते। वे जानते हैं कि कृषक उनसे कहीं अधिक जानते हैं। परिश्रम गहप्रबंध मितव्ययिता और आत्मसंयम किसान के पास इतना है कि वह अल्प और सीमित साधनों में अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करके जिस चातुर्य और कौशल का परिचय देते हैं वह स्वयं अपने आप में एक उदाहरण है। उनके विचार में उनकी दरिद्रता का उत्तरदायित्व उन पर नहीं बल्कि उन परिस्थितियों पर है जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है और ये परिस्थितियां क्या है? आपस की फूट स्वार्थपरता और एक ऐसी संस्था का विकास जो उनके पांव की बेड़ी बनी है। लेकिन जरा और विचार कीजिए तो तीनों टहनियां एक ही शाखा में फूटी हुई प्रतीत होंगी और यह वही संस्था है जिसका अस्तित्व कृषकों के रक्त पर अवलम्बित है।[१]

किसान स्वयं अपने वर्ग में मिटती सौहार्द भावना से परिचित हो चला था। वह स्पष्ट देख रहा था कि द्वेष वैमनस्य और ईर्ष्या की भावनाएं उसके वर्ग में पनप रही है। संगठन का अभाव और पारस्परिक वैमनस्य और प्रतिस्पर्धा की भावना ने शोषण भावना को प्रोत्साहित किया। प्रेमाश्रम उपन्यास किसानों की बढ़ती वैमनस्य भावना का मूर्त रूप है। जमींदार का चपरासी मनोहर से नाराज हो जाता है और सुक्खू चौधरी और दुखरन भगत स्थिति का लाभ उठा गौसखां से मिल जाते हैं। जमींदार घी के लिए रुपए एकत्रित करता है जो उचित नहीं है। गांव

---

१ प्रेमाश्रम पृष्ठ २१८।

के लोग जमींदार का विरोध करने के स्थान पर आपस म ही लडने लगते हैं।

मनोहर के पुत्र बलराज पर दरोगा अपना जाल फैलाता है। ऐसे समय सुक्खू चौधरी उस दिन का सपना देखने लगते हैं जब मनोहर के खेतो पर उनका हल चलगा।[1] मुक्तिमार्ग' कहानी म बुद्धू झींगुर के खेत म आग लगा देता है जिससे पूरे गाव की ऊख ही जलकर राख हो जाती है।

गोदान म होरी अपने भाइयो की ईर्ष्या का शिकार बनता है। होरी अपने द्वार पर गाय बाधकर परम प्रसन्न है। आज उसके जीवन म ऐसा अवसर आया है जब वह अपने सुख को अपने भाइयो के साथ बाटना चाहता है। वह अतीत की कडवाहट भूलकर हीरा के घर की ओर बढता है। वह हीरा को गाय देखने के लिए घर आन का निमत्रण देने जाता है पर बीच म ही वह हीरा की बात सुनकर रुक जाता है। शोभा को भाई पर पूण विश्वास है पर हीरा यही विश्वास किए है कि होरी न पसा बचाकर रखा था। सयुक्त परिवार म एक बकरी नही खरीदी गई और अब पछाई गाय ली है। वह शोभा से कह ही देता है—'बेईमानी का धन जसे आता है वसे ही जाता है। भगवान चाहेंगे, तो बहुत दिना गाय घर में न रहेगी।'[3] और अपने मन की जलन ईर्ष्या वह पुनिया को जहर देकर तृप्त करता है। होरी इस सत्य से परिचित है। वह धनिया से कह डालता है। इस सत्य को अकेले पचाना उसके वश की बात नही है। धनिया हतप्रभ सी इतना ही कह पाती है 'इस तरह क होते हैं भाई, जिन्ह भाई का गला काटने म भी हिचक नही होती।'[4] यह एक एसी घटना है जो होरी के भविष्य तक को प्रभावित करती है।

गाव की सहकारिता और बन्धुत्व की भावना भी स्वाथ पर बलिदान होने लगी। 'रगभूमि' इसी बलिदान की कहानी है। सूरदास गाव म औद्योगीकरण को रोकने के लिए प्राणपण स लगा हुआ है। सूरदास की भूमि पर गाववाला की गायें चरती ह। वह किसी भी मूल्य पर जान सेवक को अपनी जमीन नही देना चाहता। बजरगी भी भूमि न बेचने के पक्ष म है परन्तु भैरो चाहता है सूरे की भूमि बिक जाए। वहा पर कारखाना खुले। उसकी ताडी की बिक्री तो बढ ही जायेगी। वे दोनो आपस म ही लडने लगते हैं। एक-दूसरे का स्वाथ

---

१ प्रमाश्रम पष्ठ ६७।

२ मुक्तिमाग (मानसरोवर तीसरा भाग) पष्ठ २३५।

३ गोदान पृष्ठ ४५।

४ वही पृष्ठ ११२।

परस्पर टकरा उठता है।[1] गाव के सामूहिक जीवन मे क्रय विक्रय घुस आया, स्वार्थ घुस आया व्यक्तिगत हानि लाभ घुस आया और रुपए आना-पाई का हिसाब चल पडा।

एकता का अभाव उनकी जडें खोद चुका था।[2] कोई किसी का पक्ष नही लेता। सब अपनी ही सोचते हैं। एक दूसरे को बुरा बनवाने के लिए सब ही लगे रहते हैं। गाव म 'तहकीकात के अवसर पर सभी मालिक की निगाहा' म चढ जाना चाहते हैं। कौन उनके हित म कह रहा है और कौन अहित म' यह भी वे पहचानने म असमर्थ थ। सरकार और जमींदार उनके लिए होआ हैं। जमीदार के प्यादा के सम्मुख उनके प्राण ही निकल जाते हैं। मौन हो सब अत्याचार सह लेते हैं। लगता है जसे मुह म जीभ ही नही रही। यही सह लेने की प्रवृत्ति उनकी दुर्गति करा रही थी।

कृषक वग की अपनी आस्थाए मान्यताए और रीति रिवाज हैं जिनका अन्धानुकरण उनके जीवन का अश बन चुका है। इन परम्पराओ के निर्वाह के लिए वह ऋण लेता है। ऋण समस्या अपने व्यापक प्रभाव स किसान को जकड लेती है। उधार को किसान एक तरह स मुफ्त समझता है।[3] ईश्वर के प्रति आस्था पूवजन्म म विश्वास और भाग्यवादिता[4] न किसान को जस चारो तरफ स घेर

किसी नवीन आविष्कार का वर्णन देखते तत्काल उस पर लाल पेंसिल से निशान कर देते और अपने लेखों में उसकी चर्चा भी करते पर किसानों की सेवा वह इतनी ही कर पाते हैं। एक बार देवरत्न शर्मा ज़मीदार अपने इलाके में जाकर यह अनुभव करते हैं कि किसानों के हितों की रक्षा के लिए मुख्तार और पुलिस अधिकारियों से उनको दूर रखना होगा।[1]

'गोदान' के रायसाहब अमरपालसिंह सेमरी में रहते हैं। 'पिछले सत्याग्रह-संग्राम में उन्होंने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गये थे। तब से उनके इलाके में असामियों को उनके प्रति बड़ी श्रद्धा हो गई थी। यह नहीं कि इनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो या डाँड और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो पर यह सब बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवस्था के गुलाम थे। असामियों से वह हँसकर बोलते थे, यह क्या कम है? सिंह का काम तो शिकार करना है, अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठा बोल सकता तो उसे घर-बैठे मनमाना शिकार मिल जाता, शिकार की खोज में जंगल में न भटकना पड़ता।

रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाए रखते। उनकी नजरें और डालियाँ और कर्मचारियों की दस्तूरियाँ जैसी की तैसी चली जाती थीं। साहित्य और संगीत के प्रेमी थे ड्रामा के शौकीन, अच्छे वक्ता थे, अच्छे लेखक, अच्छे निशानेबाज। उनकी पत्नी को मरे आज दस साल हो चुके थे मगर दूसरी शादी न की थी। हँस-खेलकर अपने विधुर जीवन को बहलाते रहते थे।[2]

प्रेमचंद ने रायसाहब का जो खाका खींचा है वह ज़मींदार-वर्ग का पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर देता है। रायसाहब की करनी और कथनी में काफी अन्तर है। होरी के प्रति उनका जो स्नेह है वह निःस्वार्थ नहीं है। होरी को राजा जनक का माली बनना है। इसी का निमंत्रण देने के लिए वह होरी को स्वयं बुलाना चाहते हैं कि होरी स्वयं ही मालिक के यहाँ पहुँच जाता है। होरी को देखते ही रायसाहब प्रसन्न होकर कहते हैं 'तू आ गया होरी! मैं तो तुझे बुलाने वाला था। देख अबकी तुझे राजा जनक का माली बनना पड़ेगा। समझ गया न जिस वक्त श्री जानकी जी मंदिर में पूजा करने जाती हैं उसी वक्त तू एक गुलदस्ता लिए खड़ा रहेगा और जानकी जी को भेंट करेगा। गलती न करना और देख असामियों से ताकीद

१ उपदेश (मानसरोवर आठवां भाग) पृष्ठ २८२।

२ गोदान पृष्ठ १६।

करके वह देता कि सब के-सब सगुन करने आए।'[1] उनकी इस भक्ति भावना पर प्रकाश डालते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है—'अपने पिता से सम्पत्ति के साथ-साथ उन्होंने राम की भक्ति भी पायी थी और धनुष यज्ञ को नाटक का रूप देकर उसे शिष्ट मनोरंजन का साधन बना लिया था। इस अवसर पर उनके यार दोस्त हाकिम हुक्काम सभी निमन्त्रित होते थे और दो तीन दिन इलाके में बड़ी चहल-पहल रहती थी। रायसाहब का परिवार बहुत विशाल था। कोई डेढ़ सौ सदस्य एक साथ भोजन करते थे। कई चाचा थे दर्जनों चचेरे भाई, कई सगे भाई बीसियों नाते के भाई। एक चचासाहब राधा के अनन्य उपासक थे और बराबर वृन्दावन में रहते थे। भक्ति रस के कितने ही कवित्त रच डाले थे और समय समय पर उन्हें छपवाकर दोस्तों को भेंट कर देते थे। एक दूसरे चचा थे जो राम के परम भक्त थे और फारसी भाषा में रामायण का अनुवाद कर रहे थे। रियासत से सबके वसीके बंधे हुए थे। किसी को कोई काम करने की जरूरत नहीं थी।'[2] इसी भक्ति भावना की पूजा गाव के असामियों को करनी पड़ती है। रायसाहब होरी से अपना दुखड़ा रोते हैं और मानवता की बात भी करते हैं पर साथ यह भी कह देते हैं कि उन्हें उसके गाव से कम से कम पाच सौ की आशा है। ऐसी ही है रायसाहब की 'भक्ति' जो और कुछ नहीं असामियों के शोषण का ही एक तरीका है।

प्रेमचंद ने गोदान में जहा शोषित वर्ग की उन दुर्बलताओं का व्यापक चित्रण किया है जो उनके शोषण को प्रोत्साहित करती थी वहा उन परिस्थितियों का भी विस्तृत चित्रण किया है जिनमें शोषक घिरा हुआ था। वस्तुत शोषक भी उन परिस्थितियों का दास था जिसमें वह रह रहा था। 'गोदान' में रायसाहब इसी का जिक्र होरी से करते हुए कहते हैं—'समझ गया मैंने क्या कहा। कारकुन को तो जो कुछ करना है, वह करेगा ही लेकिन असामी जितने मन से असामी की बात सुनता है कारकुन की नहीं सुनता। हमें इन्हीं पाच सात दिनों में बीस हजार का प्रबन्ध करना है तुम्हारी हसी मैं बरदाश्त कर सकूगा। नहीं सह सकता उनकी हसी, जो अपने बराबर के हैं क्योंकि उनकी हसी में ईर्ष्या व्यंग्य और जलन है। और वे क्यों न हसेंगे ? मैं भी तो उनकी दुदशा और विपत्ति और पतन पर हसता हू, दिल खोलकर, तालियां बजाकर। सम्पत्ति और सहृदयता में बैर है।'

---

१ गोदान पृष्ठ १७।

२ वही पृष्ठ १७।

होरी रायसाहब की बातें सुनना है समझता है। रायसाहब की खोखली सत्ता का परिचय वह उनकी बातों से ही प्राप्त करता है। यह वर्ग आपस में उसी तरह द्वेष वमनस्य और फूट से घिरा हुआ है जैसे किसान। रायसाहब इस मनोवृत्ति का उद्घाटन करते हुए कहते हैं— हम भी दान देते हैं धर्म करते हैं। लेकिन जानते हो, क्या? केवल अपने बराबरवालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है विशुद्ध अहंकार। हम में से किसी पर डिग्री हो जाय कुर्की आ जाय, बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाय किसी का जवान बेटा मर जाय किसी की विधवा बहू निकल जाय किसी के घर में आग लग जाय, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाय, या अपने असामियों के हाथ पिट जाय तो उसके और सभी भाई उस पर हँसेंगे, बगलें बजायेंगे मानो सारे संसार की सम्पदा मिल गई हो और मिलेंगे तो इतने प्रेम से जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तयार हैं।'[1]

रायसाहब की सत्ता के कारण ही उनके दूर दूर के सम्बन्धी ऐश कर रहे हैं परन्तु कोई उनकी विवशता नहीं जानता। सब यही चाहते कि वे अन्धे हो जाए और उन्हें लूट लिया जाए और वे सब कुछ देखकर भी कुछ न कहें। वे अच्छी तरह जानते हैं कि ऐश के लिए पैसा असामियों से ही आता है। उन्हें आश्चर्य होता है शोषितों की आह उन्हें नष्ट क्यों नहीं कर देती! पर साथ ही स्थिति का स्वयं ही स्पष्टीकरण करते हुए वे कहते हैं—'उस हाहाकार से बचने के लिए हम पुलिस की हुक्काम की अदालत की वकीलों की शरण लेते हैं और रूपवती स्त्री की भांति सभी के हाथों का खिलौना बनते हैं। दुनिया समझती है हम बड़े सुखी हैं। हमारे पास इलाके, महल सवारियां, नौकर चाकर कर्ज वेश्याएं—क्या नहीं है? लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं अभिमान नहीं वह और चाहे कुछ हो आदमी नहीं। जिसे दुश्मन के भय के मारे रात को नींद न आती हो जो भोग विलास के नशे में अपने को बिलकुल भूल गया हो जो हुक्काम के तलवे चाटता हो और अपने अधीनों का खून चूसता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता। वह तो संसार का सबसे अभागा प्राणी है। साहब शिकार खेलने आएं या दौरे पर, मेरा कर्तव्य है कि उनकी दुम के पीछे लगा रहूं। उनकी भौंहों पर शिकन पड़ी और हमारे प्राण सूखे। डालियों और रिश्वतों तक तो खैर गनीमत है हम सिजदे करने को भी तयार रहते हैं। मुफ्तखोरी ने हमें अपंग बना दिया है हम अपने पुरुषार्थ पर

---

१ गोदान पृष्ठ १७।

लेशमात्र भी विश्वास नही। केवल अफसरो के सामने दुम हिला हिलाकर किसी तरह उनके कृपापात्र बन रहना और उनकी सहायता स अपनी प्रजा पर आतक जमाना ही हमारा उद्यम है। पिछलगुआ की खुशामद न हम इतना अभिमानी और तुनकमिजाज बना दिया है कि हमम शील विनय और सवा का लोप हो गया है।[1]

जमीदार अपनी स्थिति स बचकर निकलना चाहता है पर निकल नहीं पाता। वह कितना अकमण्य, विलासी और आलसी हो गया है इसका भान उस भी है। सरकार यदि उनस इलाके छीनकर उन्हे रोजी के लिए मेहनत करना सिखा द तो उनके साथ महान उपकार करे पर परिस्थितिया बता रही हैं कि सरकार भी उनकी रक्षा नही करगी क्योकि अब सरकार का उनस कोई स्वाथ पूरा नहीं होता। लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द इस वग की हस्ती मिट जाने वाली है। यह उनके उद्धार का दिन होगा। जमीदार परिस्थितियो के शिकार बन हुए हैं। य परिस्थितिया ही उनका सवनाश कर रही है। जब तक सम्पत्ति की यह बडी उनके परो स न निकलेगी तब तक यह अभिशाप उनके सिर पर मडराता रहगा और तब तक मानवता का वह पद उन्हे नही मिलगा जिस पर पहुचना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।[2]

मानवता की बात करने वाले जमीदार रायसाहब होरी से शगुन के रुपये लेते हैं, बगार म काम लेते है। होरी पर डाड लगता है तो उसम भी अपना हिस्सा मागते है। उन्हे गव है वे व्यवहार मे चाहे कुछ करें पर विचारो म उनस आगे बढ गय हैं। वे स्वय उस वातावरण म पले थ जहा राजा ईश्वर और जमीदार ईश्वर का मत्री माना जाता था। उनके पिता भी प्रजा-पालक थे परन्तु अधिकार के नाम पर वह कौडी का एक दात भी फोडकर देना न चाहते थे। वे स्वय विचारो म किसानो के हितैषी है पर इसका मतलब यह तो नही कि वे अपने अधिकारो को छोड दें।

रायसाहब हितैषी हैं किसानो के—परन्तु विचारो म व्यवहार म नही। वे स्वय यह स्वीकार करते हैं कि किसानो को अधिकार मिलने चाहिए। केवल सद्भावनाओ से उनकी स्थिति सुधरेगी नही, सद्भावना रखने से स्वाथ नही छूट सकते। व चाहते हैं शासन और नीति के बल पर उनके पूरे वग को स्वाथ छोडने

---

१ गोदान, पृष्ठ १६।
२ वही पृष्ठ १६।

म और जकड़ता है गोबर उन्हीं का विरोध करता है। धनिया भी होरी की इस दयनीय स्थिति का विरोध करती है।

होरी पहली बार उस समय दिखाई देता है जब वह रायसाहब से मिलने जाता है और चारों तरफ लोग उसका आदर करते हुए राम राम करते हैं। होरी के अन्दर बैठी सम्मान-लालसा इस आदर से तृप्त होती है। वह पाँच बीघे का किसान है। उसका यह सम्मान केवल इसलिए है कि वह मालिक रायसाहब से मिलता जुलता रहता है। रायसाहब उसे अपना दुखड़ा सुनाते हैं, साथ उससे यह भी कह देते हैं कि उसके गाँव से उन्हें पाँच सौ की आशा है। होरी को जनक का माली होने का गौरव मिलेगा और इसके लिए उसे शगुन के रुपये भी जुटाने पड़ते हैं। वह चिन्ता से घर लौटता है। गोबर खेत में ऊख गोड़ता है। रूपा सोना भी उसका साथ देती है। होरी यह सब देखकर गोबर से कहता है— 'दुपहर हो गई क्या काम ही करते रहोगे। गोबर इसलिए काम में लगा हुआ था कि वह दिखाना चाहता था उसे खाने पीने की फिक्र नहीं है।

गोबर होरी का इस तरह रायसाहब के यहाँ जाना पसन्द नहीं करता। वह अपने विद्रोह को अधिक देर दबा नहीं सकता। वह होरी से पूछ ही लेता है यह तुम रोज रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है बेगार देनी ही पड़ती है नजर-नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्या सलामी करो?' होरी के मन में भी यही भाव थे परन्तु बेटे के इस विद्रोह को दबाना जरूरी था। बोला—"सलामी करने न जाए तो रहें कहाँ? भगवान ने जब गुलाम बना दिया है तो अपना क्या बस है? यह इसी सलामी की बरकत है कि द्वार पर मड़ैया डाल ली और किसी ने कुछ न कहा। तलैया से कितनी मिट्टी हमने खोदी, कारिन्दा ने कुछ नहीं कहा। अपने मतलब के लिए सलामी करने जाता हूँ।'[1] पर गोबर यही सोचता है कि बड़े लोगों की हाँ में हाँ मिलाने का आनन्द मन का लालच ही होरी को रायसाहब के पास खींचकर ले जाता है। पर होरी जानता है ये सब बातें तब तक ही हैं जब तक सिर पर नहीं पड़ती। पहले वह भी गोबर की तरह सोचता था पर अब मालूम हुआ कि जब अपनी गर्दन दूसरों के पैरों के नीचे दबी हुई है तो अकड़कर निबाह नहीं होता।

गोबर का क्रोध शान्त नहीं होता। घर पहुँचकर होरी धनिया को रायसाहब

---

1 गोदान पृष्ठ २० २१।

की हजार चिन्ताओ की बात कर उनके दु खी होने की बात कहता है तो गोबर व्यग्य से कहता है—'तो फिर अपना इलाका हम क्यो नही दे देते ? हम अपने खेत बल हल कुदाल—सब उन्ह देने को तयार है। करेंगे बदला ? यह सब धूत्तता है, निरी मोटमरदी। जिस दु ख होना है वह दजना मोटरें नही रखता, महला म नही रहता हलवा पूरी नही खाता और न नाच रग म लिप्त रहता है। मजे से राज का सुख भोग रहे है उस पर दु खी हैं।'[1] होरी गोबर से बहस करना नही चाहता। वह अभी रायसाहब की उन बातो को नही भूला था जो रायसाहब ने अपनी विवशता क रूप म बताई थी। वह उनका पक्ष लेकर गोबर को समझाना चाहता है कि रायसाहब पर कौन-कौन सी जिम्मेदारिया हैं जिनको पूरा करने की चिन्ता उन्ह सताये रहती है पर तु गोबर प्रतिवाद करता है 'यह सब कहने की बातें है। हम लोग दाने दाने को मोहताज हैं देह पर साबित कपडे नही हैं, चोटी का पसीना एडी तक आता है तब भी गुजर नही होता। उन्ह क्या। मज से गद्दी मसनद लगाए बठे हैं। सकडो नोकर चाकर हैं। हजारो आदमियो पर हुकूमत है। रुपए न जमा होते हो पर सुख तो सभी तरह का भोगते हैं।'[2]

होरी के लिए गोबर की बात अनोखी है। कहा रायसाहब और कहा वे लोग ? छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बडी तपस्या से मिलती है। ये सब पूवज मो का ही फल है कि वे आन द भोग रहे हैं और हम दु ख उठा रहे है। गोबर क लिए ये बातें तत्वहीन है। ये बातें मन को समझाने के लिए ही हैं। भगवान सबको बराबर बनाता है पर जिसके हाथ म लाठी है वह गरीबो को कुचलकर बडा आदमी बन जाता है। होरी उनको बडा केवल इसलिए नही मानता कि वे जमीदार हैं। वह उनको इसलिए भी भक्तिभाव स देखता है कि वे अब भी चार घटे रोज भगवान का भजन करते हैं। गोबर इसे ढोग समझता है। होरी यह समझता है कि यह पूजा-पाठ रायसाहब सब अपने बल पर करते है पर तु गोबर चिढकर कहता है 'नहा किसानो के बल पर और मजदूरो के बल पर। यह पाप का धन पचे कसे ? इसलिए दान धम करना पडता है। भगवान का भजन भी इसीलिए होता है। भूखे-नगे रहकर भगवान का भजन करें तो हम भी देखें। हम कोई दोनो जून खाने को दे तो हम आठो पहर

---

१ गोदान पृष्ठ २२।
२ वही पृष्ठ २१।

भगवान का जाप ही करते रह । एक दिन खेत म ऊख गोडना पडे तो सारी भक्ति भूल जायें ?"[1] पर होरी गोबर के मुह लगना नही चाहता ।

होरी गोबर के किसी तक का जवाब नही दे पाता। पर गोबर जानता है, 'होरी का यही धर्मात्मापन उसकी दुगति करा रहा है ।" गोबर ही नही, धनिया भी होरी के स्वभाव से दु खी है। होरी जहा आर्थिक वैषम्य की चपेट मे आ गया है, वह सामाजिक कुरीतियो से भी कुचला गया है। गोबर यदि रायसाहब की सत्ता का विरोध करता है तो धनिया उस समाज का विरोध करती है जिसका भय होरी को डरा रहा है। गोबर झुनिया को घर छोडकर शहर भाग जाता है। गोबर के अपराध का दड होरी को चुकाना पडता है। होरी पर डाड लगता है। पच म परमसर रहत हैं इसलिए होरी सब सह लेगा परन्तु धनिया विरोध करती है— 'मैं एक दाना न अनाज दूगी, न एक कौडी डाड। जिसम बूता हो चलकर मुझसे ले। अच्छी दिल्लगी है। सोचा होगा डाड के बहाने इसकी सब जायदाद ले लो और नज़राना लकर दूसरा को दे दो। बाग बगीचा बेचकर मजे स तर माल उडाओ हम नही रहना है बिरादरी मे। बिरादरी मे रहकर हमारी मुक्ति न हो जायेगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खायेंगे।"[2] पर होरी सारा अनाज ढो-ढोकर पचो के यहा पहुचाता है। जब डेढ दो मन जौ रह गया तो धनिया न होरी का हाथ पकड लिया और बोली—'अब रहने दो। ढो तो चुके बिरादरी की लाज। वह बच्चो का भी ध्यान रखती है पर होरी अन्धविश्वास और भीरु मन स एक टोकरी अनाज भी अपने घर मे रखना नही चाहता। धनिया जानता है पच परमेसर नही राक्षस हैं जिनस दया की आशा नहा की जानी चाहिए। अकेले होरी न नही उसने और उसके बच्चो ने भी खेतो मे काम किया है। होरी के पास धनिया की किसी बात का उत्तर नही है। वह दड की रेप राशि घर गिरवी रखकर चुकाता है। रात को होरी आकर कहता है— अब हुक्का खुल गया। बिरादरी न अपराध क्षमा कर दिया। तो धनिया होठ चबाकर कह उठती है 'न हुक्का खुलता तो हमारा क्या बिगडा जाता था। चार पाच महीने नही किसी का हुक्का पिया तो क्या छोटे हो गए। मैं कहती हू तुम इतने भोदू क्यो हो? मैं पूछती हू तुम्हारे मुह म जीभ न थी कि उन पचो स पूछते तुम कहा के बडे धर्मात्मा हो जो दूसरो पर डाड लगाते फिरते हो, तुम्हारा

---

१ गोदान पृष्ठ २३।
२ वही पृष्ठ १३१।

तो मुह देखना भी पाप है। 'होरी उसको डाटकर शात करना चाहता है पर वह उत्तेजित होकर कहती है कौन सा पाप किया है, जिसके लिए बिरादरी स डरें? किसी की चोरी की है किसी का माल काटा है? मेहरिया रख लना पाप नही है। हा रख के छोड देना पाप है। आदमी का बहुत सीधा होना भी बुरा है। उसके सीधेपन का फल यही होता है कि कुत्ते भी मुह चाटने लगते है।[1]

होरी क विरोध म गोबर और धनिया का प्रबल स्वर है। दोना ही उसके धर्मात्मापने से दुखी हैं। होरी परिस्थितयो के साथ समझौता करता चलता है। वस्तुत धनिया और गोबर की विरोधी विचारधारा तत्कालीन परिस्थितियो क विरोध म उठने वाला वह स्वर है जो अभी बुलन्द नही हुआ है। होरी का शोषण प्रत्येक धरातल पर होता है। उसका धमभीरु मन हर जगह पराजित है। पूवजन्मा का फल भाग्यवादिता और धार्मिक अन्धविश्वास उसको इस तरह जकड है कि वह डाड को सहता है। यह एक ऐसा बडा दड था जिसकी क्षतिपूर्ति बाद म सभव नही हुई। धम क नाम पर ही भोला उसका बैल ले जाता है। यह धम उसे ऐसा डराए हुए है कि वह अपना हित भी भूल जाता है। मातादीन भी धम के नाम पर उसका शोषण करते हैं।

गोवर शहर से लौटकर आता है। अब वह पहले जसा सीधा सरल युवक नही रहा था। होरी को दातादीन के खेतो म मजूरी करनी पडती है। अब वह किसान नही, मजूर है। दातादीन काम का काम लेत हैं दुवचन अलग बोलते हैं। धनिया ईख होती है। दातादीन उससे भी जल्दी काम करने क लिए कहत हैं। धनिया चुप नही रहती। त्योरी बदलकर कहती है क्या जरा दम भी न लेने दोगे महाराज! हम भी तो आदमी हैं। तुम्हारी मजूरी करने स बल नही हो गए। जरा मूड पर एक गठा लादकर लाओ तो हाल मालूम हो।' पर दातादीन पस दे रहे हैं फिर आराम करने की गुजाइश कहा? मातादीन आखें लाल करके कहते हैं जान पडता है अभी मिजाज ठडा नहीं हुआ। अभी दाने दाने को मोहताज हो! अगर यही हाल रहा ता भीख भी मागोगी।' धनिया उनकी वास्तविकता जानती है। भट कहती है "भीख मागो तुम जो भिखमगा की जात हो। हम तो मजूर ठहर जहा काम करेंगे वहीं चार पैसे पायेंगे।'[3] धनिया उनका धम रूप

१ गोदान पृष्ठ १३३।
२ वहा पृष्ठ १३४।
३ वही पृष्ठ २ ७।

लिया था। उनका धर्मात्मापन उनकी दुर्गति करा रहा था।[1] निरन्तर शोषण ने उनको इतना कुचल डाला कि सिर उठाने की सामर्थ्य भी उनमें न रही। शोषक यही सोचने लगा कि ये सीधे सादे किसान हैं। जैसा चाहो वैसा व्यवहार करो। आदमी का सीधापन भी उसकी दुर्गति का कारण बनता है। सीधेपन का फल यही होना है कि कुत्ते भी मुह चाटने लगते है।' गुलामी ने उनको नामर्द बना दिया है।[2]

किसान मर्यादा के पीछे अपने को भी बलि चढ़ा सकता है। खेती की अपनी मरजाद है[3] द्वार पर गाय बांधना पुण्यों का प्रताप है, द्वार पर[4] बैल बधे घर की शोभा बढ़ाते हैं[5] कुश कन्या देना बिरादरी में हेटी कराना है—[6] ऐसी कुछ किसान की अपनी मान्यताएं थी जिनके लिए वह ऋण लेता और न चुकाने की स्थिति में आर्थिक विपन्नता का सामना करता।

'गोदान' में रामसेवक किसानों की दुर्गति का रहस्य खोलते हुए स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं 'संसार में गऊ बनने से काम नही चलता। जितना दबो उतना ही लोग दबाते हैं। थाना पुलिस कचहरी अदालत सब हैं हमारी रक्षा के लिए लेकिन रक्षा कोई नही करता। चारों तरफ लूट है। जो गरीब है, बेकस है उसकी गरदन काटने के लिए सभी तयार रहते है। भगवान न करे कोई बेईमानी करे। यह बड़ा पाप है लेकिन अपने हक और न्याय के लिए न लड़ना उससे भी बड़ा पाप है। आदमी कहा तक दबे ? यहा तो जो किसान है वह सबका नरम चारा है। यह सब हमारे दब्बूपन का फल है। 'गोदान' में मेहता भी किसानों की सरलता से दुःखी होकर कहते हैं 'काश! ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते तो यों न ठुकराए जाते। देश में कुछ भी हो क्रान्ति ही क्यों न आ जाय इनसे कोई मतलब नही। कोई दल उनके सामने सबसे के रूप में आए उसके सामने सिर झुकाने को तयार। उनकी निरीहता जड़ता की हद तक पहुंच

---

१ गोदान पृष्ठ २३।
२ वही पृष्ठ ३२८ ३३४ १४२।
 समर-यात्रा (मानसरोवर सातवा भाग) पृष्ठ ७१।
३ गोदान पृष्ठ २२।
४ वही पृष्ठ ११।
५ सभ्यता का रहस्य (मानसरोवर चौथा भाग) पृष्ठ १६६।
६ गोदान पृष्ठ २५८ २६६।
७ वही पृष्ठ ३५६।

गई है जिसे कठोर आघात ही कमण्य बना सकता है। उनकी आत्मा जैसे चारो ओर से निराश होकर अब अपने अन्दर ही टाँगें तानकर बठ गई है। उनम अपने जीवन की चेतना ही जसे लुप्त हो गयी है।'[1]

कृषक परिस्थितियों का दास है। उनम वह समझौता-सा कर लेता है। ईश्वर प्रदत्त मानवीय गुण उसके लिए घातक सिद्ध होते हैं। उसके जीवन का उद्देश्य इतना ही-सा है कि वह परिस्थितियो म सतुष्ट रहे। वह अपने म निहित शक्ति को भूल गया और जब तक यह अपने म निहित शक्ति को पहचानेगा नही शोषक इसी तरह उसका शोषण करते रहेगे।

तत्कालीन परिस्थितियो के प्रति कृषक की विद्रोही भावना

समय के साथ शोषण की समस्या जटिल होती गई। गाधीजी की अहिंसा समय की आवश्यकताओ के अनुकूल सिद्ध न हो सकी। अहिंसा के विरोध म हिंसा का स्वर उभरा। प्रेमचद समसामयिक परिस्थितियो को अपने साहित्य म मूर्त करते चले थे। इसी कारण उनके 'कमभूमि' और 'रगभूमि' उपन्यासो म जहा गाधीवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई वहा 'प्रेमाश्रम' म साम्यवाद का स्वर उभरा। 'गोदान' म कोई वाद नही है। केवल स्थिति है—समाधान नही। उनके उपन्यासो को कालक्रम की दृष्टि से देखें तो विचारधारा म एक क्रम नही दिखाई देगा। उनकी विचारधारा के सम्बन्ध म निश्चित धारणा 'गोदान' और उसके बाद *उनके अपूर्ण उपन्यास 'मगलसूत्र' के अध्ययन के उपरान्त ही सभव है।*

'प्रेमाश्रम' उनका पहला उपन्यास है जिसम ग्राम्य-जीवन का विस्तृत चित्रण हुआ है। इसम जमीदारो की तीन पीढिया है और तीन रूप। यहा जनता का खुला शोषण है परन्तु विरोध करनेवाला केवल बलराज है जो नवीन चेतना का प्रतीक है। वह रूसी क्रान्ति से प्रभावित है। वह 'प्रेमाश्रम' म साम्यवाद की माग लेकर आया है। वह परिस्थितियो से घिरा हुआ है। उसके चारो तरफ का वातावरण फूट वमनस्य और प्रतिशोध का लहलहाता हुआ वन है जहा कीट पतग (प्रेमाश्रम म चित्रित सरकारी कमचारियो का व्यग्यात्मक चित्रण) स्वेच्छा से *विचरण करते है। वह उस वातावरण से निकलकर भाग जाना चाहता है।* वह यह भी जानता है कि वह अकेला इस सपूर्ण व्यवस्था का विरोध नही कर सकता पर फिर भी वह प्रयत्नशील बना रहता है।

---

१ गोदान पृष्ठ ३१३।

जमींदार के कर्मचारी गाव म नित-नयी आज्ञा प्रसारित करते हैं। किसान जमींदार की भूमि जोतता है इसलिए उसकी आज्ञा मानना परमावश्यक है। जमींदार के चपरासी कठोरता स आदेशा का पालन करवाते हैं। बलराज का पिता मोहन वद्ध हो गया है परन्तु वह अत्याचार को सहन नहीं कर पाता। वह कह ही देता है, भूमि जोतत हैं तो क्या लगान भी तो दे देत हैं। जब कौडी-कौडी लगान चुकाना पडता है तो किसी की घौस क्या सही जाए? कोई किसी का देवल नहीं। न जमींदार होआ है न कारिन्दा कोई काटू।'[1] पिता का विद्रोह बलराज म और भी तीव्र हो जाता है। मौन रहकर वह अत्याचार सहना नही चाहता। वह इट का जवाब पत्थर स देना चाहता है। अत्याचार का देखकर उसकी आत्मा धिक्कार उठती है। "मालूम होता है किसी के मुह म जीभ ही नही है। तभी तो यह दुगति हो रही है।'[2] पिता और पुत्र दोनो एक साथ अन्याय का विरोध कर यह दिखा देना चाहते हैं कि गाव म सब के-सब भौंड' नही हैं।[3] मनोहर अपना स्थिति से छटपटाता है। उसकी स्थिति उस रोगी जसी है जो अपन रोग को असाध्य देखकर पथ्य कुपथ्य की बेडिया को तोडकर मृत्यु की ओर दौड पडता है। बलराज की स्थिति पिता से भिन्न है। वह मृत्यु नहीं उपचार चाहता है। अखबारा म वह रूसी क्रांति के सम्बन्ध म पढकर अपनी शक्ति से परिचित होना है। वह आशा करता है एक दिन रूस की भांति भारत म भी काश्तकारा और मजदूरा का राज्य स्थापित होकर ही रहगा। वह शोषका को जबरा' समझता है जो गरीबा की गदन दबाता है। उसका मन करना है इस जबरे के दात उखाड दे पर वह विवश अकेला कुछ नहीं कर पाता।[4]

गौसखा क अत्याचार गाव म फैलते जाते हैं। मनोहर और बलराज क मन का विद्रोह बढता जाता है और फिर एक दिन गौसखा की हत्या कर दत हैं। गौस खा की हत्या बलराज और मनोहर की व्यक्तिगत समस्या का समाधान नही है। वस्तुत यह समस्या मनोहर और बलराज की नहीं अपितु उस शोषित-वग की है जो शोपण की चक्की म पिस रहा है। सब इस कृत्य की निन्दा करत हैं केवल

---

१ प्रमाश्रम पृष्ठ ५६।
२ वही पृष्ठ ५३।
३ वही पृष्ठ ११।
४ वही पृष्ठ ११ ६६।
५ वही पृष्ठ ८४।

कादिर (गाधीवादी सिद्धान्तो की समर्थक) है जो उसके पौरुष की प्रशसा करते थकता नहीं। मनोहर और बलराज कानून की दृष्टि म दडित होते हैं। मनोहर ग्लानि से आत्महत्या कर लेता है। बलराज का विद्रोही मन जेल के सीखचो म कराहकर रह जाता है। दोनो ही दडित होते हैं परन्तु इस कृत्य ने उस विद्रोह का सकेत दे दिया जो शोषितो के अन्तर मे जन्म ले चुका था।

प्रेमचद ने 'प्रेमाश्रम' म बलराज को विद्रोही स्वर दिया किन्तु यह स्वर गूजता कि उससे पहले ही उसका गला घोट दिया गया। 'रगभूमि' म गावो म फलती औद्योगिक सभ्यता का चित्रण हुआ है। सूरदास गाधीवाद का प्रतीक है। वह सरकार की अनीति का विरोध करता है परन्तु यह विरोध आत्मबल के आधार पर करता है। सरकार के पास मारने का बल है तो उसके पास मरने का। 'वह एक आदर्श सत्याग्रही है लेकिन राजनीतिक आन्दोलन के सीमित अर्थ म नही जीवन की एक समग्र दृष्टि से व्यापक अभिप्राय म।'[१] सूरदास का बलिदान होता है। समस्या ज्यो की त्यो रहती है। 'कायाकल्प' और 'कर्मभूमि' म आन्दोलन होता है—विद्रोह होता है, परन्तु यहा जनता का नेतृत्व चक्रधर अमर सुखदा और डा० शान्तिकुमार आदि करते हैं जो गाधीवादी विचारधारा से ही प्रेरित हैं। यह नेतृत्व वास्तविक नेतृत्व नही है। इसके नेता ग्रामीण जनता म से नही आये हैं। ये केवल तत्कालीन विचारधारा क समर्थक ही प्रतीत होते हैं। कृषक की वास्तविक समस्या क्या है इसका उन्होने स्वय अनुभव नहीं किया। इसीसे व इसका समाधान राजनीति म ढूढते हैं जो बाद म असफल सिद्ध होता है। कर्मभूमि म हुए बलिदान जनता की जागृति क लिए जरूर आवश्यक थ।[२]

'गोदान' तक आते आते शोषण की समस्या और जटिल हो गई। अब तक प्रेमचद युग-परिस्थितियो के अनुसार समस्या को प्रस्तुत करते रहे थे परन्तु 'गोदान' के रचनाकाल तक उन्होने अनुभव कर लिया कि तत्कालीन राजनीतिक विचारधाराए किसी समस्या का समाधान नहीं द सकती। इसी कारण 'गोदान' म केवल व परिस्थितिया हैं जिनम किसान दम तोड रहा है। 'गोदान' म होरी परिस्थितियो म जकड रहा है किन्तु उसी का पुत्र गोबर चेहरे पर असतोष और विद्रोही भाव लिए हुए है। होरी शान्त है क्योकि वह जान गया है स्थिति उसक वश म नहीं है पर गोबर विद्रोही स्वभाव का है। होरी जिन जिन स्थितियो

---

१ कलम का सिपाही पृष्ठ ३२७।
२ कर्मभूमि पृष्ठ ४०३।

नहीं भिखमगा रूप ही जानती है।

होरी काम का बोझ सह नहीं पाता और दातादीन के खेत म ही अचेत हो जाता है। होश आन पर उसे घर ले जाया जाता है। इसी समय गोबर आता है। धनिया घर की स्थिति उनमे छिपाना चाहती है पर झुनिया गोबर को सब कुछ बता देती है कि किस तरह भोला उसके दोनों बल ले गया, किस तरह डाड लगा। गोबर सुनकर उत्तेजित हो जाता है—"द्वार पर से बल खोल ले जाए। यह डाका है खुला हुआ डाका। तीन-तीन साल को चले जाएगे तीनो। यों न देंगे तो अदालत से लूगा। सारा घमड तोड दूगा वह एक एक को समझूंगा। पचो को उस पर डाड लगाने का अधिकार क्या ? अगर इसी बात पर वह फौजदारी म दावा कर दे तो लोगो क हाथों म हथकडिया पड जाए।[1] उसका जी चाहता है कि लाठी उठाए और पटेश्वरी, दातादीन, झिंगुरी—सब सालो को पीटकर गिरा दे और उनके पट से रुपए निकाल ले।

गोबर घर स तयार होकर सबसे लडने क लिए निकलता है। वह किसी से दुआ सलाम नहीं करता। वह मानो दिखाना चाहता है कि वह किसी को कुछ नहा समझता। वह झिंगुरीसिंह के पूछने पर कहता है, मैं लखनऊ गुलामी करने नहीं गया था। नौकरी है तो गुलामी। मैं व्यापार करता था।[2] वह अपनी कमाई से ठाकुर को हतप्रभ करना चाहता है। ठाकुर अपन पुत्र को उसके साथ शहर भेजना चाहता है तो वह अभिमान से हसकर कहता है मैं भवानी को किसी के गल बाध तो दू लकिन पीछे इन्होने कहीं हाथ लपकाया तो वह तो मेरी गदन पकडेगा। ससार म इलम की कदर नहीं है, ईमान की कदर है।[3] वह ठाकुर को तमाचा लगाकर आग बढता है तो दातादीन को ठाकता है। वह भी मातादीन को शहर भेजने को कहत हैं तो गोबर कहता है 'तुम्हारे घर म किस की कमी महाराज, जिस जजमान के द्वार पर जाकर खडे हो जाओ कुछ न कुछ मार ही लाओगे। जनम म लो मरन मे लो, सादी म लो, गमी म लो। खेती करते हो लेन देन करते हो दलाली करत हो किसी से भूल-चूक हो जाय तो डाड लगाकर उसका घर लूट लेते हो इतनी कमाई स पेट नहीं भरता ? क्या करोगे बहुत-सा धन बटोरकर ? कि साथ ले जाने की कोई जुगुत निकाल ली है ?'[4]

---

१ गोदान पष्ठ २१२।
२ वही पष्ठ २१२।
३ वही पृष्ठ २१४।
४ वही पष्ठ २१४।

गोवर की हुक्डी से युवा वग उसका भक्त बन जाता है। वह भाला स भी बदला लगा। उसके सामन कोई उसके द्वार पर स गोई खोलता तो तीना को जमीन पर सुला देता। यह सब होरी के गऊ होन का फल है। वह होना तो बिरादरी को भी देख लेता। न्याय यह नही है जो होरी को मिला है। वह होरी से पूछता है—'बिरादरी से क्या मिला? 'हुक्का पानी सब तो था, बिरादरी म आदर भी था, फिर उसका ब्याह क्या नही हुआ? केवल इसलिए कि घर म रोटी न थी। रुपए हो तो न हुक्का पानी का काम है, न जात बिरादरी का। दुनिया पसे की है हुक्का पानी कोई नही पूछता।"[1] होरी वठा वठा सोचता है गोवर की अक्ल जसे खुल गई है। कैसी बेलाग बात कहता है। उसकी वक्रबुद्धि ने होरी के धम और नीति को परास्त कर दिया।"[2] वह भोला के यहा जाकर भी नीति से काम लेता है। अपन रोब से वह भोला को प्रभावित करता है। भोला के यहा से जब वह लौटता है तो गोई उसके साथ थी और भोला यह स्वीकार कर चुके थे, 'बिरादरी का ढकोसला है नही तो तुमम हमम कौन भेद है!'[3]

होली पर गोबर गाव के ठकदारो की जमकर छीछालेदर करता है। परिणाम यह होता है कि दातादीन मन ही मन वर बाध लेते है। होरी या तो उनके यहा मजदूरी करे या उसका पसा लौटा दे—वह सीधी बात जानते हैं पर गोवर डाट देता है, 'कसी चाकरी और किसकी चाकरी? यहा तो कोई किसी का चाकर नही। सभी बराबर हैं। अच्छी दिल्लगी है। किसी को सौ रुपए उधार दिए और उसके सूद म जिदगी भर काम लेते रहे। मूल ज्यो का त्यो। यह महाजनी नही खून चूसना है तुम्ह लेना हो तो लो नही अदालत से लेना इसी तरह तुम लोगो ने किसानो को लूट लूटकर मजूर बना डाला और आप जमीन के मालिक बन वठे।"[4]

गोबर न्याय लेकर रहेगा परन्तु होरी का भीर मन धम के नाम दातादीन के पर पकड लेता है। गोबर के मन में पिता के प्रति केवल तिरस्कार है तुम्ही लोगो ने तो इन सबो का मिजाज बिगाड दिया है। तीस रुपए दिए अब दो सौ रुपए लेगा और डाट ऊपर से बताएगा और तुमसे मजूरी कराएगा और काम

---

१ गोदान पष्ठ २१६।
२ वही पष्ठ २१६।
३ वही पष्ठ २१६।
४ वही पष्ठ २२२।

कराते-कराते मार डालेगा।"[1] गोबर के इस कथन में भविष्य का सत्य बोलता है।

प्रेमचंद होरी और गोबर के माध्यम से बता देना चाहते थे कि भावी पीढ़ी न्याय के लिए लड़ेगी परन्तु वर्तमान पीढ़ी को न्याय तब ही मिलेगा जब वह भावी पीढ़ी के साथ सहयोग करेगी और अपनी दुर्बलताओं को पहचानकर उन्हें छोड़ने का प्रयास करेगी। ऊपर जितने भी प्रसंग आए हैं उनमें होरी को न्याय दिलाने के लिए कोई न कोई उसके साथ है परन्तु एक धर्म ऐसे उसके आड़े आता है कि वह ऐसे एक दंड धर्म के नाम पर स्वीकार कर लेता है जिनका कोई आधार नहीं। यह होरी है जो आश्रय पाकर भी अपनी स्थिति से उबरना नहीं चाहता। वह गोबर से भी यही कहता है, 'जब तक मैं जीता हूं मुझे अपने रास्ते चलने दो। जब मैं मर जाऊँ तो तुम्हारी जो इच्छा हो वह करना।'[2] इस स्थिति में गोबर को लगता है वह गलती पर था जो बीच में बोला। वह अपने हाथों अपने पांव पर *कुल्हाड़ी नहीं मारेगा। वह जानता है पिता पर ऋण का बोझ इसी तरह बढ़ता* रहेगा। होरी लगान दे देता है पर रसीद नहीं लेता। यह उसकी मूर्खता और अज्ञान ही है। गोबर पिता के मामले में बोलना नहीं चाहता पर नोखेराम का अन्याय नहीं देख पाता। वह नोखेराम को उन्हीं के यहां जाकर ललकार कर कहता है 'अच्छी बात है आप बेदखली दायर कीजिए। मैं अदालत में तुमसे गंगाजली उठवाकर रुपए दूंगा। इसी गांव से एक सौ सहादतें दिलाकर साबित कर दूंगा कि तुम रसीद नहीं देते। सीधे-सादे किसान हैं कुछ बोलते नहीं तो तुमने *समझ लिया कि सब काठ के उल्लू हैं।'*

गोबर की वाणी में सत्य का बल था। नोखेराम की दुर्बल आत्मा लज्जित हो गई। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूंगा हो जाता है। वही स्थिति होरी की थी पर गोबर अपनी शक्ति को पहचानकर बोलता है। घर आकर पिता की खबर लेता है। स्वाभाविक भीरु बूढ़ा होरी रुआंसा हो जाता है। गोबर घृणा से कहता है 'तुम तो बच्चों से भी गए-बीते हो जो बिल्ली की म्याऊं सुनकर चिल्ला उठते हैं। कहां कहां तुम्हारी रक्षा करता फिरूंगा।'[3]

पिता-पुत्र में विरोध बढ़ता है। गोबर नए युग की आवाज है। धर्मभीरु कायर, डरपोक होरी की नीति से उसका ताल मेल बैठना कठिन होता है। गोबर

---

१ गोदान पृष्ठ २२३।
२ वही पृष्ठ २२३।
३ वही पृष्ठ २२६।

परिवार-सहित शहर चला जाता है। लगान के रुपए वह दे जाता है और होरी से कह भी देता है कि वह किसी से ऋण न ले। यहा लगता है होरी जैसे अपनी परिस्थितियो को पकडकर बैठा है और उसकी जिद् है कि वह इन स्थितियो में मरकर रहेगा। कोई चाहेगा तब भी इनके बाहर नही आएगा। होरी सबकी जी-हुजूरी करता है। जो उसका शोषण करता है उसके आगे ही झुकता है। अपने युग की न्याय की माग का समर्थन नही करता। क्यो नही वह गोबर के तर्कों को स्वीकार कर जीवन की नयी राह पर पैर रखता ?' प्रश्न यह भी उठता है पर यहा होरी का अपना प्रश्न नहीं है। यहा प्रश्न कृषक वर्ग की समस्या का है। यहा होरी निकल भी जाए पर पूरा कृषक वर्ग तब तक परिस्थितियो से बाहर नही निकलेगा जब तक उन परिस्थितियो का व्यापक विरोध नही होगा। होरी की समस्या हल होने से पूरे वर्ग की समस्या हल नही हो जाती। गोबर और धनिया के विरोधी स्वर सत्य प्रकट करते हैं। इन विरोधो से प्रेमचद यह दिखाना चाहते थे कि जहा किसान डूब रहा है वहा वह उबर सकता है। जिन जिन मोर्चों पर उसका शोषण है उनका विरोध धनिया और गोबर करते हैं। अगर इन मोर्चों पर किसान खुद उठ खडा हो तो समस्या का अन्त होकर रहेगा पर नही—होरी की पीढी मरने के लिए हठ किए बैठी है। उसका हठ मरकर खत्म होगा।

गोबर शहर लौट आता है और होरी परिस्थितियो में और जकडता चलता है। सोना के विवाह मे उसकी ससुराल वाले कुछ नही चाहते, पर धनिया 'हेटी न हो' इस डर से अपनी औकात से ज्यादा करती है। पर रूपा की शादी के लिए वह रामसेवक से रुपए भी ले लेता है। रूपा की शादी में गोबर भी आता है। घर की बिगडी हालत देख उसका मन करता है वह उलटे पैर लौट जाए। गोबर का इन चार साल मे सोचने का ढग बदला है। 'उसने जैसे एक नई दुनिया देखी है। भले आदमियो के साथ रहने से उसकी बुद्धि कुछ जग उठी है। उसने राजनीतिक जलसो के पीछे खडे होकर भाषण सुने हैं और उनसे अंग-अंग बिंधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतो पर विजय पानी होगी। कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आएगी।'[1] वह यह भी देखता है कि अपने-अपने स्वार्थों और लोभ के कारण सभी इस दशा को पहुच चुके हैं। बंधुत्व की भावना को

---

१ गोदान पृष्ठ ३५६।

इन तुच्छ स्वार्थों ने खतम कर दिया है।

गोबर होरी का बोझ उठाना चाहता है। अब वह समझ गया कि जो कुछ है वह परिस्थितियों के कारण ही है। होरी पुत्र से अपने 'पाप' की विवशता भी कह देता है। गोबर के पास अब पिता के लिए खाई घृणा की भावना नहीं है। वह श्रद्धाभाव से कहता है 'तुम और कर ही क्या सकते थे। जायदाद न बचाते तो रहते कहां? जब आदमी का कोई बस नहीं चलता, तो अपने को तकदीर पर ही छोड़ देता है। न जाने यह धांधली कब तक चलती रहेगी? जिस पेट को रोटी मयस्सर नहीं उसके लिए मरजाद और इज्जत सब ढोंग है। औरों की तरह तुमने भी दूसरों का गला दबाया होता तो, उनकी जमा मारी होती तो तुम भी भले आदमी होते। तुमने कभी नीति को नहीं छोड़ा, यह उसी का दंड है। तुम्हारी जगह मैं होता तो या जेल में होता या फांसी चढ़ गया होता। मुझसे यह कभी बरदाश्त न होता कि मैं कमा-कमाकर सबका घर भरूं और आप अपने बाल-बच्चों के साथ मुंह में जाली लगाए बैठा रहूं?'[1]

गोबर के इस कथन में जीवन का सत्य निहित है। होरी का जीवन विवशता का परिणाम है पर इस विवशता को दूर करने के लिए तीव्र विद्रोह नहीं चाहिए अपितु विवेक से परिस्थितियों को समझकर कोई हल ढूंढना होगा। दूसरे की गलतियां बहुत जल्दी दिखाई देती हैं पर अगर दोष ढूंढनेवाला स्वयं उस स्थिति में हो तो सम्भवतः उससे भी अधिक गलतियां कर सकता है। गोबर होरी की स्थिति को अब होरी की भूल नहीं मानता बल्कि उसकी विवशता को स्वीकार करता है। वह पिता के प्रति श्रद्धानत हो जाता है और होरी भी जीवन में हारकर दुखी नहीं होता। 'पुत्र से यह श्रद्धा और स्नेह पाकर वह तेजवान हो गया है विशाल हो गया है। कई दिन पहले उस पर जो अवसाद-सा छा गया था, एक अंधकार-सा, जहां वह अपना मार्ग भूल जाता था, वहां अब उत्साह और प्रकाश है।'[2] इतना ही नहीं जिस होरी ने उसे विपत्ति के गर्त में डाला था वह भी उस जीवन के अन्त में मिल जाता है और तब उसे लगता है, 'जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएं मानो उसके चरणों पर लोट रही थीं। कौन कहता है जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास यह गर्व यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे फूटे मार्ग उसकी विजय-पताकाएं हैं।'[3]

---

1 गोदान पृष्ठ ३६०।
2 वही पृष्ठ ३६०।
3 वही पृष्ठ ३६१।

अपने पुत्र गोबर से श्रद्धा पाकर वह फिर एक बार जी उठता है। मंगल के लिए गाय खरीदने की सोचना उसकी पुरानी लालसा का जी उठना ही है। वह खुदाई के काम मे जुट जाता है। पर एक दिन जीवन की गति रुकती है। अन्तिम क्षणों म वह धनिया से क्षमा मागता है। सब दुदशा तो हो गयी, अब मरन दे — पत्नी से कहे गए उसके अन्तिम शब्द ही उसके जीवन का सत्य है। अब सचमुच इस दुदशा का अन्त होना चाहिए।

उसके जीवन का अन्तिम दृश्य है। धनिया होरी की मौत से लड रही है। वह जानती है वह एक बार डाक्टर को भी बुलाकर होरी को नही दिखा सकती। उसके पास इतना पैसा कहा? ऐसी स्थिति म सबकी आवाजें आती हैं 'गो-दान करा दो अब यही समय है।'[1] धनिया न सुतली बेचकर बीस आने जमा किए थे। उन्हे उठाकर पति के ठण्ड हाथ म रखकर सामने खडे दातादीन से कहती है,' महाराज घर म न गाय है न बछिया न पसा। यही पसे हैं यही इनका गो दान है।' और पछाड खाकर गिर पडती है।'[2]

होरी के जीवन का अन्तिम दृश्य उसके जीवन की विवशताओ पर एक तीखा व्यग्य है। होरी का जीवन धम के नाम पर एक बलिदान है। यह धम है जिस पर वह अपनी एक एक खुशी भेंट चढ़ाता जाता है। यह धम है जिसकी हजार भुजाए उसे कद करती जाती है। होरी का धम भीरु मन जीवन म अपने प्रति हुए हर अन्याय को धम के नाम पर स्वीकार करता है। उसके जीवन की प्रमुख घटनाओ पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके मूल म होरी की धमभीरुता ही छिपी है। डाड देना भोला को बलो का दना और दातादीन को रुपए देना, उसकी मजूरी करना सब उसकी धमभीरुता है। वह धम और नीति का उल्लघन नही करता पर जीवन के अन्त म जब वह रामसेवक से रुपए लेता है तब वह उस पथ पर चल पडता है जिससे बचना वह चाहता तो है पर बच नही पाता।

यह हिन्दू धम इसान का सबसे बडा शोषक है। धम का भय आदमी को चुप करा दता है। यह धम इसान का जीते जी शोषण करता है और मरन के बाद भी। इन्सान के पास जीने की सुख सुविधाए नही, पर धम के नाम पर उसे भेंट चढ़ानी ही है। जिस धम के पास होरी की छोटी-सी कामना भी पूरी करने की शक्ति नही, वही धम उसको तारने की शक्ति रखता है। होरी

---

१ गोदान पृष्ठ ३६५।
२ वही पृष्ठ ३६५।

गाय की अभिलाषा के पीछे मिट जाता है। गाय की अभिलाषा के लिये दम तोड देना है और धर्म उसी से गोदान चाहता है। हिंदू धर्म का इससे बडा मजाक इमान के साथ और क्या होगा ?

होरी दम तोड देता है। वर्तमान (तत्कालीन) पीढी दम तोड देती है। परिस्थितिया वर्तमान पीढी का दम घोट देती है। कोइ कुछ नहीं कर सकता। होरी मर गया—उसके जीवन का दुख-दर्द खत्म हो गया पर पूरे कृषक वर्ग की समस्याए ज्यो की त्यो हैं। समाधान उनका ढूढना है।

होरी के जीवन का अन्त समस्या का अन्त नहीं है। धनिया गोबर और मेहता सब ही जानते हैं कि होरी की दुर्दशा का कारण उसका देवत्व' था जिसने उसे धर्म और नीति की राह से भटकने नहीं दिया। स्थिति ऐसी आ चुकी थी कि तत्कालीन समाज-व्यवस्था बदले। समाज-व्यवस्था बदलने के लिए परिस्थितिया को समझना होगा। गोदान' में जहा परिस्थितिया की विषमता दिखाई दे रही है वहा उन परिस्थितियों का विरोध भी दिखाई दे रहा है। यह स्पष्ट होता जा रहा है कि स्थिति को अधिक देर सहना सभव नहीं है। रामसेवक एक स्थान पर कहता है, अपने हक और न्याय के लिए न लडना उससे भी बडा पाप है। आदमी कब तक दबे ?—यह सब हमारे दब्बूपन का फल है।[1]

रामसेवक के विचार ही जैसे मंगलसूत्र' में अधिक स्पष्ट रूप में दिखाई देते हैं। 'मगलसूत्र जो उनकी अंतिम अपूर्ण कृति है, उसमे उनके अधिक सुन्दर विचार हुए हैं। अब तक वे परिस्थितिया भली भांति देख चुके थे और वे समझ गए थे 'कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने नही आएगी।' और इसलिए "अपनी बुद्धि और साहस से इन आफता पर विजय पानी होगी।[2] इसी दृष्टिकोण को वे मगलसूत्र में स्पष्ट रूप में प्रकट कर सके हैं। उन्होंने लिखा है हा देवता हमेशा रहेंगे और हमेशा रहे हैं। उन्हें अब भी ससार धर्म और नीति पर चलता हुआ नजर आता है। वे अपने जीवन की आहुति देकर ससार से विदा हो जाते हैं। लेकिन उन्हें देवता क्या कहो ? कायर कहो। आत्मसेवी कहो। देवता वह है जो न्याय की रक्षा करे और उसके लिए प्राण दे दे। अगर वह जानकर अनजान बनता है और धर्म में गिरता है और उसकी आत्मा में यह कुव्यवस्था खटकती ही नहीं तो वह अन्धा भी है और मूर्ख भी देवता किसी तरह नहीं। और देवता बनने की

---

१ गोदान पृष्ठ ३५४।

२ वही पृष्ठ ३१८।

जरूरत भी नही। देवताओं ने ही भाग्य और ईश्वर और भक्ति की मिथ्याएं फलाकर इस अनीति को अमर बनाया है। मनुष्य ने अब तक इसका अन्त कर दिया होता या समाज का ही अन्त कर दिया होता। नही, मनुष्य को मनुष्य बनना पड़ेगा। दरिन्दों के बीच में, उनसे लड़ने के लिए हथियार बांधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नही, जड़ता है।"[1] अब वह समय आ गया है जब इस जड़ता की स्थिति को समाप्त करना है स्वयं शोषितों ने अपनी बुद्धि और साहस से। व्यक्तिगत स्वार्थों को भूलकर उन्हें एक होकर संघर्ष करना है, उन परिस्थितियों से जो उन्हें जकड़े है।

१ मंगलसूत्र प्रेमचन्द स्मृति पृष्ठ २६३।

७

समस्या और समाधान

प्रेमचद-साहित्य का प्राण-तत्त्व ग्रामीण जनता के हृदय का स्पन्दन है। प्रेमचद कल्पना के पखो पर बैठ ऊचे नही उडे। उन्ह तो यथार्थ की कटुता ने अपनी ओर खींचकर ऐसा जकडा कि उन्ह आदर्श से भी मुख मोडना पडा। जिन्दगी की सचाइयो ने आदर्श के झूठे आश्वासनो को चूर-चूर कर दिया। उन्होने उस विवश मानव को कराहते सिसकते देखा जो सुख के लिए जीवनपर्यन्त सघर्ष करता है, फिर भी सुख अपरिचित की भाति उससे दूर-ही दूर चला जाता है। सुख मृग मरीचिका की तरह उसे जीवन भर दौडाता रहता है। एक दिन वह जीवन के अन्तिम मोड पर पहुच ही जाता है। उसका साहस, पौरुष, धैर्य और सन्तोष नियति के हाथो स्वय तो टूटते हैं अपने साथ उसे भी तोड देते हैं। यह विवश मानव और कोई नही अपना चिरपरिचित होरी ही है जो कृषक-वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। उसके जीवन की समस्याए कृषक-वर्ग की समस्याए हैं जो उनके साहित्य म उभरी हैं। प्रेमचद समस्यामूलक उपन्यासकार है। ग्राम्य जीवन की जितनी भी समस्याए हैं वे होरी के जीवन म मूर्त होकर आयी हैं। ये समस्याए पूरे ग्रामीण-समाज म फली हुई हैं।

ग्राम्य जीवन की समस्याए युग-परिस्थितियो की देन हैं—यह सत्य होते हुए भी यह नही भुलाया जा सकता कि इन समस्याओ के मूल म स्वय ग्रामीण जनता किसी न किसी रूप म स्वय भी उत्तरदायी है। प्रेमचद ने जहा उन परिस्थितियो का व्यापक विस्तृत चित्रण किया है जो ग्राम्य जीवन की विभिन्न समस्याओ का जन्म देती हैं वहा उन समस्याओं का समाधान भी दिया है। यह बात अलग है कि उनके दिए समाधान समयानुकूल सिद्ध नहीं हुए या समय से पहले की आवाज प्रतीत हुए।

उनके साहित्य म ग्रामीण जनता क शोषण की समस्या प्रमुख रूप से चित्रित की गई है। तत्कालीन युग म शोषण की समस्या दिन प्रतिदिन भयकर होती जा रही थी। किसान तो सबका नरम चारा' था और जिसके आर्थिक साधन कवल कृषि से सम्बधित थे—सबस अधिक आर्थिक कष्टो म से गुजर रहा था। विदेशी सत्ता ने किसाना की आय के साधनो म स हस्त उद्योगो को नष्ट कर भारत को एक खतिहर देश बनाकर छोड दिया था। लगान की दर बढ गई थी आर्थिक मदी तेजी से फल रही थी और किसान जीवन निर्वाह क लिए महाजनो के चगुल म फसता जा रहा था। स्थिति यह हो गइ कि किसान एक ओर जमीदार और उसके सहयोगियो के शोषण का शिकार बना और दूसरी ओर सरकार क पदा धिकारियो की सहानुभूति से भी वचित रहा। सरकार शोषण म जमीदार की सहायक सिद्ध हुइ। भारतीय कृषि के राष्ट्रीय स्वरूप धारण करन क बाद उसकी समस्याए भी राष्ट्रीय हो गइ और इस स्थिति म उनक समाधान का प्रयास भी राष्ट्र के व्यापक धरातल पर विभिन्न राजनीतिक दलो द्वारा किया जाने लगा।

तत्कालीन युग गाधीवादी विचारधाराओ से प्रभावित था। गाधीजी का असहयोग आन्दोलन गाँवो म भी धीरे धीरे फला और वह उपेक्षित ग्रामीण जनता जो पहले गाधीजी का ध्यान आकर्षित नही कर सकी थी अब अपने अधिकारो के लिए सजग हो गई। गाधीजी की अहिंसा की नीति समय का साथ न दे सकी और उसकी असफलता के विरोध म हिंसा भडकने लगी। रूस की क्राति न भारत की जनता को भी प्रभावित किया और एक विचारधारा ऐसी जन्मी जिसके अनुसार भारत म भी रूस की तरह मजदूरो और किसानो का राज्य स्थापित होगा।

अहिंसा और हिंसा—किसी भी समस्या का समाधान नहीं थी। य दोनो विचारधाराए एकागिनिया थी और इनको एकाकी रूप म ग्रहण कर तत्कालीन परिस्थितियो को सुलझाया नही जा सकता था। प्रमचन्द जिन्होन गाधीजी स प्रभावित होकर सरकारी नौकरी स त्यागपत्र दे दिया था गाधीवादी विचारधारा को अधिक देर तक अपनाकर चल नहीं सके। प्रमचन्द रूसी क्राति म भी प्रभावित हुए। उन्होन गार्की का श्रद्धाजलिया अर्पित की थीं। प्रमचन्द दोना विचारधाराओ म कहीं न कहीं प्रभावित थ। वे गाधीजी की अहिंसा प्रम याय और स्वराज्य को अपनाकर और हृदय-परिवतन म विश्वास करक भी 'कम्यूनिज्म की माग को ठुकरा न सके। इसी से उनकी प्रबल कामना थी कि

समाज म जमीदार सेठ आदि जो कृपका के शोषक हैं न रह।"[1] प्रेमचद वस्तुत समन्वयवादी थ। इसी कारण गाधीवाद और कम्यूनिजम म समन्वय कर वह समस्या का हल ढूढने के लिए उ मुख हुए थे।

प्रेमचद, परिस्थितियों और विचारधाराओ म बहे नही। वे परिस्थितिया के बदलते प्रवाह को देखकर स्थिति पर विचार करते रहे। उन्होने अनुभव किया कि शोषण की समस्या के समाधान के लिए शोषित का अस्तित्व मिटाना ही आवश्यक नही अपितु उन सस्कारा और परिस्थितियो को भी परिवर्तित करना होगा जनम शोषित युगा से सास ले रहा था। शोषण की समस्या का मूल कारण था आर्थिक वपम्य जिसके लिए शोषक ही नहीं शोषित भी उत्तरदायी था। शोषण की समस्या के समाधान म शोषक ही नही शोषित भी सहायक थे। एक छोर पर शोषित है और दूसरे पर शोषक है और इन दोना छोरो को मिलाने वाली अथ की शृखला है। इस शृखला का तोडने की शक्ति सरकार के हाथ म थी। सम्पत्ति की बेडी जो समाज का अभिशाप थी सरकार के हाथो एक भटके स तोडी जा सकती थी यदि वह जमीदारा से उनके इलाके छीन उन्ह अपने परिश्रम की रोटी खाने क लिए विवश कर देती।[2] सरकार शोषिता को याय दे सकती थी। वह मालगुजारी म छूट दे सकती थी। जमीदारा और उसके सहायको की शक्ति पर नियत्रण रख सकती थी। महाजना स सूद की दर निर्धारित करवा सकती थी या ऋण-व्यवस्था के लिए कुछ प्रयत्न कर सकती थी किन्तु सरकार के कमचारी जमींदारा के सहायक हाकर शोषितो की बात न सुनकर उनकी सी कहते थे।

इस समस्या के समाधान म शोषित भी सहयोग द सकते थे। यह सिद्ध हो चुका था कि कोई अज्ञात शक्ति उनका साथ देने अवतरित नही होगी। उन्हे परिस्थितियो का सामना स्वय अपनी बुद्धि और साहस से करना होगा क्योंकि उनके विद्रोह और आहा का दावानल जमीदारी सस्था को भस्म कर दे इतना सभव नही था।[3] तत्कालीन परिस्थितिया को देखते हुए यह स्पष्ट हो चुका था

---

१ विश्व प्रे० अ० पष्ठ १२।

मैं कम्युनिस्ट हू किन्तु मेरा कम्यूनिज्म यही है कि हमारे देश म जमीदार सठ आदि जो कृपको के शोषक हैं न रह।

मैं गांधीवादी नहीं केवल गाधीजी के चेज आफ हाट मे विश्वास करता हू।

२ गोदान पष्ठ ७।

३ वही १७१८।

कि जमीदारी-सस्था धीरे धीरे टूटकर रहेगी पर वह दिन कब और कसे आयेगा यह किसी को पता नही था।

जमीदार परम्परागत व्यवस्था के अधीन काय कर रहे थे। व प्रजा हित की बात अपने स्वार्थों के आगे भूल जाते थे। व विचारो से प्रगतिशील होकर भी व्यवहार म आगे नही बढ़ सके थे। उनके विचारो और कम म कही दूर का भी तालमेल नहीं था। जमीदार यह सोच रहा था यदि वह वास्तव म किसान का हितैषी है तो उसके कृत्य उसके विचारो के अनुकूल होने ही चाहिए। यदि कृषको के साथ 'रियायत होनी चाहिए तो इस ओर उसको ही सबसे पहले कदम उठाना चाहिए।' काश्तकारो को बिना नजराना लिए पट्टे लिख दें बेगार बद कर दें, इसलिए जमीदार इजाफा लगान को तिलाजलि दे दें, चरावर जमीन छोड दें।[१] जब तक ये रियायतें अधिकार के रूप म न मिलेंगी केवल सद्भावना के आधार पर उनकी दशा सुधर नही सकती। सदभावना रखते हुए भी स्वाथ छोडने कठिन हैं जब तक शासन और नीति के बल स उन्हे स्वाथ छोडने के लिए मजबूर न कर दिया जाए। दूसरे के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नही उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। समाज की ऐसी व्यवस्था जिसम कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें, कभी सुखद नही हो सकती। पूजी का यह किला जितनी जल्दी ही टूट जाए उतना ही अच्छा है।' जमीदार के ये विचार कितने ही उत्तम क्या न हो, जब तक य विचार व्यवहार म नहीं लाए जाते बकार हैं। जमीदार वग म सद्भावना और स्वाथ भावना एक साथ विद्यमान थी। सरकार जमींदार की दोहरी भावनाओ को मिटा सकती थी परन्तु सरकार इस वग की प्रबल पोषक थी।

प्रेमचन्द शोषको क अधिकारो को समाप्त देखने के इच्छुक थे। वह तत्कालीन परिस्थितियो म भी परिवतन चाहते थ जिसम शोषित स्वय अपनी स्थिति पर विचार कर सकें। ग्रामीण जनता म जब तक जागति नहीं होगी शोषण का चक्र गतिशील रहेगा। उपदेशों म किसी समस्या का समाधान नहीं है। उपदेश और उपदेशको क प्रति जब तक जनता म श्रद्धा और आस्था नहीं होगी उपदेश बेकार ही रहेंगे। जनता का विश्वास पाने क लिए उपदेशको को जनता क बीच घुल मिल जाना होगा। जनता इस ओर आगे स्वय नही बढ़ सकेगी क्योंकि निरतर शोषण न उसे इस तरह भयभीत कर दिया है कि वह अपनी मुक्ति की बात नहीं सोच सकता। इस ओर शासक-वग को भी आगे बढ़ना पडेगा और अपने स्वार्था

१ बागन पृष्ठ ७१७-१८।

का भी त्याग करना पडेगा।"[1]

'प्रेमाश्रम' मे मायाशकर इस ओर पग उठाता है और अपने स्वत्वो का त्याग करता है। वह अपनी भूमि पर से अपना अधिकार उठा लेता है और कृषक-वर्ग की समस्या अपने आप ही सुलझ जाती है। लखनपुर म रामराज्य स्थापित हो जाता है। रव न जमीदार का भय रहता है न कारिन्दा और जमींदार के चपरासियो का। लोगो म सदभावनाए जागती हैं और वे अपनी समस्याए अपने आप मिल जुलकर हल कर लेते हैं। सुक्खू चौधरी' अपनी भूमि 'भूमिहीनो' मे बाट देते हैं। भूमिहीन भी कृषक का सम्मानित जीवन व्यतीत करने लगते हैं। बिसेसर साह भी ब्याज की दर घटा देते हैं पर उनका व्यापार पहल से भी ज्यादा बढ जाता है। गाव म समाचारपत्र भी आने लगते हैं। बलराज जिला कमेटी का सदस्य है। वह बाहर से बीज और खाद मगवाकर गाव म बाटता है और खेती भी लहलहा कर होती है।'[2]

'प्रेमाश्रम म प्रेमशकर प्रेमचद क विचारो का प्रतिनिधित्व करत हैं। वह समाचारपत्रो म अपने विचार प्रकट करते हैं। वह कृषि शास्त्र के पडित हैं। वह कृषि-व्यवस्था म सुधार करना चाहते हैं। वह कृषि प्रयोगशाला खोलना चाहते हैं पर उन्ह सुविधाएँ नही मिल पाती। वह सोचत हैं, बिना प्रयोगशाला के भी कृषि सबधी विषयो का प्रचार किया जा सकता है। रोग निवारण क्या सेवा नही है? वह प्राय घर से बाहर निकल जाते और किसानो से खेती-बारी के विषय म बात चीत करते। वह तरकारियो क बीज मगवाते और उनका वितरण करते। उन्ह बोने और उपजाने की विधि भी बतात। वह अपने प्रयत्नो म लग रहत और फिर एक दिन "प्रेमशकर की कृषि शाला अब नगर के रमणीक स्थानो की गणना म थी यहा ऐसी सफाई और सजावट थी कि प्राय रसिकगण सैर करने आया करते। अब अपनी इच्छानुसार नयी-नयी फसलें पैदा करत नाना प्रकार की परीक्षाए करते पर कोई जरा भी नही बोलता और बोलता ही क्या, जब उनकी कोई परीक्षा असफल न होती थी। जिन खेतो मे मुश्किल से पाच-सात मन उपज होती थी वहा अब पन्द्रह-बीस मन का औसत पडता था। प्रेमशकर की देखा देखी हाजीपुरवालो ने भी अपने जीवन का कुछ ऐसा डौल कर लिया था कि उनकी सारी आवश्यकताए उसी बगीचे से पूरी हो जाती थी। भूमि का आठवा भाग कपास क लिए अलग

१ उपदेश (मानसरोवर आठवां भाग) पृष्ठ २६२।
२ प्रेमाश्रम पृष्ठ ५३१ -३।
३ वही पृष्ठ ११८।

कर दिया गया था। अन्य प्रान्तो से उत्तम बीज मगाकर बोये गये थे। गाव के लोग स्वय सूत कात लेते थे और गाव का ही कोरी उसके कपडे बुन देता था। नाम उसका मस्ता था। पहले वह जुआ खेला करता था और कई बार चोरी मे पकडा गया था लेकिन अब अपने श्रम से गाव के भले आदमियो मे गिना जाता था।

प्रेमशकर के उद्योग से आसपास के गावो मे भी कपास की खेती होने लगी थी और कितने ही कोरियो और जुलाहो के उजडे हुए घर आबाद हो गये थे। देहातो के मुकदमेबाज जमीदार और किसान बहुधा इसी जगह ठहरा करते थे। यहा उन्हे इधन शाक भाजी नमक-तेल के लिए पैसे न खर्च करने पडते थे। न जाने उस भूमि मे क्या बरकत थी कि इतनी आतिथ्य सेवा करने पर भी किसी पदार्थ की कमी न थी।'[1]

प्रेमशकर शासन के सुधार को मानव शक्ति से परे समझते थे लेकिन भूमि के बटवारे को रोकना उन्हे साध्य जान पडता था और यद्यपि किसी आन्दोलन मे अगुआ बनना उन्हे पसन्द न था, किन्तु इस विषय मे वह इतने उत्सुक थे कि समाचारपत्रो मे अपने मन्तव्यो को प्रकट करने से न रुक सके। इससे उनका उद्देश्य केवल यह था कि कोई उनसे अधिक अनुभवशील, कुशल और प्रतिभाशाली व्यक्ति इस प्रश्न को अपने हाथ मे ले ले।[2]

प्रेमशकर भी प्रेमचद की तरह एक नये समाज की व्यवस्था के इच्छुक थे। उनकी मनोकामना एक दिन पूरी होती है। उन्होने जिस समाज की स्थापना की "वह विद्वज्जनो की एक छोटी सी सगत थी, विद्वानो के पक्षपात और अहकार से मुक्त। वास्तव मे वह सारल्य, सतोष और सुविचार की तपोभूमि थी। यहा न ईर्ष्या का सताप था न लोभ का उन्माद, न तृष्णा का प्रकोप। यहा धन की पूजा न होती थी और न दीनता परो तले कुचली जाती थी। यहा न एक गद्दी लगाकर बैठता था और न दूसरा अपराधियो की भाति उसके सामने हाथ बाधकर खडा होता था। वहा स्वामी की घुडकिया न थी न सेवक की दीन ठकुरसुहातिया। यहा एक-दूसरे के सेवक, एक-दूसरे के मित्र और हितैषी थे।"[3]

'प्रेमाश्रम' का प्रेमशकर ही नही बलराज भी जागरूक है। वह जानता है काश्तकार केवल बेगार करने के लिए ही नही है। उसमे भी एक शक्ति होती है। हा, उसका ज्ञान होना चाहिए। रूस के काश्तकारो ने देखो सत्ता प्राप्त कर ली

१ प्रेमाश्रम पृष्ठ १६१।

२ वही पृष्ठ १६१।

३ वही, पृष्ठ ६१४।

है। बल्गेरिया म भी किसानो की ही पचायत राज्य करती है।"[1] बलराज के नेतृत्व म और किसान भी जाग उठते हैं। जमीदारी समाप्त हो जाती है। गाव म व्यवस्था के लिए गाधीवादी सिद्धान्तो के अनुसार ट्रस्ट बना दी जाती है। जिला-सभा की स्थापना होती है। इसमे सर्वहारा वर्ग के सदस्य भी निर्वाचित होते हैं।[2]

प्रेमचन्द रूस की भाति यहा भारत मे भी वर्ग भेद की समाप्ति चाहते थे। "आदर्श व्यवस्था यह है कि सबके अधिकार बराबर हो कोई जमीदार बनकर, कोई महाजन बनकर जनता पर रोब न जमा सके। यह ऊच-नीच का भेद उठ जाए।"[3] इसीलिए वह चाहते थे जैसे रूस म गरीबो को आनन्द है वैसे शायद कुछ दिनो बाद भारत म भी हो जाए।"[4] रूस की बोलशेविक सरकार ने उनका सर्वाधिक ध्यान आकर्षित किया था। प्रेमाश्रम म बोलशेविक की 'वर्ग-कृषि पद्धति पर खेती होती है। 'पशु से मनुष्य' मे भी सहकारी पद्धति की बात लिखी गई है।"[5] 'सग्राम' नाटक म भी इसका सकेत है।

प्रेमचद बोलशेविक सरकार स प्रभावित होकर भी भूमि पर किसानो का अधिकार चाहते थे। 'प्रेमाश्रम' म उन्होने इसका सकेत दिया है। उनके विचार म भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की है या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा क अनुसार इसका उपयोग करता है। अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणी को मीरास मिल्कियत जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानो को अपना भाग्य पदार्थ बनाने को स्वच्छन्दता दी जाती है तो इस प्रथा को वर्तमान समाज व्यवस्था का कलक चिह्न समझना चाहिए।[6] वह शोषक और शोषित वर्ग के बीच की खाई मिटी देखना चाहते थ और यह तब ही सभव था जब जमीदार और उद्योगपति अपने विशेषाधिकार छोड दें। प्रेमचन्द के इस दृष्टिकोण को देखते हुए कहा जा सकता है "प्रेमचद भूमि और उद्योगो क राष्ट्रीयकरण के क्रान्तिकारी मार्ग की अपेक्षा सुधारों के विकासवादी मार्ग म विश्वास रखते थे। वह एक समाजवादी थे और उनका समाजवाद मार्क्सवाद की नकल पर नहीं बना था। यह अधिक मूल्यवान है, क्योकि उन्होंने इस युग के वास्तविकतापूर्ण वातावरण

---

१ प्रेमाश्रम पृष्ठ ५२।
२ वही पृष्ठ ४४० ४४४ ४८।
३ सग्राम पृष्ठ ६२ ६३।
४ प्रेमचन्द घर म पृष्ठ ११०।
५ पशु स मनुष्य (मानसरोवर आठवां भाग)।
६ प्रेमाश्रम पृष्ठ ४४०।

से ग्रहण किया था।'' वस्तुतः प्रेमचन्द की यह समाजवादी विचारधारा कम्यूनिज्म के भौतिकवाद से प्रभावित न होकर गांधीजी के सिद्धांतों से ही अधिक प्रभावित है।

'प्रेमाश्रम' में ही नहीं, 'रंगभूमि' में भी विनयसिंह ने सेवा-समिति की सहायता से देहातों का नवनिर्माण किया है। उन्होंने ग्रामीणों की सहायता स्वयं ही नहीं की अपितु उन्हें यह भी बताया कि वे अपनी सेवा स्वयं कैसे कर सकते हैं। उनकी सम्मतियों के परिणामस्वरूप वहां के निवासी केवल अपने लिए ही नहीं, औरों के लिए भी जीना सीख गए हैं।[1] राजा महेन्द्रकुमार की मृत्यु के उपरान्त इन्दु भी गांधीजी के विचारानुसार ट्रस्ट बनाने का निश्चय करती है।

कृषक की शोषण की समस्या का हल अनेक हो सकते थे परन्तु प्रेमचंद इस दिशा में कोई ठोस हल चाहते थे। शोषण की समस्या अर्थ-वैषम्य पर स्थापित थी और अर्थ वैषम्य का एक कारण यह था कि आय का उचित विभाजन नहीं था। दूसरे किसान को श्रम का उचित मूल्य नहीं मिलता था। भूमि का अल्पखण्डों में विभाजन आय का साधन सीमित कर देता था। उद्योग धंधों के अभाव में खेती ही आय का एक मात्र साधन था। यह खेती जहां दैविक विपत्तियों से नष्ट भ्रष्ट होती रहती थी वहां ऋण के बोझ से दबी रहती थी। आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए यह आवश्यक था कि कृषि-व्यवस्था में सुधार किया जाए। 'सेवासदन' में कुंवर अनिरुद्धसिंह कृषि सहायक-सभा खोलने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। इस सभा का उद्देश्य कृषकों की जमींदारों के अत्याचारों से रक्षा करना है। विठ्ठलदास कृषकों की सहायतार्थ एक कोष स्थापित करने का प्रयास करते हैं जिससे किसान को बीज और रुपए नाम मात्र सूद पर उधार दिए जा सकें।"[3]

प्रेमचंद ने जिस चित्र की रेखाएं सेवासदन में खींची थीं उसमें प्रेमाश्रम के प्रेमशंकर रंग भरते हैं और वह चित्र पूर्ण होकर बनता है उनकी कृषिशाला का जो अपने आप में एक उदाहरण बन जाती है। यह कृषिशाला प्रेमशंकर के वैयक्तिक प्रयत्नों का परिणाम नहीं, सामूहिक प्रयत्नों का परिणाम है। प्रेमचंद ने समस्या के जो समाधान प्रस्तुत किए वे समय की गति के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके। उनके आदर्श ग्राम्य जीवन की कल्पना समय के सत्य के हाथों विकृत

१ प्रेमचंद एक विवेचन पृष्ठ १५३।
२ रंगभूमि १६१ ६६।
३ सेवासदन ३३२, ३३३ ३४६।

हो गई। उनका आदश सूखे पत्ते की तरह गर गया। परिस्थितिया आदर्शों के विपरीत गइ और उनका हृदय विक्षुब्ध हो उठा। उनका क्षोभ 'जागरण' के सम्पादकीय मे प्रकट हुआ। उन्होंने लिखा, ससार मे जितना अयाय और अनाचार है जितना द्वेष और मालिन्य है जितनी मूखता और अज्ञानता है उसका मूल रहस्य यही विष की गाठ (महाजनी सभ्यता) है। जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा तब तक मानव-समाज का उद्धार नहीं हो सकेगा। मजदूरों का काम घटाइए मजूरों और किसानों के स्वत्वों को बढाइए, सिक्के का मूल्य घटाइए, इस तरह से चाहे जितने सुधार आप करें, लेकिन यह जीण दीवार इस टीपटाप से नहीं खडी रह सकती। इसे नए सिरे से गिराकर उठाना होगा।'[1]

प्रेमचद के इस दृष्टिकोण का प्रतीक 'गोदान' है। यहा दीवार जीण हो चुकी है परन्तु टीपटाप का कोई प्रयास नहीं है। होरी को 'मरने खपने' की आदत पड गई है। इस दीवार को ढहाने वाला भी कोई नहीं है केवल प्रतीक्षा है—दीवार कब गिरेगी। जीण दीवार— गोदान' के होरी की कहानी है जो अब ढही—अब ढही। इसी कारण गोदान म शोषण की विकट समस्या है समाधान नहीं। होरी की मृत्यु के साथ जीण दीवार ढह जाती है। नई दीवार का निर्माण कब होगा यह भविष्य के गभ म निहित है।'[2]

प्रेमचद साहित्य मे आदश ग्राम्य जीवन की कल्पना

प्रेमचद समाज की विभिन्न समस्याओं को अपने उपन्यासो का विषयाधार बनाकर चले थे। उन्होंने समस्याए ही नहीं दखीं उनका समाधान भी खोजा। उनके अधिकाश उपन्यासो म ग्राम्य जीवन की समस्याए हैं। उनका पहला उपन्यास वरदान है जिसमे ग्रामीणो के अन्धविश्वासो, कुरीतियो और आर्थिक अवस्था पर प्रकाश डाला गया है। यहा शोषण की समस्या का विस्तृत चित्रण न होकर केवल सकेत मात्र है। विरजन' केवल यह चाहती है कि प्रतापचद ग्रामीणो पर कुछ लिखे। दूसरे उपन्यास 'सेवासदन मे कृषि सभा और कृषि फडो की बात उठाई गई है। कृषि-सभा का उद्देश्य जमीदारो के अत्याचारो स कृषको की रक्षा करना है और कृषक फड का उद्देश्य कृषको को कम सूद पर ऋण देना

---

१ जागरण—२७ फरवरी १९३३।

२ तत्कालीन स्थिति में।

है। इस तरह 'सेवासदन' म समस्या क समाधान की ओर भी सकेत किया गया है। प्रेमचद अब तक कृपकों की समस्या सुलझाने क लिए जमींदारों स एक ही बात कर रहे थे—"भाइयो, किसान विपन्न है। उसकी हालत सुधारो क्योंकि उसकी सुधरी हुई हालत पर ही तुम्हारी नफे की दुकान चल पाएगी। उन्ह बीज उधार दो। अगर तुम इतना भी कर पाए तो ठीक है। उनकी हालत सुधर जाएगी। नही तो ''[1] और इसी नही के बाद ही 'प्रेमाश्रम' लिखा गया।

'प्रेमाश्रम' म आदर्श ग्राम्य जीवन की कल्पना की गई है। यहा जमींदार स्वेच्छा से अपने स्वत्वों को त्याग देता है। उसके इस बलिदान से गाव की काया ही पलट जाती है और वहा 'रामराज्य' की स्थापना हो जाती है। प्रेमचद ने कृपक-समस्या का जो हल यहा प्रस्तुत किया है वह केवल आदर्शवादी कल्पना का परिचायक है। स्वेच्छा अपवाद कही जा सकती है इसलिए केवल मायाशकर के *स्वत्वो का त्याग इस जटिल समस्या का समाधान नही है। प्रेमचद गाधीजी के* हृदय परिवर्तन म विश्वास रखते थे इसी के परिणामस्वरूप मायाशकर के चरित्र म उनका विश्वास मूर्तिमान होकर आया है पर गाधीजी का आदर्श समय के अनुकूल सिद्ध नही हुआ। समय की चोट स आहत हो वह खड खड हो गया। उनका यह खडित आदर्श ही उनकी शेष रचनाओ मे आया है।

'कर्मभूमि का कमेटीवाद इसी खडित आदर्श का परिणाम है जिसमे न जनता का विश्वास है न नेताओ का। 'रगभूमि' मे औद्योगिक-सभ्यता का विरोध गाधीजी का प्रतीक सूरदास करता है पर तु धर्म' की लडाई मे वह पराजित होता है। वह खेल-खेलकर हारता है। हार-हारकर खेलता है। वह निश्चित ही पराजित होता है। परन्तु उसकी पराजय म भी आनेवाली सभ्यता के लिए एक चुनौती है। उसकी पराजय मे वह अदम्य शक्ति है जो विध्वस को भी चुनौती देती है। 'धन का देवता' 'आत्मा का बलिदान पाये बिना प्रसन्न नही होता।'[2] 'रगभूमि' म देवता' असतुष्ट ही रह जाता है परन्तु गोदान' म आकर 'आत्मा का बलिदान पाकर तब पूण सन्तुष्ट हो जाता है, जब होरी अपनी बेटी को अधेड रामसेवक के हाथो केवल दो सौ रुपये मे बेच देता है। होरी का इस समय सिर ऊपर नही उठ पाता। "होरी ने रुपये लिए तो उसका हाथ काप रहा था, उसका

---

१ प्रमचद एक अध्ययन, पृष्ठ १५०।
२ रगभूमि पृष्ठ ५५।

सिर ऊपर न उठ सका, मुह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढे म गिर पडा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लडते रहन के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खडा कर दिया गया है और जो आता ह उसके मुह पर थूक दता है। वह चिल्ला चिल्लाकर कह रहा है—भाइयो, मैं दया का पात्र हू। मैंने नहीं जाना जेठ की लू कसी होती है और माघ की वर्षा कसी होती है? इस देह को चीर कर देखो इसम कितना प्राण रह गया है, कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरा से कुचला हुआ। उससे पूछो कभी तूने विश्राम के दशन किए कभी तू छाह म बठा! उस पर यह अपमान? और वह अब भी जीता है, कायर लोभी, अधम! उसका सारा विश्वास जो अगाघ होकर स्थूल और अधा हो गया था मानो टूक टूक उड गया है।"[1]

होरी अपनी दष्टि म गिर गया है पर उसकी स्थिति उस व्यक्ति की-सी थी जिसे असाध्य रोग ने ग्रस लिया हो और जो खाद्य अखाद्य की चिता ही छोड चुका हो। होरी ने कभी नीति को छोडा नही यह उसी का दड था। होरी विवश था।'जब आदमी का कोई वश नही चलता तो वह अपने को तकदीर पर छोड देता है।' होरी ने भी यही किया। उसे 'मरने खपन' की आदत पड चुकी थी, वह और भी सह लेगा।

होरी का जीवन सघर्षों की अकथ कहानी है। 'रगभूमि का 'सूरा' उसे बार-बार खेलने की प्रेरणा देता है और उसे खेलने के लिए उत्साह और धय मिलता रहता है वरदान क बालाजी से। होरी को जस 'बाला जी का उपदेश अत समय तक याद रहता है। ये लोग (शोषक) तुम्हारे स्वदशी बाधव हैं उन्ह अपना शत्रु न समझो। यदि वे मूख हैं तो उनकी मूखता का निवारण करना तुम्हारा कतव्य है। यदि वे तुमस युद्ध करने को प्रस्तुत हैं तो तुम नम्रता स्वीकार कर लो और एक चतुर वद्य की भाति अपने विचारहीन रोगियों की औषधि करने म तल्लीन हो जाओ। यदि आप दढता से अपन काय करते जायेंगे तो अवश्य एक दिन आपको अभीष्ट सिद्धि का स्वण-स्तम्भ दिखाई देगा। दृढता निराशाओ म विश्वासपात्र पथ प्रदशक है। दृढता यदि सफल न भी हुई तो भी ससार म अपना नाम छोड जाती है।'[2] होरी ने दढता से जीवन-सग्राम म भाग

१

---

१ गोदान पष्ठ ४७६।

२ वरदान पृष्ठ १२६।

लिया था परन्तु अपने विचारहीन रोगियों का वह अधिक दिन उपचार न कर सका। वद्य भी क्या कर सकता है जब रोग बढ जाये। जीवन-सग्राम के अन्त मे उसे सिद्धि का स्वर्ण स्तम्भ दृष्टिगत नही होता। उसे यदि कुछ दिखाई देता है तो अपने ही जीवन के चित्र—धुधले धुधले से, बिखरे बिखरे बेक्रम और असम्बद्ध।

प्रेमचद अपनी प्रारम्भिक रचनाओ मे सुधारवादी दृष्टिकोण लेकर चले हैं। उनका सुधारवादी दृष्टिकोण गाधीवाद की छाया मे पनपा था। वह सोचते थे एक दिन ऐसा आयेगा जब कृषको को जमीदार अपने अधिकार मागने का अवसर देगा। उसके हृदय-परिवर्तन की यह सहज उदारता होगी। इसके साथ वह यह भी सोचते थे कि एक दिन समाज मे आर्थिक विषमता का अन्त होगा। यह उनका कम्यूनिज्म ही था जो गाधीवाद के आदर्श से छूकर ठडा पड गया था। वह सभाओ और आन्दोलनो से समस्याओ का हल प्रस्तुत करना चाहते थे परन्तु समय के साथ उनकी निरर्थकता स्वयमेव सिद्ध होने लगी। 'प्रेमाश्रम' मे प्रेमशकर, जो प्रेमचद का ही प्रतिरूप है एक स्थान पर कहते है "मुझे भी शब्दो पर विश्वास नही रहा। हम अब सगठन परस्पर प्रेम व्यवहार की और सामाजिक अन्याय को मिटाने की जरूरत है।'[1] 'प्रेमाश्रम' का 'रामराज्य और 'कर्मभूमि' का 'कमेटीवाद' सब बेकार प्रमाणित होते हैं। 'रगभूमि' मे गाधीवाद मे दरारें पडती है और 'कर्म भूमि' तक पहुचते पहुचते ये दरारें गडढो मे बदल जाती हैं। 'गोदान' मे आकर होरी ऐसा इस गडढे मे गिरता है कि 'सूरदास' चाहे पीछे से कितना ही हार हारकर खेलने की प्रेरणा दे अनुरोध करे—वह उठकर खडा नही हो पाता और वही उसके जीवन का अन्त भी हो जाता है।

प्रेमचद की कल्पना मे गाधीवाद लहलहाता हुआ हरा भरा वक्ष था जिसकी छाया भर ही कृषको के लिए सम्पन्नता, वभव और सुख शान्ति दे सकती थी परन्तु जसे-जसे जीवन और जगत् की कटुता उनके मन मे चुभन पदा करने लगी, वसे वसे वक्ष की शाखाए यथार्थ की आच मे भुलसने लगी और 'गोदान' तक आते आते शाखाए जल चुकी थी और वक्ष ठूठ रह गया था जो 'मगलसूत्र' मे आकर ढह ही गया। इसके साथ ही प्रेमचद की कल्पना टूटकर गिरती है और दम तोड देती है। होरी दम तोडता है प्रेमचद का आदर्श दम तोडता है। जीवन का सत्य हसता है इस अन्त पर। प्रेमचद इस सत्य की कटुता के व्यग्य को देखते हैं—आदर्श के समापन पर। प्रेमचद को गाधी के अहिंसा प्रेम को भुलाकर एकदम

१ प्रेमाश्रम पृष्ठ १०३।

कहना पडता है, "मनुष्य को मनुष्य बनना पडेगा। दरिन्दो के बीच म, उनसे लडन के लिए हथियार बाधना पडेगा। उनके पजो का शिकार बनना देवतापन नही, जडता है।"[1] इतना ही नही, "जिस दशा म पडे हो, उसे स्वार्थ और लोभ के वश होकर और क्यो बिगाडते हो ? दु ख ने तुम्हें (ग्रामीण जनता) एक सूत्र म बाध दिया है। बन्धुत्व के इस दैवी बन्धन को क्यो अपने तुच्छ स्वार्थों से ताडे डालते हो ? उस ब धन को एकता का बन्धन बना लो। ' और यह भी विश्वास कर लो —' कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करन नही आयेगी। ' उन्ह 'अपना भाग्य खुद बनाना होगा अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतो पर विजय पानी होगी। '[2]

प्रेमचद ने समस्याओ का सतही चित्रण नही किया। उन्होने सभी समस्याओ की गहरी छानबीन की थी और तब उनका समाधान भी देना चाहा था। उन्होंने यह भी देखा था कि वे जिस आदर्श की छाह म जीवन और जगत का देखना चाहते हैं वह सभव नही है। इसी से उन्होंने जहा 'प्रेमाश्रम' म आदर्श ग्राम जीवन की कल्पना की वहा समय के साथ चलकर 'गोदान' म 'होरी' का 'गोदान' भी कराया है—एक ऐसा 'गोदान' जो जीवन का सबसे बडा उपहास है।

प्रेमचद ससार को रणक्षेत्र समझते थे, जहा वही सेनापति विजयी होता है जो अवसर को पहचानता है और समय पडने पर उत्साह से आगे ही नही बढता, पीछे हटने मे भी सकोच नही करता।[3] प्रेमचद ऐसे कुशल सेनापति थे जो समय के साथ चले—जरूरत पडने पर आगे ही नहीं, पीछे भी हट। 'प्रेमाश्रम म आदर्श ग्राम्य जीवन की स्थापना करने मे वह आगे बढ गये पर जब देखा आवश्यकता पीछे लौटकर स्थिति का देखने की है तो वह पीछे भी लौटे और गोदान' म देखा उस होरी को जो इस शोषण के चक्र के साथ-साथ घूम रहा है और घूमता ही जाता है तब तक जब तक उसके श्वासो का चक्र ही नही रुक जाता। हार-हार कर तब तक ही खेला जा सकता है जब तक नियति जीवन को खिलाती है।

प्रेमचन्द का आदर्श यथार्थ की आच म झुलस गया। कल्पना की रगीन छाया मिट गई। जीवन के अन्तिम दिनो मे उनका विश्वास आदर्श से उठ गया था। वह समय की गति की ओर खिच-सा गया था। जीवन-पर्यन्त काल्पनिक

---

१ मंगलसूत्र—प्रेमचन्द स्मृति पृष्ठ २६३।

२ गोदान पृष्ठ ३१८।

३ रानी सारन्धा कहानी का निष्कर्ष।

स्वतत्रता, काल्पनिक समता और न्याय की बुजुआ भ्रातियो से सघप करने के बाद प्रेमचद अपने अतिम दिनो मे निश्चय ही उस माग पर आ गये थे जो समाजवाद की ओर ले जाता है और जिसका पहला इगित है 'गोदान'[1] और सभवत 'मगलसूत्र' पूरा हो जाता तो निश्चित ही प्रमचद इस माग पर बहुत आगे बढ चके होते।

१ नई समीक्षा (अमतराय) पृष्ठ २३८।

उपसहार

प्रेमचद ग्राम्यजीवन क सवश्रेष्ठ चित्रकार हैं। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितिया और अपन अनुभवो से प्रेरित होकर जिस साहित्य की रचना की वह जन जन के प्राणा की कहानी है। प्रेमचद एक अत्यन्त जागरूक कलाकार थे, इसी कारण युग-सत्य और धम के साथ पूण तादात्म्य स्थापित करते हुए उन्होने समाज और व्यक्ति का सर्वांग चित्रण किया। उपन्यास मानव-जीवन का चित्र ही नही, समाज का दपण भी है। व्यक्ति समाज की इकाई है। समाज के सदभ मे वह महत्त्वपूण है। युग परिस्थितिया समाज को प्रभावित करती हैं और व्यक्ति समाज मे रहकर, अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखता हुआ और रखन क प्रयास म देश-काल की स्थिति से प्रभावित होता है। समाज की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक समस्याए बहुत कुछ एक दूसरे से जुडी रहती है। वस्तुत समाज के ये विभिन्न प्रश्न एक दूसरे से सबधित होते हैं। व्यक्ति समाज मे रहकर इन समस्याओ से प्रभावित होता है। प्रेमचद ने तत्कालीन विभिन्न समस्याओ का चित्रण समकालीन परिस्थितियो के सदभ मे ही किया है।

प्रेमचद कल्पना के पखो पर बठकर ऊचे नही उडे। उन्होंने तो यथाथ की धरती माँ न अपनी विवश बरसती आखो से इस तरह देखा कि उनके अपने नयन कोर भी सजल हो उठे। व्यथित हो उन्होंने जिधर भी दृष्टि फेरी उधर ही दुख दैन्य से ग्रस्त उस विवश मानव को कराहते, सिसकते और बिलखते देखा जो सुख के लिए जीवन पयन्त अथक सघष करता है, फिर भी सुख अपरिचित की भाति उससे दूर से ही रास्ता काटकर चला जाता है। वह उसे पाने के लिए उसके पीछे पीछे दौडता है परन्तु सुख मृग मरीचिका की भाति उसे दूर ही दूर भटकाकर दौडाता रहता है। जीवन की इस दौड म वह हार जाता है—उसका साहस, पौरुष, धम और सन्तोष नियति के क्रूर हाथो तोड दिए जाते हैं।

स्वय प्रेमचद का शैशव म ही सघर्षों से परिचय हो गया था। उन्होंने इसी

कारण सघर्षों से जूझने के लिए एक अदम्य अटूट साहस जुटा लिया था। इतना ही नही, सघर्षों के आघातो ने उन्हें सहनशक्ति भी दी और दुख सहने की सामथ्य भी। जीवन के प्रारम्भ म ही 'सघर्षों' का खेल ऐसा शुरू हुआ कि जीवन के साथ साथ समानान्तर चलता रहा। उन्होने भी एक अच्छे खिलाडी की तरह हर बार हारकर फिर खेला। खेल म जय पराजय क्या ? खिलाडी का काम ता खेलना है। 'लमही' गाव म ज मा मन्हा धनपत नवाब वन दरिद्रता के ब धनो को तोडने का प्रयास करते हुए अपन समय को 'प्रेम' की शीतलता से आप्लावित कर युग को वह प्रकाश द सकेगा जिसम विवश,पद-दलित मानव अपने भविष्य को पढ सकेगा यह कौन जानता था ?

प्रेमचद गाव की धरती पर पले थे। शहर म रहकर भी उनकी स्मृति म बसा गाव की धरती का आकषण, उन्ह गाव लौट चलने के लिए बराबर आग्रह करता रहा। अपनी उनकी यही प्रबल इच्छा थी कि वह जीवन के अन्तिम दिनो मे गाव के स्वच्छ और उन्मुक्त वातावरण मे सास लें। जिस धरती मा के ऋण से उनका अन्तर कृतज्ञता से परिपूण था उसके प्रति उन्होने अपन कतव्य को भली भाति पहचाना था। जीवन के अन्तिम क्षण तक वह अपना कतव्य निभाते रहे। इसी कारण उनकी रचनाओ म जो भी विषय उभरकर आए है उनम स अधिकाश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित है।

उनकी किसी भी प्रसिद्ध कृति को उठा लीजिए, उसी मे गाव की टेढी मेढी पगडडिया है टूटी फूटी झोपडिया हैं, गाव की ऊबड खाबड धरती को अपने रक्त से सीचने वाले, अनवरत अनाचार और अत्याचार के शिकार, शोषण की चक्की म पिसनेवाले नगे, अधनगे, बूढे, जवान स्त्री-पुरुष-बालक, फटेहाल, भूखे अध मरे ग्रामीण हैं। शोषण और अभावो की चोट म आहत मानवता की मर्मान्तक वेदना सहस्रोमुखी होकर उनकी रचनाओं म एक ऐसी तेज रेखा खीचती है कि व्यक्ति स्तम्भित रह जाता है। जीवन के नराश्यपूण अधकार म परिस्थितियो से सघष कर टूट जाने वाले क्षत विक्षत मानवता के उत्तराधिकारी कसकती टीस विवश वेदना, उमडता हाहाकार असीम अनन्त व्यथा, आकुलता और अशान्ति लेकर मीठे स्वप्नो और सुनहली रुपहली आकाक्षाओ के खण्डहरो म अपनी अन्तिम सास पूरी करन के लिए प्रयत्नशील हैं। प्रेमचन्द ने अपनी कृतियो म ऐसी ही व्यथापूण स्थितियो के चित्र उतारे हैं। वस्तुत आज भारतीय ग्राम्य जीवन आज अपनी अनेक पुरातन विडम्बनाओ स मुक्ति प्राप्त करके जिस जागरण के परिणामस्वरूप नवीन वातावरण म सास ले रहा है उस जागरण की ओर सकेत

करने का श्रेय प्रेमचद को ही है।

प्रेमचद समस्यामूलक उपन्यासकार हैं। उनकी प्रत्यक रचना मे किसी न किसी समस्या का चित्रण और समाधान है। ग्राम्य जीवन से सबधित उपन्यासा म कृपक के शोपण की समस्या है। शोपक फलते जा रहे हैं और शोपित पिसते जा रहे हैं। 'प्रेमाश्रम, 'रगभूमि, 'कायाकल्प','कमभूमि','गोदान' इसी शोपण की समस्या पर लिखे गए है। सेवासदन' म भी इस समस्या का सकेत है। 'गोदान को छोडकर शेष उपन्यासा म समस्या का चित्रण ही नही, उसका समाधान भी दिया गया है। सवासदन' मे कृपि सस्था की स्थापना की कल्पना, 'कमभूमि' म कमेटीवाद,'प्रेमाश्रम म कृपिशाला और रामराज्य की स्थापना, 'रगभूमि म सेवा समिति की स्थापना इस समस्या के समाधान के स्तुत्य प्रयास है। समस्या के ये विभिन्न समाधान आदशवादी दृष्टिकोण का परिणाम है। ये समाधान तत्कालीन परिस्थितियो म उचित प्रतीत नहीं हुए। उनकी अव्यावहारिकता समय से पहले की बात प्रतीत हुई।

समस्या के समाधान की दृष्टि से 'प्रेमाश्रम' उपन्यास विशेष उल्लेखनीय है। जमीदारो के शोपण स त्रस्त कृपक-जीवन के अतिरिक्त 'प्रेमाश्रम' मे साम्यवादी विचारधारा के पोपक मायाशकर के त्याग की कथा भी है। वह अपने स्वत्वो का त्याग कर भूमि पर कृपको का अधिकार स्वीकार करते है। परम्परा से चला आता किसान और जमीदार का सबध एक झटके से टूटता है और एक नया सबध स्थापित होता है यह सबध बन्धुत्व की भावना पर निर्मित होता है। परतु मायाशकर जिन परिस्थितियो मे और जिस युग मे समस्या का यह समाधान देते है वह युग की बात न होकर आनेवाले युग की बात थी। समस्या का समाधान समय की पुकार प्रमाणित नही हो सका। इसी कारण मन्मथनाथ गुप्त ने यह आक्षेप किया है, मान लिया कि सौभाग्य से इस क्षेत्र म ऐसा जमीदार मिल गया जिसने स्वेच्छापूवक अपने शोपणाधिकार को त्याग सारी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर दिया किन्तु जहा ऐसे जमीदार न मिलें जो इस प्रकार आदशवाद म आकर अपना सवस्व स्वाहा करने को तयार न हो उन लाख म ९९९९९ क्षेत्रों म क्या हल है? अवश्य ही प्रेमाश्रम के लेखक के निकट इसका कोई उत्तर नहीं है। न इसका कोई उत्तर उस विचारधारा के पास है जो इस रगीन आशा का पोपण करती है कि जो भक्षक है वे ही रक्षक और ट्रस्टी होंगे'।[1]

---

१ कथाकार प्रेमचद पष्ठ १ १।

मन्मथनाथ गुप्त की यह आशका सत्य थी और इसका आभास सभवत प्रेमचद को भी हो गया था क्योकि 'प्रेमाश्रम' के उपरात की कृतियो मे समस्या अधिक जटिल रूप धारण करके आयी है। प्रेमचद ने सदैव इस बात का स्पष्टीकरण करना चाहा था कि व्यक्ति परिस्थितियो का दास है और उसका प्रत्येक कृत्य उसी दासता का कुफल है। प्रेमचद व्यक्ति को स्वभाव से देवतुल्य मानते थे जो परिस्थितिवश हो स्वय ही अपने देवत्व को कुचल डालता है। प्रेमचद जमींदार वर्ग को, जो परिस्थितियो और प्रथा का दास था, पुन देवत्व की ओर लौट चलने के लिए सकेत कर रहे थे।

ग्राम्य जीवन की जिन समस्याओ का हल प्रेमचद ने प्रस्तुत किया वह तत्कालीन परिस्थितियो के अनुकूल सिद्ध नही हुआ। परतु आज वह अक्षरश सत्य प्रमाणित हुआ। उस समय उनका दिया हल यथार्थ की कठोर स्थिति को देखकर हास्यास्पद प्रतीत हुआ परन्तु उनको विश्वास था कि यथार्थ पर आधृत आदर्श निर्जीव नही हो सकता। उनका विश्वास आज का सत्य सिद्ध हुआ।

१३ अप्रल, १९५१ की एक छोटी-सी घटना थी जिसने उनके 'प्रेमाश्रम' के काल्पनिक आदर्श ग्राम्य जीवन की कल्पना को साकार रूप देने के लिए एक 'भूदान आन्दोलन का सूत्रपात किया जिसके प्रवर्तक विनोबाजी थे जिन्होंने तेलगाना जिले म यात्रा करते हुए वहा के कुछ व्यक्तियो की करुण गाथाए सुनी थीं। इन भूमिहीन व्यक्तियो की समस्या पर उन्हें विचार करना पड़ा। इन भूमिहीनों के लिए भूमि का प्रबन्ध कहा से किया जाये ? उनके सामने यही समस्या थी। इस समस्या का सीधा सरल समाधान यही था कि सरकार भूमिहीना म जमीन स्वय बाट दें या भूमिपति स्वय भूमि का थोडा-थोडा भाग भूमिहीना को दे दें। यह समाधान सरकार द्वारा सभव नहीं था। इसीलिए उन्होने खुली सभा म भूमिहीना के लिए भूमि की माग करते हुए भूमिपतियो स कहा कि वे इन्हें भूमि दें। एक व्यक्ति न विनोबा जी को सौ एकड भूमि देने की प्रतिज्ञा की और इस घटना स उन्ह जो प्रेरणा मिली वही भूदान आन्दोलन म फल फूल रही है। भूमिपति अपनी भूमि भूमिहीनों को देने लगे और प्रेमचद की उठाई समस्या और विनोबाजी की समस्या अपना समाधान पा गई। विनोबा भूमिपतियो स कहते, 'मैं आपका सतान हू मेरा अधिकार मुझे दीजिए।' और इतने म ही उन्ह अपना अधिकार मिलता गया।[1]

भूमिपतियो का भूमि पर स स्वत्व उठने लगा। य भूमिपति और कोई नहीं,

---

१ विनोबा एण्ड हिज मिशन पृष्ठ ४८ ४९।

'प्रेमाश्रम' के सुक्खू चौधरी के ही वशज हैं। सुक्खू चौधरी न अपनी भूमि मजदूरा म बाट दी और अब सभी मज़दूर सम्मानित कृपक का जीवन व्यतीत करने लगे। जिन लोगा को मजदूरी भी नहीं मिलती थी वे ही अब अपनी सभी आवश्यकताए स्वय पूरी करने लगे। 'भूदान आन्दोलन का दूसरा रूप सर्वोदय आन्दोलन है जिसमे यह समझा जाने लगा कि जनहिताय ही बहुहिताय है और बहुहिताय ही जनहिताय है। यह मानसिक, भौतिक और आध्यात्मिक—सभी प्रकार की उन्नति और समानता का सदेश देता है। सर्वोदय आज के युग का देन है परन्तु उसकी एक झलक 'रगभूमि' म पहल ही मिल जाती है। विनयसिंह' की सेवा समिति सर्वोदय समिति का ही पूवज विनयसिंह एक ऐसे समाज का निर्माण करता है जहा मनुष्य अपने लिए नही औरा के लिए जीवित रहता है जहा पर हित प्रमुख और अपना स्वाथ नगण्य हो जाता है। विनयसिंह का काय भी उस समय अनुकूल प्रतीत नहीं होता परन्तु आज तो वह जन-जन म सुखद भविष्य का सदेश दे रहा है।[1]

जमींदार प्रथा एक ऐसी व्यवस्था थी जिसम कृपका का शोपण खुल रूप म होता था। गोदान के रायसाहब इस व्यवस्था का अन्त देखन के इच्छुक थे। उनके विचार म सरकार यदि उनकी सत्ता छीनकर उन्ह परिश्रम की रोटी खाने के लिए विवश कर दे तो अच्छा है। उस युग म सरकार जमीदारा की सहायक थी पर स्वतन्त्र भारत की सरकार ने जमींदारी उन्मूलन का काय अपने हाथ म ले लिया और भारत के अधिकाश भागो मे जमीदारा का उन्मूलन होते ही प्रेमचद का स्वप्न साकार हो गया।

प्रेमचद के विचार म भारत की आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए आवश्यक था कि यहा दलित उद्योगो का विकास किया जाय। कृषि भी दलित उद्योगा म से एक थी। 'प्रेमाश्रम म प्रेमशकर कृषि उद्योग की उन्नति के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील हैं। वे कृषि-उपज के नए-नए प्रयोग करते हैं—आविष्कार करते हैं और उनके अन्वेषण सत्य निकलते हैं। वह शहर से अच्छे बीज और अच्छी खाद मगवाते हैं। उनके परिश्रम स ही उनकी कृपिशाला भविष्य के लिए एक उदाहरण बन जाती है। आज की पचवर्षीय योजनाओं मे कृषि उद्योग की उन्नति के लिए जो कायक्रम हैं व प्रेमशकर की योजना क अनुकूल ही हैं। इन तथ्या से यही कहा जा सकता है कि प्रेमचद न जो कुछ समाधान क लिए सोचा वह समय म पहले का बातें थीं। वे वतमान की नही भविष्य की बात थी।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद जान की जगह गोविन्द क बठ जान की जो आशका

१ विनोबा एण्ड हिज मिशन पृष्ठ २८।

प्रेमचद को हुई थी वह भी सत्य निकली। शोषण का चक्र रुका नही है अन्तर केवल इतना है कि अब शोषक विदेशी नही स्वदेशीय ही है। प्रेमचद ने जो कुछ कहा वह तत्कालीन युग की नहीं बल्कि उस भविष्य की बात थी जिसे वह अपनी दूर-दृष्टि से देख रहे थे।

प्रेमचद ने जिस ग्राम्य जीवन के चित्र अपने साहित्य म उतारे हैं उनम अभाव और दारिद्रय है किन्तु वह प्राकृतिक वैभव से वचित नही है। खेतो की हरियाली, आमो की बगिया और सावन की नदिया—सूखे ग्रामीण जीवन को हरा भरा किए हुए हैं। इसी कारण ग्रामीण जनता उमगकर फाग खेल लेती है—हुलस कर दीपावली मना लेती है। रामायण की चौपाई ही नही, बिरहा भी गा लेती है। ग्राम्य जीवन म जो कुछ भाव और अभाव है प्रेमचद ने उसे बिना किसी दुराव क सामने रख दिया है। '[1] किसानो और मजदूरो के प्रति उनके हृदय म अगाध सहानुभूति थी। वास्तव म शोषितो का इतना बडा हिमायती हिन्दी म कोई दूसरा नही है। परन्तु जमींदारो और पूजीपतियो के प्रति भी उन्होने अपना सतुलन नहीं खोया। उनके दोषो पर तीखा व्यग्य करते हुए भी उनके गुणो को व भूले नहीं। उन्होने किसानो और मजदूरो म अपने सामाजिक और राजनीतिक स्वत्वो के प्रति चेतना जगाने का प्रयत्न अपने सभी उपन्यासो म किया परन्तु इस प्रयत्न के भावात्मक रूप को ही ग्रहण किया है अभावात्मक रूप को नही। कहीं भी उन्होने जमींदारो और किसानो के प्रति घृणा एव प्रतिशोध क भाव को उभारना समीचीन नही समझा। दूसरे शब्दो म वर्ग-सघर्ष नाम की वस्तु को एक मोहक रूप देकर कहीं भी स्वतत्र महत्त्व नही दिया।'[2]

उन्होने सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कही कि किसान जो सामन्ती शोषण के शिकार होने के कारण अधविश्वासो, अज्ञान द्वेष-वमनस्य और फूट इत्यादि कुविचारो म फसे हुए हैं व हमारी घृणा के नहीं बरन् सहानुभूति और सम्मान के पात्र हैं। उनम वह निष्ठा, उत्सर्ग की भावना, सयम, सतोष, उद्यम, प्रेम, धय और सामूहिकता की प्रवृत्ति आदि गुण भी हैं जो हम उनके शोषको म नहीं मिलते। सूरदास', 'होरी', 'बलराज' और 'गोबर' इत्यादि ऐसे अनेक पात्र उनके उपन्यासो म हैं जो अवसर मिलने पर समाज म ऊचे से ऊचा पद और सम्मान पा सकते हैं। इन लोगो म वे गुण हैं, वे तत्त्व हैं जिनसे सुन्दर से सुन्दर उच्च से उच्च सस्कृति का निर्माण किया जा सकता है। उनका व्यक्तित्व तो कुम्हार

---

1 प्रेमचन्द और गोर्की पृष्ठ ३२४।
2 वही, पृष्ठ ३३३ ३४।

की मिट्टी-सा है जिसको अच्छा सामाजिक साचा मिलने पर रूपवान बनाया जा सकता है। प्रेमचद को यही भाव हमारे साहित्य म जनवादी मानवतावादी परम्परा का एक महान उनायक बना देता है।'[1] ग्राम्य जीवन के चित्रण की इन विशेषताओ को दृष्टि म रखते हुए 'प्रेमाश्रम' की भूमिका म रामदास गौड ने लिखा है "भविष्य मे भारतीय साहित्य के इतिहास की जो भी रचना करेगा उसे कृषकजीवन के यथाथ चित्रण म प्रेमचद की दक्षता स्वीकार करनी ही पडेगी।'

प्रेमचद का हिदी उपयास साहित्य म जो महत्त्व था उसका उचित मूल्याकन हो नही सका। उनकी अतिम कृति 'मगलसूत्र' मे देवकुमार का जो स्वागत-सत्कार उनकी साठवी वषगाठ पर हुआ और उस प्रशसा से उनको जो वितृष्णा हुई वह सभवत प्रेमचद की अपनी ही प्रतिक्रियाए थी। देवकुमार को उस उत्सव म अपनी प्रशसा मिरदद बन गई। उनको यह सब स्वागत सत्कार अच्छा नही लगा। सभी विद्वान थे मगर उनकी आलोचना कितनी उथली, ऊपरी थी जसे उनके सदेशा को कोई समझा ही नही। उनकी यह वेदना प्रेमचद की ही वदना है। इस वेदना की अभियक्ति उनके इन शब्दा म है—'जनता को उठाने वाला जब मिट जाता है तभी वह सम्मान पाता है।' उनका यह कथन उस मूल्याकन के सम्बध म सही है जो उनको लेकर किया गया था।

उन्होन सघर्षों सदव मे सुदर मोहक स्वप्ना को देखा था। जीवन के यथाथ की कटुता म जीवन की सात्वना का स्वर—ये सपने ही थे। सपने आदश मे सुरक्षित रह सकते हैं। जीवन का यथाथ तो कटुता देता है। जीवन यथाथ से टक्कर लता है। आनेवाल युग की कल्पना इस स्थिति म सभव नही होती। इसी कारण प्रेमचद के आदश को जनता की स्वीकृति और आलोचको की मायता नही मिली। राजनीति और साहित्य के क्षेत्र का यह दुर्भाग्य ही था कि जिस समय प्रेमचद जागकर भरवी गुनगुना रह थे उस समय इन क्षेत्रा म रात्रि का तीसरा पहर था। प्रेमचद ने जनता के मन की बात कही जिसे वह पूरा होते देखना चाहती थी पर साहित्यिको और नेताओ ने उसे सुना नही।[2] प्रेमचद पर इसी कारण 'सामयिक' होने का आरोप लगाया जाता है। प्रेमचद न समय की प्रतिध्वनि सुनकर साहित्य-साधना की थी परन्तु उस प्रतिध्वनि मे नए युग का नवनाद भी सुना। वह तत्कालीन युग की प्रेरणा देनेवाले ही नही, भविष्य को प्रेरणा देनेवाले भी थ। सत्य तो यह है कि हमारे वतमान के लिए उन्हाने अपना भविष्य उत्सग कर दिया था।

१ प्रमचद और गोर्की पृष्ठ ११७।
२ प्रमचद एक अध्ययन पृष्ठ ७।

सहायक ग्रन्थ-सूची

प्रेमचद साहित्य

१ वरदान '(सस्करण १९६१)।
२ प्रतिज्ञा (सस्करण नही दिया हुआ)।
३ सेवासदन (सस्करण नही दिया हुआ)।
४ प्रेमाश्रम (सस्करण नही दिया हुआ)।
५ रगभूमि (सस्करण १९६१)।
६ कायाकल्प (सस्करण १९६१)।
७ गबन (सस्करण १९६१)।
८ निर्मला (सस्करण १९६१)।
९ कर्मभूमि (सस्करण १९६२)।
१० *गोदान* (पाचवा, दसवा *ग्यारहवा सस्करण तथा* १९६१ और १९६६ का सस्करण)।
११ मगलसूत्र (पाचवा सस्करण)।
१२ मानसरोवर पहला भाग (नवा सस्करण)।
१३ मानसरोवर दूसरा भाग (सस्करण १९६२)।
१४ मानसरोवर तीसरा भाग (छठा सस्करण)।
१५ मानसरोवर चौथा भाग (छठा सस्करण)।
१६ मानसरोवर, पाचवा भाग (दूसरा सस्करण)।
१७ मानसरोवर, छठा भाग (सस्करण १९६०)।
१८ मानसरोवर सातवा भाग (सस्करण १९५१)।
१९ मानसरोवर, आठवा भाग (प्रथम सस्करण)।
२० सप्त सरोज (सस्करण नही दिया हुआ)।
२१ नवनिधि (सस्करण १९६०)।
२२ प्रेम-पूर्णिमा (दसवा सस्करण)।
२३ प्रेम-पचीसी (सस्करण १९५८)।
२४ प्रेम प्रसून (सस्करण १९५०)।
२५ प्रेम-द्वादशी (सस्करण नही दिया हुआ)।
२६ प्रेम-तीर्थ (आठवा सस्करण)।

२७ प्रेम-पीयूष (दूसरा सस्करण)।
२८ प्रेम चतुर्थी (प्रथम सस्करण)।
२९ पाच फूल (सातवा सस्करण)।
३० अग्नि समाधि (सस्करण नहीं दिया हुआ)।
३१ समर-यात्रा (छठा सस्करण)।
३२ सप्त-सुमन (सस्करण नही दिया हुआ)।
३३ कफन (नवा सस्करण)।
३४ नारी जीवन की कहानिया (सस्करण नही दिया हुआ)।
३४ ठाकुर का कुआँ (प्रथम सस्करण)।
३५ प्रेमचद की सवश्रेष्ठ कहानिया (छठा सस्करण)।
३६ ग्राम-जीवन की कहानिया (छठा सस्करण)।
३७ सग्राम (सस्करण १९६२)।
३८ कबला (पाचवा सस्करण)।
३९ प्रेम की वेदी (सस्करण नही दिया हुआ)।
४० प्रेमचद गुप्तधन(भाग १,२—सकलनकर्त्ता अमृतराय(सस्करण १९६२)।
४१ प्रेमचद विविध प्रसग (भाग १ २ ३—सकलनकर्त्ता अमृतराय) (सस्करण १९६२)।
४२ प्रेमचद चिट्ठी पत्री (सकलनकर्त्ता अमृतराय) (सस्करण १९६२)।
४३ प्रेमचद स्मृति (सकलनकर्त्ता अमृतराय) (सस्करण १९५९)।
४४ साहित्य का उद्देश्य (प्रथम सस्करण)।
४५ कुछ विचार (भाग १ २) (तीसरा सस्करण)।

प्रेमचद-साहित्य सम्बन्धी आलोचनात्मक ग्रन्थ

४६ प्रेमचद एक अध्ययन—डॉ० राजेश्वर गुरु।
४७ प्रेमचद और उनका युग—डॉ० रामविलास शर्मा।
४८ प्रेमचद एक विवेचन—डा० इन्द्रनाथ मदान।
४९ समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचद—डॉ० महेन्द्र भटनागर।
५० प्रेमचद की उपन्यास-कला—जनार्दनप्रसाद झा द्विज।
५१ प्रेमचद जीवन और कृतित्व—हसराज रहबर।
५२ प्रेमचद साहित्यिक विवेचन—नन्ददुलारे वाजपेयी।
५३ कलाकार प्रेमचद—डा० रामरतन भटनागर।